प्रकाशक—

श्री रावजीभाई छ. देसाई, ऑनरेरी व्यवस्थापक

श्री परमश्रुतप्रभावक-मंडल (श्रीमद्राजचंद्रजैनशास्त्रमाला)

श्रीमद्राजचंद्र आश्रम, स्टे०–अगास, पो०–बोरिआ

वाया: आणंद (गुजरात)

वीर नि० सं० २५०३ } वि० सं० २०३३ { सन् १९७७

मूल्य : छः रुपये

मुद्रक:—

पं० परमेष्ठीदास जैन, न्यायतीर्थ

जैनेन्द्र प्रेस,

ललितपुर (उ० प्र०)

प्रकाशकीय निवेदन

परम वीतराग सत्श्रुतके प्रति जनजागृति निष्कारण करुणा भावन प० कृ० श्रीमद्जी के हृदयमें सहज उमड़ आनेके कारण बम्बई में आपने परमश्रुत प्रभावक-मण्डल की स्थापना की और श्रीमद्राजचन्द्रजैनशास्त्रमालाके नामसे सत्श्रुतको प्रकाश करने वाले अमूल्य ग्रन्थ प्रगट किये गये। इस भावना-सिद्धिको साकार करनेके हेतु श्रीमद्राजचन्द्र आश्रम-अगासने इस मण्डलका प्रकाशन-कार्य अपने हस्तान्तर्गत कर अब तक जारी रखा है।

स्याद्वादमंजरी, न्यायावतार आदि न्यायविषयक ग्रन्थोंका पुनर्मुद्रण हो चुका है। जैन धर्मका आभूषण-सा अमूल्य ग्रन्थ सप्तभङ्गीतरङ्गिणी की प्रथमावृत्ति वीर नि० सं० २४३१ में और द्वितीयावृत्ति वीर नि० सं० २४४२ में प्रकाशित हुई थी। निरन्तर मांग एवम् आवश्यकता समझ कर इस तृतीयावृत्तिको जिज्ञासुओंके कर-कमलमें प्रस्तुत करते हुए हृदय आनन्दविभोर हो उठता है। परमात्मप्रकाश और स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षाका भी पुनर्मुद्रण होरहा है।

बौद्धिक क्षयोपशमकी न्यूनताके कारण अशुद्धियां रह जाना सम्भव है। अतः विज्ञ पाठक शुद्ध करके पढ़ें और मुझे क्षमा करें तथा मुझे भी रह गई त्रुटियों से सूचित करें। प्रेषित सूचनाओंका आदर करना परम कर्तव्य समझता हूँ। अतः प्रार्थना है कि पाठकगण यथावश्यक सूचनायें भेजनेकी कृपा करेंगे।

श्रीमद्राजचन्द्र आश्रम
स्टे०-अगास
१४ जनवरी, १९७७

निवेदक—
रावजीभाई छ० देसाई

इस युगके महान् तत्त्ववेत्ता

श्रीमद् राजचन्द्र

इस युगके महान् पुरुषोंमें श्रीमद् राजचन्द्रजीका नाम बड़े गौरवके साथ लिया जाता है। वे विश्वकी महान् विभूति थे। अद्भुत प्रभावशाली, अपनी नामवरीसे दूर रहनेवाले गुप्त महात्मा थे। भारतभूमि ऐसे ही नर-रत्नोंसे वसुंधरा मानी जाती है।

जिस समय मनुष्यसमाज आत्मधर्मको भूल कर अन्य वस्तुओंमें धर्मकी कल्पना या मान्यता करने लगता है, उस समय उसे किसी सत्य मार्गदर्शकको आवश्यकता पड़ती है। प्रकृति ऐसे पुरुषोंको उत्पन्न कर अपनेको धन्य मानती है। श्रीमद्जी उनमेंसे एक थे। श्रीमद् राजचन्द्रजीका नाम तो प्राय: बहुतोंने सुन रक्खा है, और उसका कारण भी यह है कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजीने अपने साहित्यमें इनका जहाँ तहाँ सम्मानपूर्वक उल्लेख किया है। वे स्वयं इनको धर्मके सम्बन्धमें अपना मार्गदर्शक मानते थे। महात्माजी लिखते हैं कि--"मेरे ऊपर तीन पुरुषोंने गहरी छाप डाली है--टालस्टॉय, रस्किन और राजचन्द्रभाई। टालस्टॉयने अपनी पुस्तकों द्वारा और उनके साथ थोड़े पत्रव्यवहारसे; रस्किनने अपनी पुस्तक 'अन्टु धिस लास्ट' से, जिसका गुजराती नाम मैंने 'सर्वोदय' रक्खा है, और राजचन्द्रभाईने अपने गाढ़ परिचयसे। जब मुझे हिन्दू धर्ममें शङ्का उत्पन्न हुई उस समय उसके निवारण करनेमें राजचन्द्रभाईने मुझे बड़ी सहायता पहुँचाई थी। ई० सन् १८९३ में दक्षिण अफ्रीकामें मैं कुछ क्रिश्चियन सज्जनोंके विशेष परिचयमें आया था। अन्य धर्मियोंको क्रिश्चियन बनाना हो उनका प्रधान व्यवसाय था। उस समय मुझे हिन्दू धर्ममें कुछ अश्रद्धा हो गई थी, फिर भी मैं मध्यस्थ रहा था। हिन्दुस्तानमें जिनके ऊपर मुझे श्रद्धा थी उनसे पत्रव्यवहार किया। उनमें राजचन्द्रभाई मुख्य थे। उनके साथ मेरा अच्छा सम्बन्ध हो चुका था। उनके प्रति मुझे मान था। इसलिए उनसे जो कुछ मुझे मिल सके उसको प्राप्त करने का विचार था। मेरी उनसे भेंट हुई। उनसे मिलकर मुझे अत्यन्त शान्ति मिली। अपने धर्ममें दृढ़ श्रद्धा हुई। मेरी इस स्थितिके जवाबदार राजचन्द्रभाई हैं। इससे मेरा उनके प्रति कितना अधिक मान होना चाहिये, इसका पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं।"

महात्माजी आगे और भी लिखते हैं कि-राजचन्द्रभाईके साथ मेरी भेंट जौलाई सन् १८९१ में उस दिन हुई थी जब मैं विलायतसे बम्बई आया था। उस समय मैं रंगूनके प्रख्यात जौहरी प्राणजीवनदास मेहताके घर उतरा था। राजचन्द्रभाई उनके बड़े भाईके जमाई होते थे। प्राणजीवनदासने राजचन्द्रभाईका परिचय कराया। वे राजचन्द्रभाईको कविराज कहकर पुकारा करते थे। विशेष परिचय देते हुए उन्होंने कहा-ये एक अच्छे कवि हैं और हमारे साथ व्यापार में लगे हुए हैं। इनमें बड़ा ज्ञान है, शतावधानी हैं।
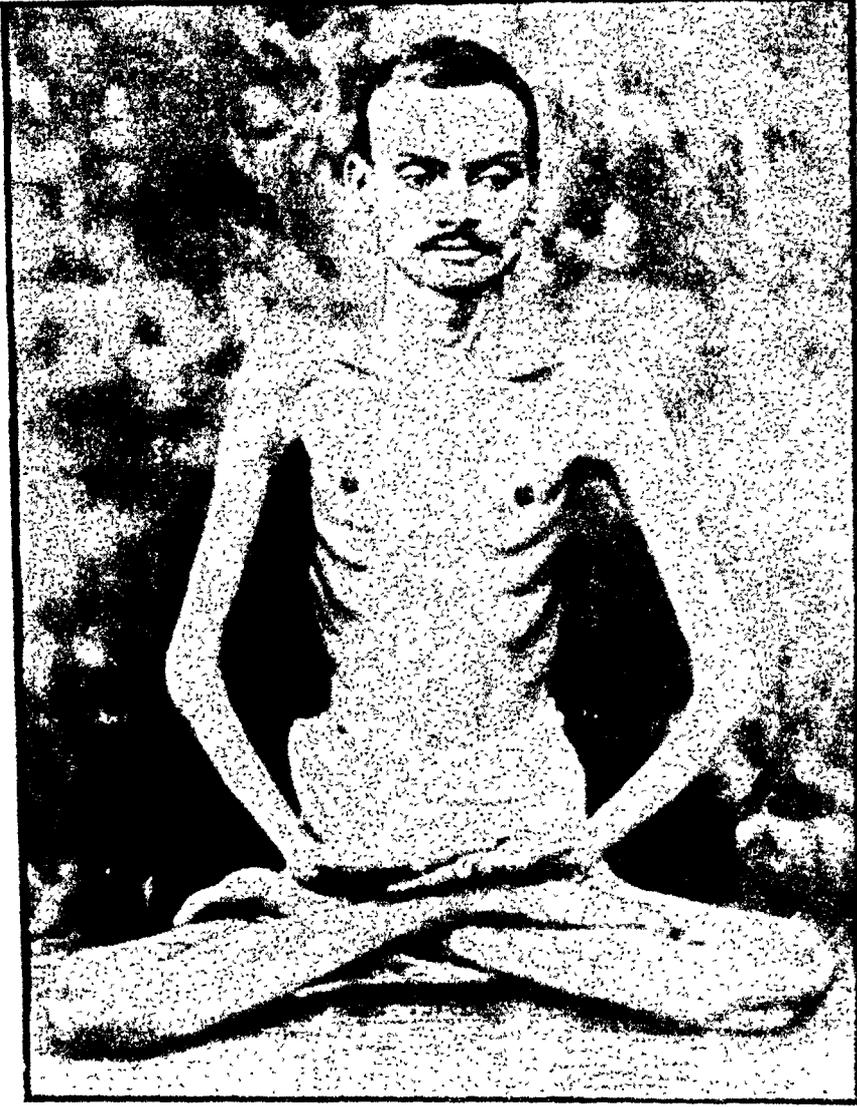
श्रीमद् राजचंद्र

जन्म : ववाणिया
वि. सं. १९२४, कार्तिक पूर्णिमा
रविवार

देहविलय : राजकोट
वि. सं. १९५७, चैत्र वद ५
मंगळवार

श्रीमद्जीका जन्म वि० सं० १९२४ कार्तिक शुक्ला पूर्णिमाको सौराष्ट्र मोरवी राज्यान्तर्गत ववाणिया गांवमें वणिक जातिके दशाश्रीमाली कुलमें हुआ था। इनके पिताका नाम रवजीभाई पंचाणभाई महेता और माताका नाम देवाबाई था। इनके एक छोटा भाई और ४ बहिनें थीं। घरमें इनके जन्मसे बड़ा उत्सव मनाया गया। श्रीमद्जीने अपने सम्बन्धमें जो बातें लिखी हैं वे बड़ी रोचक और समझने योग्य हैं। वे लिखते हैं--

"छुटपनकी छोटी समझमें, कौन जाने कहांसे ये बड़ी बड़ी कल्पनाएं आया करती थीं। सुखकी अभिलाषा भी कुछ कम न थी; और सुखमें भी महल, बाग, बगीचे, स्त्री आदिके मनोरथ किये थे, किन्तु मनमें आया करता था कि यह सब क्या है? इस प्रकारके विचारोंका यह फल निकला कि न पुनर्जन्म है, और न पाप है, और न पुण्य है; सुखसे रहना और संसारका सेवन करना। बस, इसीमें कृतकृत्यता है। इससे दूसरी झंझटोंमें न पड़कर धर्मकी वासना भी निकाल डाली। किसी भी धर्मके लिये थोड़ा बहुत भी मान अथवा श्रद्धाभाव न रहा। किन्तु थोड़ा समय बीतनेके बाद इसमेंसे कुछ और ही होगया। आत्मामें बड़ा भारी परिवर्तन हुआ, कुछ दूसरा ही अनुभव हुआ; और यह अनुभव ऐसा था, जो प्रायः शब्दोंमें व्यक्त नहीं किया जा सकता और न जड़वादियोंकी कल्पनामें भी आसकता। वह अनुभव क्रमसे बढ़ा और बढ़कर एक 'तू ही तू ही' का जाप करता है।" एक दूसरे पत्रमें अपने जीवनको विस्तारपूर्वक लिखते हैं कि—"बाईस वर्षकी अल्पवयमें मैंने आत्मा सम्बन्धी, मन सम्बन्धी, वचन सम्बन्धी, तन सम्बन्धी, और धन सम्बन्धी अनेक रंग देखे हैं। नाना प्रकारकी सृष्टिरचना, नाना प्रकारकी सांसारिक लहरें और अनन्त दुःखके मूल कारणोंका अनेक प्रकारसे मुझे अनुभव हुआ है। तत्वज्ञानियोंने और समर्थ नास्तिकोंने जैसे जैसे विचार किए हैं उसी तरहके अनेक मैंने इसी अल्पवयमें किए हैं। महान् चक्रवर्ती द्वारा किए गए तृष्णापूर्ण विचार और एक निस्पृही आत्मा द्वारा किये गए निस्पृहापूर्ण विचार भी मैंने किए हैं। अमरत्वकी सिद्धि और क्षणिकत्वकी सिद्धि पर मैंने खूब मनन किया है। अल्पवयमें ही मैंने महान् विचार कर डाले हैं, और महान् विचित्रताकी प्राप्ति हुई है। यहां तो अपनी समुच्चय वय-चर्या लिखता हूं :—

जन्मसे सात वर्षकी बालवय नितान्त खेल कूदमें ही व्यतीत हुई थी। उस समय मेरी आत्मामें अनेक प्रकारकी विचित्र कल्पनाएं उत्पन्न हुआ करती थीं। खेल कूदमें भी विजयी होने और राजराजेश्वर जैसी ऊँची पदवी प्राप्त करनेकी मेरी परम अभिलाषा रहा करती थी।

स्मृति इतनी अधिक प्रबल थी कि वैसी स्मृति इस कालमें, इस क्षेत्रमें बहुत ही थोड़े मनुष्यों की होगी। मैं पढ़नेमें प्रमादी था, बात बनानेमें होशियार खिलाड़ी और बहुत आनन्दी जीव था। जिस समय शिक्षक पाठ पढ़ाता था उसी समय पढ़कर मैं उसका भावार्थ सुना दिया करता था। बस, इतनेसे मुझे छुट्टी मिल जाती थी। मुझमें प्रीति और वात्सल्य बहुत था। मैं सबसे मित्रता चाहता था, सबमें भ्रातृभाव हो तो सुख है, यह विश्वास मेरे मनमें स्वाभाविक

रूप से रहता था। मनुष्योंमें किसी भी प्रकार जुदाईका अंकुर देखते ही मेरा अन्तःकरण रो पड़ता था। आठवें वर्षमें मैंने कविता लिखी थी, जो पीछेसे जांच करने पर छन्दशास्त्रके नियमानुकूल थी।

उस समय मैंने कई काव्यग्रन्थ लिखे थे, अनेक प्रकारके और भी वहुतसे ग्रन्थ देख डाले थे। मैं मनुष्य जातिका अधिक विश्वासु था।

मेरे पितामह कृष्णकी भक्ति किया करते थे। उस वयमें मैंने उनके कृष्ण–कीर्तन तथा भिन्न भिन्न अवतार सम्बन्धी चमत्कार सुने थे। जिससे मुझे उन अवतारोंमें भक्तिके साथ प्रीति भी उत्पन्न होगई थी, और रामदासजी नामके साधुसे मैंने बाल–लीलामें कंठी भी बंधवाई थी। मैं नित्यही कृष्णके दर्शन करने जाता था, अनेक कथाएं सुनता था. जिससे अवतारोंके चमत्कारों पर बार बार मुग्ध होजाया करता था, और उन्हें परमात्मा मानता था। ××× गुजराती भाषाकी पाठशालाकी पुस्तकोंमें कितनी ही जगह जगत्कर्ताके सम्बन्धमें उपदेश हैं, वह मुझे दृढ़ हो गया था। इस कारण जैन लोगोंसे घृणा रहा करती थी। कोई पदार्थ विना वनाए नहीं बन सकता; इसलिये जैन मूर्ख हैं, उन्हें कुछ भी खबर नहीं। उस समय प्रतिमा–पूजनके अश्रद्धालु लोगोंकी क्रिया मुझे वैसे ही दिखाई देती थी, इसलिये उन क्रियाओंकी मलिनताके कारण मैं उनसे बहुत डरता था, अर्थात् वे क्रियायें मुझे पसन्द नहीं थीं।

मेरी जन्मभूमिमें जितने वणिक लोग रहते थे, उन सबकी कुल–श्रद्धा यद्यपि भिन्न भिन्न थी फिर भी वह थोड़ी बहुत प्रतिमा–पूजनके अश्रद्धालुओंके समान थी।

लोग मुझे प्रथमसे ही शक्तिशाली और गाँवका नामांकित विद्यार्थी मानते थे, इससे मैं कभी कभी जनमंडलमें बैठकर अपनी चपल शक्ति बतानेका प्रयत्न किया करता था।

वे लोग कंठी बांधनेके कारण बार बार मेरी हास्यपूर्वक टीका करते, तो भी मैं उनसे वादविवाद करता और उन्हें समझानेका प्रयत्न करता था।

धीरे-धीरे मुझे जैनोंके प्रतिक्रमण सूत्र इत्यादि ग्रन्थ पढ़नेको मिले। उनमें बहुत विनयपूर्वक जगतके समस्त जीवोंसे मैत्रीभाव प्रकट किया है। इससे मेरी उस ओर प्रीति हुई और प्रथममें रही। परिचय बढ़ता गया। स्वच्छ रहनेका और दूसरे आचार विचार मुझे वैष्णवोंके ही प्रिय थे, जगत्कर्ताकी भी श्रद्धा थी। इतनेमें कंठी टूट गई, और उसे दुबारा मैंने नहीं बाँधी। उस समय बाँधने न बांधनेका कोई कारण मैंने नहीं ढूंढा था। यह मेरी तेरह वर्ष की वयचर्या है। इसके बाद अपने पिताकी दुकानपर बैठने लगा था। अपने अक्षरोंकी छटाके कारण कच्छ दरबारके महलमें लिखनेके लिए जब जब बुलाया जाता था तब वहां जाता था। दुकान पर रहते हुए मैंने अनेक प्रकारका आनन्द किया है, अनेक पुस्तकें पढ़ी हैं, राम आदिके चरित्रों पर कविताएं रची हैं, सांसारिक तृष्णाएं की हैं, तो भी किसीको मैंने कम–अधिक भाव नहीं कहा, अथवा किसीको कम–ज्यादा तौलकर नहीं दिया, यह मुझे बराबर याद है।"

इस पर से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वे एक अति संस्कारी आत्मा थे। बड़े बड़े विद्वान् भी जिस

आत्माकी ओर लक्ष्य नहीं देते उसी आत्माकी ओर श्रीमद्‌जीका बाल्यकालसे लक्ष्य तीव्र था। आत्माके अमरत्व तथा क्षणिकत्वके विचार भी कुछ कम नहीं किये थे। कुलश्रद्धासे जैन धर्मको अंगीकार नहीं किया था, लेकिन अपने अनुभवके बलपर उसे सत्य सिद्ध करके अपनाया था। जैन धर्मके सत्य सिद्धान्तोंको श्रीमद्‌जीने अपने जीवनमें उतारा था और मुमुक्षुओंको भी तदनुरूप बननेका बोध देते थे। वर्तमान युगमें ऐसे महात्माका आविर्भाव समाजके लिये सौभाग्यकी बात है। ये मतमतान्तर में मध्यस्थ थे।

आपको जातिस्मरण ज्ञान था अर्थात् पूर्वभव जानते थे! इस सम्बन्धमें मुमुक्षुभाई पदमशीभाईने एक बार उनसे पूछा था और उसका स्पष्टीकरण स्वयं उन्होंने अपने मुखसे किया था। पाठकोंकी जानकारीके लिये उसे यहाँ दे देना योग्य समझता हूँ।

पदमशीभाईने पूछा—"आपको जातिस्मरण-ज्ञान कब और कैसे हुआ?"

श्रीमद्‌जीने उत्तर दिया—"जब मेरी उम्र सात वर्षकी थी, उस समय ववाणियामें अमीचन्द नामके एक सद्‌गृहस्थ रहते थे। वे पूरे लम्बे-चौड़े, सुन्दर और गुणवान थे। उनका मेरे ऊपर खूब प्रेम था। एक दिन सर्पके काट खानेसे उनका तुरन्त देहान्त हो गया। आसपासके मनुष्योंके मुखसे इस बातको सुनकर मैं अपने दादाके पास दौड़ा आया। मरण क्या चीज है? इस बातको मैं नहीं जानता था, इसलिये मैंने दादा से कहा—दादा! अमीचन्द मर गए क्या? मेरे दादाने उस समय विचारा कि यह बालक है, मरणकी बात करनेसे डर जायगा, इसलिए उन्होंने—जा भोजन करले, यों कहकर मेरी बातको टालनेका प्रयत्न किया। 'मरण' शब्द उस छोटे जीवनमें मैंने प्रथम बार ही सुना था। मरण क्या वस्तु है, यह जाननेकी मुझे तीव्र आकांक्षा थी। वारम्बार मैं पूर्वोक्त प्रश्न करता रहा। अन्तमें वे बोले—तेरा कहना सत्य है अर्थात् अमीचन्द मर गए हैं। मैंने आश्चर्यपूर्वक पूछा—मरण क्या चीज है? दादाने कहा—शरीरमेंसे जीव निकल गया है और अब वह हलन-चलन आदि कुछ भी क्रिया नहीं कर सकता, खाना-पीना भी नहीं कर सकता। इसलिए अब इसको तालाबके समीपके श्मशानमें जला आयेंगे।

मैं थोड़ी देर इधर-उधर छिपा रहा। बादमें तालाब पर जा पहुँचा। तट पर दो शाखावाला एक बबूलका पेड़ था, उसपर चढ़कर मैं सामनेका सब दृश्य देखने लगा। चिता जोरोंसे चल रही थी, बहुतसे आदमी उसको घेरकर बैठे हुए थे। यह सब देखकर मुझे विचार आया—मनुष्यको जलानेमें कितनी क्रूरता! यह सब क्या? इत्यादि विचारोंसे आत्म-पट दूर हो गया।"

एक विद्वानने श्रीमद्‌जीको, पूर्व जन्मके सम्बन्धमें अपने विचार प्रगट करनेके लिए लिखा था। उसके उत्तरमें उन्होंने जो कुछ लिखा था, वह निम्न प्रकार है—

"कितने ही निर्णयोंसे मैं यह मानता हूँ कि, इस कालमें भी कोई कोई महात्मा पहले भवको जातिस्मरण ज्ञानसे जान सकते हैं, और यह जानना कल्पित नहीं परन्तु सम्यक (यथार्थ)

होता है । उत्कृष्ट संवेग, ज्ञान-योग और सत्संगसे यह ज्ञान प्राप्त होता है, अर्थात् पूर्वभव प्रत्यक्ष अनुभवमें आ जाता है ।

जबतक पूर्वभव गम्य न हो तब तक आत्मा भविष्यकालके लिए शंकितभावसे धर्म-प्रयत्न किया करती है, और ऐसा सशंकित प्रयत्न योग्य सिद्धि नहीं देता ।" पुनर्जन्मकी सिद्धिके लिए श्रीमद्जीने एक विस्तृत पत्र लिखा है जो 'श्रीमद् राजचन्द्र' ग्रन्थमें प्रकाशित है। पुनर्जन्म सम्बन्धी इनके विचार बड़े गम्भीर और विशेष प्रकारसे मनन करने योग्य हैं।

१९ वर्षकी अवस्थामें श्रीमद्जीने एक बड़ी सभामें सौ अवधान किए थे, जिसे देखकर उपस्थित जनता दाँतों तले उंगली दबाने लगी थी।

अंग्रेजीके प्रसिद्ध पत्र 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' ने अपने ता० २४ जनवरी १८८७ के अंकमें श्रीमद्जीके सम्बन्धमें एक लेख लिखा था, जिसका शीर्षक था 'स्मरण शक्ति तथा मानसिक शक्तिके अद्भुत प्रयोग ।'

"राजचन्द्र रवजीभाई नामके एक १९ वर्षके युवा हिन्दूकी स्मरणशक्ति तथा मानसिक शक्तिके प्रयोग देखनेके लिये गत शनिवारको संध्या समय फरामजी कावसजी इन्स्टीट्यूटमें देशी सज्जनोंका एक भव्य सम्मेलन हुआ था । इस सम्मेलनके सभापति डाक्टर पिटर्सन नियुक्त हुए थे। भिन्न भिन्न जातियोंके दर्शकोंमें से दस सज्जनोंकी एक समिति संगठित की गई। इन सज्जनोंने दस भाषाओंके छछ शब्दोंके दस वाक्य बनाकर लिख लिए और अक्रमसे बारी बारीसे सुना दिए। थोड़े ही समय बाद इस हिन्दू युवकने दर्शकोंके देखते देखते स्मृतिके बलसे उन सब वाक्योंको क्रमपूर्वक सुना दिया । युवककी इस शक्तिको देखकर उपस्थित मंडली बहुत ही प्रसन्न हुई ।

इस युवाकी स्पर्शन इन्द्रिय और मन इन्द्रिय अलौकिक थी। इस परीक्षाके लिये अन्य अन्य प्रकारकी कोई बारह जिल्दें बतलाई गईं और उन सबके नाम सुना दिए गए। इसके आँखों पर पट्टी बाँधकर इसके हाथों पर जो जो पुस्तकें रखी गईं, उन्हें हाथोंसे टटोलकर इस युवकने सब पुस्तकोंके नाम बता दिए। डॉ० पिटर्सनने इस युवककी इस प्रकार आश्चर्यपूर्ण स्मरणशक्ति और मानसिक शक्तिका विकास देखकर बहुत बहुत धन्यवाद दिया और समाजकी ओरसे सुवर्ण-पदक और साक्षात् सरस्वतीकी पदवी प्रदान की गई ।

उस समय चार्ल्स सारजंट बम्बई हाईकोर्टके चीफ जस्टिस थे। वे श्रीमद्जीकी इस शक्तिसे बहुत ही प्रभावित हुए। सुना जाता है कि सारजंट महोदयने श्रीमद्जीसे इंग्लैंड चलनेका आग्रह किया था, परन्तु वे कीर्तिसे दूर रहनेके कारण चार्ल्स महाशयकी इच्छाके अनुकूल न हुए अर्थात् इंग्लैंड न गए।"

इसके अतिरिक्त बम्बई समाचार आदि अखबारोंमें भी इनके शतावधानके समाचार प्रकाशित हुए थे। बादमें शतावधानके प्रयोगोंको आत्मचिन्तनमें अन्तरायरूप मानकर उनका करना बन्द कर दिया था ! इससे सहजमें ही अनुमान किया जा सकता है कि वे कीर्ति आदिसे

कितने निरपेक्ष थे। उनके जीवनमें पद पद पर सच्ची धार्मिकता प्रत्यक्ष दिखाई देती थी। वे २१ वर्षकी उम्रमें व्यापारार्थ ववाणियासे बम्बई आए। वहाँ सेठ रेवाशंकर जगजीवनदासकी दुकानमें भागीदार रहकर जवाहरातका धन्धा करते रहे। वे व्यापारमें अत्यन्त कुशल थे। ज्ञानयोग तथा कर्मयोगका इनमें यथार्थ समन्वय देखा जाता था। व्यापार करते हुये भी श्रीमद्‌जीका लक्ष्य आत्माकी ओर अधिक था। इनके ही कारण उस समय मोतियोंके बाजारमें श्रीयुत रेवाशंकर जगजीवनदासकी पेढ़ी नामी पीढ़ियोंमें एक गिनी जाती थी। स्वयं श्रीमद्‌जीके भागीदार श्रीयुत माणिकलाल घेलाभाईको इनकी व्यवहारकुशलताके लिये अपूर्व बहुमान था। उन्होंने अपने एक वक्तव्यमें कहा था कि "श्रीमद् राजचन्द्रके साथ लगभग १५ वर्ष तक परिचय रहा, और उसमें सात-आठ वर्ष तो मेरा उनके साथ अत्यन्त परिचय रहा था। लोगोंमें अति परिचयसे परस्परका महत्त्व कम हो जाता है, परन्तु मैं कहता हूँ कि उनकी दशा ऐसी आत्ममय थी कि उनके प्रति मेरा श्रद्धाभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया। व्यापारमें अनेक प्रकारकी कठिनाइयाँ आती थीं, उनके सामने श्रीमद्‌जी एक अडोल पर्वतके समान टिके रहते थे। मैंने उन्हें जड़ वस्तुओंकी चिन्तासे चिन्तातुर नहीं देखा। वे हमेशा शान्त और गम्भीर रहते थे। किसी विषयमें मतभेद होने पर भी हृदयमें वैमनस्य नहीं था। सदैव पूर्वसा व्यवहार करते थे।"

श्रीमद्‌जी व्यापारमें जैसे निष्णात थे उससे अत्यन्त अधिक आत्मतत्त्वमें निष्णात थे। उनकी अन्तरात्मामें भौतिक पदार्थोकी महत्ता नहीं थी। वे जानते थे-धन पार्थिव शरीरका साधन है, परलोक अनुयायी तथा आत्माको शाश्वत शान्ति प्रदान करनेवाला नहीं है। व्यापार करते हुए भी उनकी अन्तरात्मामें वैराग्य-गंगाका अखण्ड प्रवाह निरन्तर बहता रहता था। मनुष्य-भवके एक एक समयको वे अमूल्य समझते थे। व्यापारसे अवकाश मिलते ही वे कोई अपूर्व आत्मविचारणामें लीन हो जाते थे। निवृत्तिकी पूर्ण भावना होने पर भी पूर्वोदय कुछ ऐसा विचित्र था जिससे उनको बाह्य उपाधिमें रहना पड़ा।

श्रीमद्‌जी जवाहरातके साथ साथ मोतियों का भी व्यापार करते थे। व्यापारी समाजमें वे अत्यन्त विश्वासपात्र समझे जाते थे। उस समय एक आरब अपने भाईके साथ रहकर बम्बईमें मोतियोंकी आढ़तका धन्धा करता था। छोटे भाईके मनमें आया कि आज मैं भी बड़े भाईके समान कुछ व्यापार करूं। परदेशसे आया हुआ माल साथमें लेकर आरब बेचने निकल पड़ा। दलालने श्रीमद्‌जीका परिचय कराया। श्रीमद्‌जीने आरबसे कहा—भाई, सोच समझकर भाव कहना। आरब बोला—जो मैं कह रहा हूँ, वही बाजार भाव है, आप माल खरीद करें।

श्रीमद्‌जीने माल ले लिया, तथा उसको एक तरफ रख दिया। वे जानते थे कि इसको नुकसान है और हमें फायदा। परन्तु वे किसीकी भूलका लाभ नहीं लेना चाहते थे। आरब घर पहुँचा, बड़े भाईसे सौदाकी बात की। वह घबराकर बोला-तूने यह क्या किया! इसमें तोअपनेको बहुत नुकसान है। अब क्या था, आरब श्रीमद्‌जीके पास आया और सौदा रद करनेको कहा। व्यापारिक नियमानुसार सौदा तय हो चुका था, आरब वापस लेनेका अधिकारी नहीं था, फिर भी

श्रीमद्‌जीने सौदा रद्द करके मोती उसे वापिस दे दिए। श्रीमद्‌जीको इस सौदे से हजारोंका फायदा था, तो भी उन्होंने उसकी अन्तरात्माको दुःखित करना अनुचित समझा और मोती लौटा दिए । कितनी निस्पृहता-लोभ वृत्तिका अभाव ! आजके व्यापारियोंमें यदि सत्यता आजाय तो सरकारको नित्य नये नये नियम बनानेकी जरूरत ही न रहे और मनुष्य-समाज सुखपूर्वक जीवन यापन कर सके ।

श्रीमद्‌जीकी दृष्टि बड़ी विशाल थी । आज भी भिन्न भिन्न सम्प्रदायवाले उनके वचनोंका रुचि सहित आदरपूर्वक अभ्यास करते हुए देखे जाते हैं । उन्हें वाडाबन्दी पसन्द नहीं थी । वे कहा करते थे कि कुगुरुओंने लोगोंकी मनुष्यता लूट ली है, विपरीत मार्गमें रुचि उत्पन्न करदी है, सत्य समझानेकी अपेक्षा कुगुरु अपनी मान्यताको ही समझानेका विशेष प्रयत्न करते हैं ।

श्रीमद्‌जीने धर्मको स्वभावकी सिद्धि करनेवाला कहा है । धर्मोंमें जो भिन्नता देखी जाती है, उसका कारण दृष्टिकी भिन्नता वतलाया है । इसी वातको वे स्वयं दोहेमें प्रगट करते हैं:—

भिन्न भिन्न मत देखिए, भेद दृष्टिनो एह
एक तत्त्वना मूलमां, व्याप्या मानो तेह ।।
तेह तत्त्वरुप वृक्षनुं, आत्मधर्म छे मूल ।
स्वभावनी सिद्धि करे, धर्म ते ज अनुकूल ।।

अर्थात्-भिन्न भिन्न जो मत देखे जाते हैं, वह सब दृष्टिका भेद है। सब ही मत एक तत्त्वके मूलमें व्याप्त हो रहे हैं । उस तत्त्वरूप वृक्षका मूल है आत्मधर्म, जो कि स्वभावकी सिद्धि करता है; और वही धर्म प्राणियोंके अनुकूल है ।

श्रीमद्‌जीने इस युगको एक अलौकिक दृष्टि प्रदान की है । वे रूढ़ि या अन्धश्रद्धाके कट्टर विरोधी थे । उन्होंने आडम्बरोंमें धर्म नहीं माना था । वे मत-मतान्तर तथा कदाग्रहादिसे बहुत ही दूर रहते थे। वीतरागता की ओर ही उनका लक्ष्य था ।

पेढ़ीसे अवकाश लेकर वे अमुक समयतक खंभात, काविठा, उत्तरसंडा, नडियाद, वसो और ईडरके पर्वतमें एकान्तवास किया करते थे । मुमुक्षुओंको आत्मकल्याणका सच्चा मार्ग वताते थे । इनके एक एक पत्रमें कोई अपूर्व रस भरा हुआ है। उन पत्रोंका मर्म समझनेके लिए सन्त-समागमकी विशेष आवश्यकता अपेक्षित है । ज्यों ज्यों इनके लेखोंका शान्त और एकाग्र चित्तसे मनन किया जाता है, त्यों त्यों आत्मा क्षणभरके लिए एक अपूर्व आनन्दका अनुभव करता है । 'श्रीमद् राजचन्द्र' ग्रन्थके पत्रोंमें उनका पारमार्थिक जीवन जहां तहां दृष्टिगोचर होता है ।

श्रीमद्‌जीकी भारतमें अच्छी प्रसिद्धि हुई । मुमुक्षुओंने उन्हें अपना मार्ग-दर्शक माना । बम्बई रहकर भी वे पत्रों द्वारा मुमुक्षुओंकी शंकाओंका समाधान करते रहते थे । प्रातःस्मरणीय श्री रघुराज स्वामी इनके शिष्योंमें मुख्य थे । श्रीमद्‌जी द्वारा उपदिष्ट तत्त्वज्ञानका संसारमें प्रचार हो तथा अनादिसे परिभ्रमण करनेवाले जीवोंको मोक्षमार्ग मिले, इस उद्देश्यसे स्वामीजीके उपदेशसे

श्रीमद्जीके उपासकोंने गुजरातमें अगास स्टेशनके पास 'श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम' की स्थापना की थी, जो आज भी उन्हीं की भावनानुसार चलता है। इसके सिवाय खंभात, वडवा, नरोडा, धामण, आहोर, ववाणिया, काविठा, भादरण, ईडर, उत्तरसंडा, नार आदि स्थलोंमें भी इनके नामसे आश्रम तथा मन्दिर स्थापित हुए हैं। श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम अगासके अनुसार ही उनमें प्रवृत्ति है चल रही--अर्थात् श्रीमद्जीके तत्वज्ञानकी प्रधानता है।

श्रीमद् एक उच्चकोटिके असाधारण लेखक और वक्ता थे। उन्होंने १६ वर्ष और ५ मासकी उम्रमें ३ दिनमें १०८ पाठवाली 'मोक्षमाला' बनाई थी। आज तो इतनी आयुमें शुद्ध लिखना भी नहीं आता, जब कि श्रीमद्जीने एक अपूर्व पुस्तक लिख डाली। पूर्व भवका अभ्यास ही इसमें कारण था। इससे पहले पुष्पमाला, भावना बोध आदि पुस्तकें लिखी थीं। श्रीमद्जी मोक्षमालाके सम्बन्धमें लिखते हैं कि-"इस (मोक्षमाला) में मैंने जैन धर्मके समझानेका प्रयत्न किया है; जिनोक्त मार्गसे कुछ भी न्यूनाधिक नहीं लिखा है। वीतराग मार्गमें आबाल-वृद्धकी रुचि हो, उसके स्वरूपको समझें तथा उसका बीज हृदयमें स्थिर हो, इस कारण इसकी बालावबोधरूप रचना की है।"

इनकी दूसरी कृति आत्म-सिद्धि हैं, जिसको श्रीमद्जीने १॥ घंटेमें नडियादमें बनाया था। १४२ दोहोंमें सम्यग्दर्शनके कारणभूत छह पदोंका बहुत ही सुन्दर पक्षपात रहित वर्णन किया है। यह कृति नित्य स्वाध्यायकी वस्तु है।

श्रीकुन्दकुन्दाचार्यके पंचास्तिकायकी मूल गाथाओंका भी इन्होंने अक्षरशः गुजरातीमें अनुवाद किया है, जो 'श्रीमद्राजचन्द्र' ग्रन्थमें छप चुका है।

श्रीमद्जीने आनन्दघन चौबीसीका अर्थ लिखना प्रारम्भ किया था। और उसमें, प्रथमादि दो स्तवनोंका अर्थ भी किया था; पर न जाने क्यों अपूर्ण रह गया है। संस्कृत तथा प्राकृत भाषापर आपका पूरा अधिकार था। सूत्रोंका यथार्थ अर्थ समझानेमें आप बड़े निपुण थे।

आत्मानुभव-प्रिय होनेसे श्रीमद्जीने शरीरकी कोई चाह नहीं रखी। इससे पौद्गलिक शरीर अस्वस्थ हुआ। दिन-प्रतिदिन उसमें कृशता आने लगी। ऐसे ही अवसर पर आपसे किसीने पूछा-'आपका शरीर कृश क्यों होता जाता है?' श्रीमद्जीने उत्तर दिया 'हमारे दो बगीचे हैं, शरीर और आत्मा। हमारा पानी आत्मा रूपी बगीचेमें जाता है, इससे शरीर रूपी बगीचा सूख रहा है।' देहके अनेक प्रकारके उपचार किए गए। वे वढ़वाण, धर्मपुर आदि स्थानोंमें रहे, किन्तु सब उपचार निष्फल गए। कालने महापुरुषके जीवनको रखना उचित न समझा। अनित्य वस्तुका सम्बन्ध भी कहाँ तक रह सकता है! जहाँ सम्बन्ध वहाँ वियोग भी अवश्य है। देहत्यागके पहले दिन शामको श्रीमद्जीने श्री रेवाशंकर आदि मुमुक्षुओंसे कहा-'तुम लोग निश्चिन्त रहना। यह आत्मा शाश्वत है। अवश्य विशेष उत्तम गतिको प्राप्त होगा। तुम शान्त और समाधिपूर्वक रहना। मैं कुछ कहना चाहता था, परन्तु अब समय नहीं है। तुम पुरुषार्थ करते रहना' प्रभातमें श्रीमद्जीने अपने लघु भ्राता मनसुखभाईसे कहा—'भाईका समाधिमरण है। मैं अपने आत्मस्वरूपमें लीन होता हूं।' फिर वे न बोले। इस प्रकार श्रीमद्जीने

वि० सं० १९५७ मिती चैत्र वदी ५ (गुजराती) मंगलवारको दोपहरके २ बजे राजकोटमें इस नश्वर शरीरका त्याग किया।

इनके देहान्तके समाचारसे मुमुक्षुओंमें अत्यन्त शोकके बादल छा गये। अनेक समाचार पत्रोंने भी इनके लिये शोक प्रदर्शित किया था।

श्रीमद्‌जीका पार्थिव शरीर आज हमारी आंखोंके सामने नहीं है, किन्तु उनका सद्-उपदेश, जबतक लोकमें सूर्य-चन्द्र हैं तबतक स्थिर रहेगा तथा मुमुक्षुओंको आत्म-ज्ञानमें एक महान सहायक रूप होगा।

श्रीमद्‌जीने परम सत् श्रुतके प्रचारार्थ एक सुन्दर योजना तैयार की थी। जिससे मनुष्य-समाजमें परमार्थ मार्ग प्रकाशित हो। इनकी विद्यमानतामें वह योजना सफल हुई और तदनुसार परमश्रुत प्रभावक मंडलकी स्थापना हुई। इस मंडलकी ओरसे दोनों सम्प्रदायोंके अनेक सद्‌ग्रन्थोंका प्रकाशन हुआ है। इन ग्रन्थोंके मनन अध्ययनसे समाजमें अच्छी जागृति आई। गुजरात, सौराष्ट्र और कच्छमें आज घर घर सद्-ग्रन्थोंका जो अभ्यास चालू है वह इसी संस्थाका ही प्रताप है। 'रायचंद्र अने ग्रन्थमाला' मंडल की अधीनतामें काम करती थी। राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी इस संस्थाके ट्रस्टी और भाई रेवाशंकर जगजीवनदासजी मुख्य कार्यकर्ता थे। भाई रेवाशंकरजीके देहोत्सर्ग के बाद संस्थामें कुछ शिथिलता आगई; परन्तु अब उस संस्थाका काम श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम अगासके ट्रस्टियोंने संभाल लिया है और सुचारु रूपसे पूर्वानुसार सभी कार्य चल रहे हैं।

इस आश्रमकी ओरसे श्रीमद्‌जीका सभी साहित्य सुपाठ्य रूपसे प्रकाशित हुआ है।

'श्रीमद् राजचन्द्र' एक विशाल ग्रन्थ है, जिसमें उनके आध्यात्मिक पत्र तथा लेखोंका अच्छा संग्रह है।

श्रीमद्‌जीके विषयमें विशेष जाननेकी इच्छावालोंको, इस आश्रम से प्रकाशित 'श्रीमद् राजचन्द्र जीवनकला' अवलोकनीय है।

—गुणभद्र जैन.

श्रीपरमात्मने नमः

उपोद्घातः ।
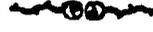
प्रचुरपाण्डित्यपूर्णजैनमतामितग्रन्थेषु सप्तभङ्गीतरङ्गिणीनामापूर्वोऽयं जैनतर्कग्रन्थः । अस्य च निर्माता वीरनामकग्रामवास्तव्यः श्रीमदनन्तदेवस्वामिनां प्रियाग्रशिष्यो विमलदासनामा दिगम्बरजैनः । स च तंजानगरे निवसन्नमुं ग्रन्थं प्रणीतवान् । एतन्निर्माणकालश्च प्लवङ्गनामसंवत्सरे पुष्यनक्षत्ररविवासरान्वित-वैशाखशुद्धाष्टमीति ग्रन्थान्ते स एव लिखितवान् परन्त्वनेन कस्मिन् विक्रमीयाब्दे–खीष्टाब्दे वाऽयं ग्रन्थः प्रणीत इति स्पष्टं न प्रतिभाति। अयं पण्डितवरः कदा कीदृशकुलं स्वजनुषालंचकारेति निर्णेतुं न पारयामः ।

अत्र च जैनमतप्राणभूतानां प्राधान्यतो व्याख्यानम् कृतम् । सप्तभङ्गप्रवृत्तौ हेतुश्च तत्त्वार्थाधि-गमोपायभूतप्रमाणनयात्मकवाक्यानां सप्तधैव प्रवृत्तिः प्रदर्शिता । प्रथमतश्च सप्तभङ्गीनामनिर्वाचनं लक्षण-पुरस्सरं कृतम् सप्तविधप्रश्नप्रवृत्तौ हेतुर्हि प्राश्निकसंशयानां सप्तधैवोदयः प्रतिपादितः । संशयसप्तविधत्वं हि निखिलजगदैहिकपारलौकिकसंशयनिश्चयविषयीभूतधर्म्माणां सप्तधैव प्रवृत्तिः प्रदर्शिता । तेचात्र कथंचित् सत्वम्, कथंचिन्दसत्वं, क्रमार्पितोभयम्, अवक्तव्यम्, कथंचित्सत्वविशिष्टावक्तव्यत्वम्, कथंचिदसत्वविशिष्टावक्तव्यत्वम्, क्रमार्पितोभयविशिष्टावक्तव्यत्वमिति रूपेणोपन्यस्ताः । एतद्धर्म्मप्रतिपादकसप्तभङ्गानि सप्तवाक्यानि चैवेमानि,:—

(१) स्यादस्त्येव घटः,
(२) स्यान्नास्त्येव घटः,
(३) स्यादस्ति नास्ति च घटः,
(४) स्यादवक्तव्य एव घटः,
(५) स्यादस्ति च वक्तव्यश्च घटः,
(६) स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च घटः,
(७) स्यादस्तिनास्ति चावक्तव्यश्च घटः ।

अनेकतर्कैः सप्तैव भङ्गानां सङ्ख्या स्थापिता, नापि न्यूना न चाप्यतिरिक्ता । एतेषां भङ्गानामन्योन्य-भेदप्रदर्शनमपि ग्रन्थकारैः सुविस्तरं प्रोक्तम् । निखिलचेतनाचेतनात्मकवस्तुनि सप्तभङ्गा योजयितुं शक्याः । यथा स्यादस्त्येव घटः । अत्र यद्यपि स्याद्वादमते घटस्य सत्त्वमिवासत्वमपि स्वरूपं तथापि प्रथमभङ्गे सत्वस्य प्राधान्येन भानम् असत्त्वस्य चाप्राधान्येन, तथा च प्रकृते कथंचित् सत्वस्य सर्वप्रकाराऽवच्छिन्नसत्वस्य च संशयकोटिता वर्ततेऽत एवायोगव्यवच्छेदबोधकैवकारेण स्वरूपादिभिः प्रथमभङ्गे कथंचित् सत्वमेव स्थापितम् । वोधश्च कथञ्चित् घटस्य समानाधिकरणो यः प्रतियोगिव्यधिकरणोऽत्यन्ताभावः तादृशाऽत्यन्ताभावाप्रतियोग्यस्तित्ववान् घट इति एवमेव द्वितीयभङ्गे असत्वस्य तृतीयभङ्गे क्रमार्पितसत्वाऽसत्वयोः प्राधान्यमस्ति, चतुर्थेऽवक्तव्यत्वस्य प्राधान्यं पञ्चमे सत्वविशिष्टावक्तव्यत्वस्य षष्ठे चासत्वविशिष्टावक्तव्यत्वस्य, सप्तमे च क्रमयोजितसत्वासत्व-विशिष्टावक्तव्यत्वस्य प्राधान्यमुपन्यस्तम् ।

इयं च सप्तभङ्गी प्रमाणसप्तभङ्गी, नयसप्तभङ्गीति भेदेन द्विधोपन्यस्ता । अनन्तरं च सकलादेशः प्रमाणवाक्यं विकलादेशश्च नयवाक्यमित्यादिना प्रमाणनयवाक्यानां विकल्पानुपन्यस्य सिद्धान्तः प्रदर्शितस्तत्सर्वं ग्रन्थत एवावसेयम् ।

प्रथमभङ्गे घटस्य द्रव्यवाचकत्वेन विशेष्यता, अस्तीत्यस्य च गुणवाचकत्वेन विशेषणता प्रतिपादि-तोक्तबोधानुरोधादित्यवधेयम् ।

अत्रानेकन्तवादे च सर्वं वस्तुजातमनेकान्तात्मकमस्तीति स्वरूपादिभिर्घटस्यास्तित्वमेव नत्वनिष्टासत्वा-दिकमितिबोधयितुमवधारणार्थकैवकारप्रयोगः स्यादस्त्येव घट इत्यादिरूपेणैतत्खण्डनमण्डनप्रकारश्च सुविस्तर-माचार्येण प्रदर्शितम् । निपातानां च द्योतकवाचकत्वेनोभयात्मकता च प्रदर्शिता । बौद्धाश्चान्यव्यावृत्तिरेव सर्वशब्दवाच्यमित्यवधारणार्थकैवशब्दाभावेपि पररूपादिना व्यावृत्तिः स्वत एव सिद्धेत्याशङ्कितं तत्र विधिमुखेनैव सर्वत्र शाब्दबोधप्रणाल्या अनुभवगोचरत्वेनानवस्थादोषसद्भावाच्च न तन्मतं सङ्गतेमिति प्रत्याख्यातम् । तथाविधविचारानेकान्ताद्यनेकार्थसंभवेऽपि प्रकृतवस्तुनोऽनेकान्तस्वरूपप्रदर्शनार्थम् स्यादस्त्ये-व घट इत्यादिभङ्गेषु तिङन्तप्रतिरूपकनिपातात्मकस्याच्छब्दप्रयोगः कृतः स चानेकान्तवादेऽप्रौढविने-यानां सौकर्य्येण प्रतिपत्त्यर्थं प्रौढविनेयानां तु वस्तुनोऽनेकान्तस्वभावेन स्याच्छब्दप्रयोगमन्तरापि तादृशार्थं प्रतीतेस्तदनावश्यकता प्रदर्शितेत्यवसेयम् ।

अनन्तरं च प्रमाण एव सकलादेशेन कालात्मस्वपरादिभिर्भेदवृत्त्या अभेदोपचारेण वा नयरूपविकला-देशेन च भेदवृत्त्याभेदोपचारेण घटादिरूपार्थप्रतिपादनं कृतम् तत्र च कालादिनाम् सर्वेषामभेदः प्रदर्शितः यथा यत्कालावच्छेदेन च घटादावस्तित्वं वर्तते तत्कालावच्छेदेनान्याशेषधर्मा अपि तत्रैव सन्ति एवंरीत्या कालेनाभेदवृत्तिस्तथैवात्मस्वरूपादिभिः प्रतिपादिता । पूर्वोक्तरीत्या पदार्थनिरूपणानन्तरं वाक्यार्थनिरूपणम-स्वरूपाद्यवच्छिन्नास्तित्वाश्रयः पररूपाद्यवच्छिन्ननास्तित्वाश्रयो घट इत्यादिरूपेण प्रतिपादितम् । तत्पश्चात् के च घटस्य स्वरूपादयः के च पटरूपादय इति शङ्कामुपन्यस्य घट इत्याकारकबुद्धौ प्रकारतया भासमानो घटपदशक्यतावच्छेदकीभूतो यः सदृशपरिणामलक्षणो घटत्वरूपधर्मः स एव घटस्य स्वरूपं तदन्यपटत्वादिकं पररूपमिति स्वरूपेण घटस्यास्तित्वं पररूपेण च नास्तित्वमिति । अथ च पटत्वादिपररूपेणापि घटस्यास्तित्वाङ्गी-कारे घटस्य पटात्मकत्वापत्तिः स्वरूपेणापि नास्तित्वे खरविषाणवत् शून्यतावाद इत्येवमादिना स्वरूपपररूपस्य बहवो विकल्पा उपन्यस्ताः । घटस्य स्वरूपद्रव्यक्षेत्रकालैरस्तित्वं पररूपद्रव्यक्षेत्रकालैश्च नास्तित्वं प्रतिपादितम् ।

अग्रे च सकलपदार्थानां स्वकीयपरकीयस्वरूपादिचतुष्टयेन व्यवस्थायां स्वरूपादीनामप्यन्यत्स्वरूपादिक-मपेक्षितमेवैतेषामप्यन्यदित्यनवस्था तथा च यथावस्तुप्रतीतिव्यवस्था कार्य्येति किं स्वरूपादिनास्तित्वेन पर-रूपादिना च नास्तित्वेन किमित्याशङ्क्य वस्तुस्वरूपमेव स्वरूपपररूपाद्यवच्छिन्नं सत्वासत्वादिकं विषयीकरोतीति निर्णेतुं ग्रन्थप्रवृत्तेरन्यथा च नाना निरङ्कुशविप्रतिपत्तीर्निवारयितुमशक्तेरिति समाहितम् ।

अग्रे च केवलान्वयिप्रमेयादिपदार्थेषु स्वपररूपादीनामप्रसिद्धेः कथं व्यवस्थेत्याशङ्क्य तत्रापि प्रमेयत्वं प्रमेयस्य स्वरूपं, घटत्वादिकं च पररूपं, यद्यपि घटत्वादीनामपि प्रमेयत्वमक्षतं तथापि तत्र प्रमेयत्व-रूपेण तद्रूपता नास्तीति विचार्य्य ग्रन्थकारेण तथा लिखितम् । अथवा प्रमेयत्वं प्रमेयस्य स्वरूपम् अप्रमेयत्वं च प्रमेयस्य पररूपमिति; यद्यपि प्रमेयत्वाभावरूपा प्रमेयत्वस्याप्रसिद्धिस्तथापि गगनकुसुमशशविषाणादौ चाप्र-मेयत्वप्रसिद्धिः स्फुटैव तत्र च प्रमाणजन्यप्रमितिविषयताभावेन प्रमेयत्वाभावादिति प्रतिपादितम् ।

अथाग्रे च महासत्वरूपस्य शुद्धद्रव्यस्य सम्पूर्णद्रव्यक्षेत्रकालभावनात्मकतया तद्भिन्नत्वेनान्यद्रव्यभावात् कथं तत्र स्वपररूपादिव्यवस्थेत्याशङ्क्य तत्रापि सकलद्रव्यक्षेत्रकालादीनां स्वरूपत्वं विकलद्रव्यादीनां च पर-रूपत्वमिति सकलद्रव्यक्षेत्रकालाद्यपेक्षयाऽस्तित्वं विकलद्रव्यक्षेत्रकालाद्यपेक्षया च नास्तित्वमिति समाहितम् ।

अग्रेचास्तित्वस्य स्वाश्रयत्वेन वास्तविकवस्तुरूपता,नास्तित्वस्य च पराधीनत्वेन वस्तुरूपतेत्यनेकान्तवादे अस्तित्वमिव नास्तित्वमपि वस्तुरूपमिति डिंडिमघोषणा कैमर्थिकेत्याशङ्क्य साधर्म्यवैधर्म्ययोरिवास्तित्वनास्ति-त्वयोरविनाभावः प्रदर्शितः सूक्ष्मबुद्धीनां च घटादिस्वरूपाऽवबोधेस्तित्वमिवान्यपदार्थाभावस्यापि प्रतीतेः अन्य-प्रतिषेधाभावे च वस्त्वन्तरभावापत्तेः । यद्यपि शशविषाणादिषु नास्तित्वस्यैवावलोकनात् नास्तित्वमस्तित्व-मन्तरापि सम्भवतीति नास्तित्वास्तित्वयोरविनाभावो नास्ति तत्कथं नास्तित्वमपि वस्तुरूपमित्याशङ्क्य तत्रापि गोमस्तकादिसमवायित्वेन प्रसिद्धस्य विषाणादेः शशादिसमवायित्वेन च तस्य नास्तित्वमिति निश्चयः एवमेव मेषादिषु समवायित्वेन प्रसिद्धरोम्णः कूर्मसमवायित्वेन तस्य निषेध इत्यस्तित्वनास्तित्वयोरविनाभावोऽक्षत एवेति ध्येयम् ।

अग्रे चास्त्येव जीवः इति वाक्येऽस्ति स्वभावात् (अस्तिपद) वाच्यार्थभिन्नस्वभावो जीवशब्द-वाच्यार्थोऽभिन्नस्वभावो वा ? अभिन्नस्वभावेऽस्ति जीवयोरेकार्थकत्वेन विशेष्यविशेषणभावाभावाद्घटकलश-शब्दार्थयोरिव वाक्यार्थबोधाभावः । भिन्नस्वभावत्वे च जीवस्यासद्रूपतापत्तिः सत्त्वाद्भिन्नस्यासद्रूपतापर्यव-सानात् । एतत्समाधानं च द्रव्यार्थिकनयापेक्षयाऽस्ति जीववाच्यार्थयोरभिन्नत्वं पर्य्यायार्थिकनयेन च भिन्न-त्वमित्यनेकान्तवादिनां न दोषलेशाऽवकाशत्वमनयादिशा भङ्गद्वयनिरूपणं कृतमित्यलमतिविस्तरेण ।

अथ तृतीयादिभङ्गनिरूपण प्रस्तावना । भङ्गद्वय निरूप्याचार्य्येण तृतीयादिभङ्गानां निरूपणमारब्धम् । स च स्यादस्ति नास्ति च घट इत्याकारकः । घटाद्येकधर्म्यनुयोगिकक्रमार्पितविधिप्रतिषेधप्रतियोगिकबोध-लक्षणकवाक्यत्वं च तल्लक्षणमभिहितम् । तत्र च क्रमशोऽर्पितस्वपररूपाद्यपेक्षयाऽस्तिनास्तिस्वरूपो घटो भव-तीति प्रायशो निरूपितमेवेति पूर्वप्रस्तावनादेव बोध्यम् । सहार्प्पितस्वरूपपररूपविवक्षायां च घटरूपानिरूप-णमसम्भवीति स्यादवक्तव्य एव घट इति चतुर्थभङ्गप्रवृत्तिः प्रदर्शिता । तत्प्रवृत्तौ च निखिलशब्दानां युगपत्प्रधानतया सत्वासत्वप्रतिपादने शक्त्यभाव एव बीजमिति प्रदर्शितम् । प्राधान्येनोभयार्थप्रतिपादने चा-स्तिनास्तीत्यन्यतरशब्दाप्रयोग एव उचितः नानार्थकशब्देषु च प्रत्यर्थं शब्दा भिद्यन्त इति युक्तिरभिहिता । तेन च वाक्यानामपि युगपन्नानार्थबोधकता प्रत्याख्यातप्राया । सेनावननगरादिशब्देषु च हस्त्यश्वरथपदाति-समूहस्यैव सेनाशब्दवाच्यतेत्यङ्गीकरणान्न दोषलेशाऽवकाश इति निरूपितम् । तथा वननगरादिशब्दैरपि वृक्षप्रासादसमूहस्यैव वाच्यव्यवस्था प्रदर्शिता ।

वृक्षौ वृक्षा इत्यादि द्विवचनबहुवचनान्तप्रत्येकशब्दैः कथं द्विबहुवचनार्थबोधकतेत्याशङ्क्य पाणिन्यादिमत एकशेषेण जैनेन्द्रमते च स्वभावत एव द्विबहुवचनान्तवृक्षादिशब्दा द्वित्वबहुत्वविशिष्टवृक्षादिरूपपदार्थान् बोधयन्तीति समाहितम् । तत्रापि प्रधानभावेन प्रथमतो वृक्षत्वादिजात्यवच्छिन्नार्थान् बोधयित्वा पश्चा-ल्लिङ्गसङ्ख्याद्यन्वये च गौणतया द्वित्वविशिष्टान् बोधयन्तीति समाहितमत एवैकं पदं प्रधानभावेना-नेकार्थबोधकमिति न नियमभङ्गप्रसक्तिः । प्रमाणवाक्यस्य प्रधानताऽशेषधर्मात्मकवस्तुप्रकाशकता च कालादि-भिरभेदवृत्त्या अभेदोपचारेण वा द्रव्यपर्य्यायनयार्पणविधयैव सकलार्थबोधकतेत्येकवाक्यस्यापि प्रधानभावेना-नेकार्थप्रतिपादकतेत्यभिहितप्रायम् ।

सत्वासत्वे इत्यादि द्वन्द्वस्थलेऽपि क्रमेणैव गुणप्रधानभावेनार्थप्रत्यायनम् अन्यथाऽभ्यर्हितं चेत्याद्यनुशास-नानुपपत्तिः स्फुटैव । अथ च प्राधान्येनोभयपदार्थबोधनसामर्थ्याङ्गीकारेऽपि द्वन्द्वस्य प्रधानतयाऽस्तित्वनास्ति-त्वोभयाऽवच्छिन्नधर्मिणः प्रतिपादकशब्दाभावाद्घटादीनामवक्तव्यताक्षतैवेति निरूपितम् । अथ च सद-सत्वविशिष्टं वास्तिवत्वादिपदेन द्वन्द्वगर्भतत्पुरुषेण सदसत्वविशिष्टपदेनोभयावच्छिन्नस्य वस्तुनो बोधसम्भवेन कथं प्रधानतया सत्वासत्वबोधकं पद नास्तीति नियमः । तत्र सदसत्वविशिष्टपदार्थस्यैव प्राधान्यं न तु सदसतोः तयोश्चाप्राधान्यमेवात एवोत्तरपदार्थप्रधानास्तत्पुरुष इति वचनं संगच्छत इति ।

अवक्तव्यता च प्रकृते न सर्वथाऽत एव स्याच्छब्दप्रयोगोऽन्यथा अवक्तव्यघट इत्यभिधानेऽस्तित्वादि-धर्ममुखेनापि प्रथमादिभङ्गे घटस्य वक्तव्यतैव स्यादिति स्याच्छब्देन कथंचिदवाच्यताप्रतीतिः तथा चास्ति-त्वादिरूपेण वक्तव्यतावान् घटः किन्तु प्रधानीभूतसत्वासत्वोभयधर्मरूपेण युगपदवक्तव्य इति चतुर्थभङ्ग-सिद्धान्तपरिपाटी ।

अथाग्रेन्तिमभङ्गत्रयमाचार्य्येण व्यस्तसमस्तद्रव्यपर्य्यायावाश्रित्यापादितं । तत्र द्रव्यस्य व्यस्तत्वे द्रव्यपर्याययोश्च सहार्पितत्वे स्यादस्ति चावक्तव्य घट इति पञ्चमभङ्गप्रवृत्तिरुपन्यस्ता । वाक्यलक्षणकादिकं च मूलग्रन्थव्याख्यानेऽभिहितम् ।

एवं पर्यायस्य व्यस्तत्वे द्रव्यपर्याययोश्च समस्तत्वे स्यान्नास्ति चावक्तव्य एव घट इति षष्ठभङ्गप्रवृत्तिः तत्र पृथक्पर्यायविवक्षया नास्तित्वं प्राधान्येन मिलितद्रव्यपर्य्याययोजनया चावक्तव्यत्वमिति । पञ्चमभङ्गे हि पार्थक्येन द्रव्यत्वयोजनयास्तित्वं मिलितप्रधानभूतद्रव्यपर्य्यायोभययोजनया युगपदवक्तव्यत्वमित्यनयोर्भेदः ।

एवमेव व्यस्तौ क्रमयोजितौ समस्तौ च सह योजितौ द्रव्यपर्य्यायौ समाश्रित्य स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्य एव घट इति सप्तमभङ्गप्रवृत्तिरुपदर्शिता। तत्र पार्थक्येन द्रव्यपर्यायियोः क्रमशो योजनया चास्तित्वनास्तित्वाश्रयता घटस्य, समस्तसहार्पितयोजनया चावक्तव्यताश्रयता। लक्षणनिर्वचनतत्वसमन्वयादिकं च ग्रन्थव्याख्यावसरे विस्तरेणोक्तं तत एवावगन्तव्यमिति संक्षेपः शम्।

सप्तभङ्गान् व्याख्यायैकान्ततो द्रव्यपर्याया वक्तव्यवादिनां सांख्यबौद्धादीनां खण्डनुमुपन्यस्तम्, सर्वथा द्रव्यस्य केवलस्य पर्य्यायस्यावक्तव्यत्वस्य वाऽप्रतीतेः। एतदग्रे चानेकान्ते सप्तभङ्गीप्रवृत्त्यप्रवृत्तिभ्यां दोषमुपन्यस्तम्। प्रमाणनयार्पणभेदाच्च समाहितम्। एतत्प्रसङ्गत एव सम्यगेकान्तो मिथ्यैकान्तः सम्यगनेकान्तो मिथ्यानेकान्त इति रीत्यैकान्तानेकान्तयोर्द्वैविध्यं प्रतिपादितम्। तत्रापि स्यादेकान्तः स्यादनेकान्तः स्यादुभयः स्यादवक्तव्य इत्यादि रूपेण सप्तभङ्गी योजितेति ध्येयम्। अनयैव दिशा नित्यत्वानित्यत्वैकत्वानेकत्वादिधर्मेषु चैवमेवमियं सप्तभङ्गी योजनीयेत्यभिहितम्।

अथाग्रे सत्तासामान्यस्यापि निखिलवस्तुव्यापिनोऽनङ्गीकारे च सर्वं वस्तुजातं स्यादेकं स्यादनेकमिति कथनाऽनुपपत्तिः नित्यैकस्थायिरूपेण सत्सामान्यस्य जैनसिद्धान्तेऽभावादिति शङ्कितम्। तत्तद्व्यक्त्यात्मना-सत्वस्यानेकत्वेऽपि स्वरूपेण तस्यैकत्वस्वीकरणात्समाहितम्।

एवमेव अयं स्याज्जीवः स्यादजीवः इति मूलभङ्गद्वयम्। तत्रोपयोगात्मना अयं जीवः प्रमेयत्वाद्यात्मना चायमजीवः इत्यादिरूपा व्यवस्था प्रदर्शिता। अत्र स्वामिभट्टाकलङ्कदेवानां वचनमपि प्रमाणतयोपन्यस्तम्। यथाः—

प्रमेयत्वादिभिर्धर्मैरचिदात्मा चिदात्मकः।
ज्ञानदर्शनतस्तस्माच्चेतनाऽचेतनात्मकः ॥ १ ॥ इति.

अथाग्रे तदेव नित्यं तदेवानित्यं तदेवैकम् तदेवानेकम् स एव जीवः स एवाजीवः इत्यादि रूप-निरूपणादनेकान्तवादश्छलमात्रमित्याशङ्क्य छलादिलक्षणाभावाद् वस्तुनश्च तादृशस्वभाव इति रीत्या समाहितम्। एवमेव संशयादिलक्षणाभावात्संशयादिजनकमपि नानेकान्तवाद इति समाहितम्।

अथाग्रे च विरोधवैयधिकरण्यानवस्थासंकरव्यतिकरसंशयाप्रतिपत्त्यभावरूपा अष्टौ दोषा अनेकान्तवादे सन्तीत्याशङ्क्य प्रकृते विरोधादयो न सन्ति विरोधो हि वस्त्वनुपलम्भसाध्यः कथंचित्प्रतीयमाने वस्तुनि स्वरूपाद्यपेक्षया विवक्षितयोः सत्वासत्वयोर्नास्ति विरोधः इत्यादि युक्त्या वध्यघातकभावः, सहानवस्थितिः, प्रतिबद्धप्रतिबन्धकः भावश्चेति त्रिविधविरोधमध्ये कस्याप्यत्रानेकान्तवादेऽस्तित्वाभाव इति रीत्या च समाहितम्। अनयैव रीत्या सत्वासत्वयोः प्रधानगुणभावेन सर्वत्र प्रतीतेर्वैयधिकरण्यादिदोषा अपि निरस्ताः।

अग्रे चानेकान्तवादे सांख्यादिवादिनामानुकूल्यं प्रदर्शितम्। सांख्यास्तावत्सत्वतमोरजसां साम्यावस्था-प्रधानमिति वदन्तोऽन्योन्यविरोधिधर्मणामेकत्र सम्मेलनेनानेकान्तवादं स्वीचक्रुः। नैयायिका अपि द्रव्यत्वा-दिकं सामान्यविशेषरूपमङ्गीकुर्वन्तोऽनेकान्तवादे सम्मतिमददन्। सौगता अपि मेचक (मणिविशेष) ज्ञान-मेकमनेकाकारं कथयन्तोऽनेकान्तवाद स्वीचक्रुरित्यादिरीत्या चार्वाकमीमांसकादीनामपि स्वमतानुकूल्यं प्रदर्शितम्।

अस्य च ग्रन्थस्यार्य्यभाषाऽनुवादकरणे जैनवंशाऽवतंसश्रीश्रेष्ठिवर्य्यरेवाशंकरजगजीवनमहाशयसम्बन्धि-श्रीरायचन्द्रजैनशास्त्रमालाप्रबन्धकर्ता श्रीमनसुखलालरविजीभाईमहाशयेनाज्ञप्तोऽहम्। विशिष्टविदुषां सविधे चेयं सुभृशं विज्ञप्तिर्यत्सति प्रमादे क्षन्तव्या गा मषेयमिति शम्।

विदुषां चरणसरोरुहसेवीः,—

प्रयागमण्डलान्तर्गतहरिपुरग्रामनिवासी मुरादाबादस्थगवर्णमेण्टनार्मलपाठशालाध्यापकः
महामहोपाध्याय श्री ६ दामोदरशास्त्रिणामन्तेवासी
आचार्य्योपाधिधारिठाकुरप्रसादशर्म्मा द्विवेदी।

———

श्री परमात्मने नमः

उपोद्घातः ।

विदित हो, कि अधिक पांडित्य परिपूर्ण जैन ग्रन्थोंमेंसे यह **सप्तभङ्गीतरङ्गिणी** नामक अपूर्व जैनतर्कग्रन्थ है। इस ग्रन्थके प्रणेता **वीरग्रामनिवासी** श्रीमान् **अनन्तदेवस्वामी**के प्रिय तथा मुख्य शिष्य महात्मा **श्री विमलदास** नाम का दिगम्बर जैन हैं। **तंजा** नामक अपने ग्राममें ही इस अनुपम ग्रन्थको रचा है। परन्तु इसका निर्माणकाल निश्चित नहीं होता। यद्यपि ग्रन्थकारने ग्रन्थके अन्तमें स्वयं लिखा है कि प्लवङ्गनाम संवत्सर-पुष्यनक्षत्र-रविवार-वैशाख-शुद्धाष्टमी को यह ग्रन्थ रचा, परन्तु हमको इससे कौनसे विक्रमीय व ख्रीष्टाब्दमें यह रचा गया सो निश्चय नहीं होता। कदाचित् ज्योतिर्वेत्ता इससे संवत् निकाल लें। यह पण्डितवर कब और किस कुलमें उत्पन्न हुए, यहभी निर्णय नहीं कर सके।

इस ग्रन्थमें जैनमतके प्राण का सर्वस्वभूत जो सप्तभङ्ग हैं, उनका प्रधानरूपसे व्याख्यान किया गया है। और सप्तभङ्गोंकी प्रवृत्तिमें हेतु तत्त्वार्थज्ञानके उपायभूत प्रमाण तथा नयस्वरूप प्रश्नवाक्योंकी सात प्रकारकी प्रवृत्ति दर्शाई गई है। और सात ही प्रकारके प्रश्नवाक्योंके प्रवृत्त होनेमें सप्तविध संशय दर्शाये गये हैं। और सप्तप्रकारके संशय होनेमें सम्पूर्ण जगत्के ऐहिक तथा पारलौकिक संशय निश्चय बिषयीभूत सप्तविध धर्मोंकी प्रवृत्ति दिखाई गई है। वे सप्तविध धर्म ये हैं:—कथंचित् सत्व १, कथंचित् असत्व २, क्रमार्पित उभय ३, कथंचित् अवक्तव्य ४, कथंचित् सत्वविशिष्ट अवक्तव्य ५, कथंचित् असत्वविशिष्ट अवक्तव्यत्व ६, और क्रमार्पित उभय विशिष्ट अवक्तव्यत्व ७। इन सातों धर्मोंके प्रतिपादक जो सप्तवाक्य हैं, उन्हींको सप्तभङ्ग कहते हैं। और सप्तभङ्गोंका समूह वा समाहार जो है, उसीको सप्तभङ्गी कहते हैं। इन भङ्गोंका स्वरूप ग्रन्थकी टीका तथा संस्कृत उपोद्घात में हम दर्शा चुके हैं, यहां पुनः लिखकर पुनरुक्ति या पाठकोंका समय खोना नहीं चाहते। सातों भङ्गोंका स्वरूप दर्शानेके पश्चात् ग्रन्थकारके सप्तभङ्गीवाक्यका लक्षण तथा भङ्गोंकी सात ही संख्या हो सकती है; उससे न्यूनाधिक नहीं हो सकती, यह स्थापित किया है, और इन सप्तभङ्गोंका परस्पर जो भेद है, उसको पूर्णरूपसे दर्शाया है।

इसके पश्चात् प्रथम भङ्ग अर्थात् **'स्यादस्त्येव घटः'** 'कथंचित् घट है, से लेकर सप्तभङ्ग पर्यन्तकी पूर्ण रूपसे अनेक तर्क वितर्कोंसे व्याख्या की है। और इन भङ्गोंसे जिस प्रकार अर्थबोध होता है, वह दर्शाया है। तथा प्रमाणसप्तभङ्गी और नयसप्तभङ्गी इन दो भेदोंसे सप्तभङ्गीके दो

भेद दर्शाये हैं। तथा सकलादेश अर्थात् पूर्णरूपसे पदार्थोंका ज्ञापक प्रमाणवाक्य और विकलादेश अर्थात् एकदेश पदार्थ स्वरूपका बोधक नयवाक्य है। इस प्रकार सकलादेश प्रमाणवाक्य विकलादेश नयवाक्य इत्यादि अनेक विकल्पोंको लिखकर सिद्धान्त दर्शाया है। इसके पश्चात् प्रथम भङ्गमें (स्यादस्त्येव घट:) द्रव्यवाचक मानकर घटको विशेष्य और गुणवाचक मानकर अस्तिको विशेषरूपसे वर्णन किया है। और जैन-सिद्धान्त अनेकान्तवाद है। अनेकान्तवादका यह अर्थ है, कि प्रत्यक्ष, अनुमान तथा आगमसे अविरुद्धरूप एक वस्तुमें अस्तित्व नास्तित्व आदि नानाधर्मोंके निरूपणमें जो तत्पर हो, वही जैनमतका अनेकान्तवाद है। तो इस प्रकारके अनेकान्तवादमें स्वकीयरूप द्रव्यक्षेत्रादिसे घटका अस्तित्व है न कि अनिष्ट असत्वादिक; इस बातको द्योतन करनेकेलिये **"स्यादस्त्येव घटः"** इस प्रथमभङ्गमें **'एव'** इस निश्चयबोधक निपातका प्रयोग किया है। इस प्रकारसे एवकारका प्रयोग भङ्गोंमें करना उचित है या नहीं, इस विषयमें ग्रन्थकारने बहुत खण्डन मण्डन किया है, और अन्तमें यह सिद्धान्त किया है कि स्याद्वादन्यायमें अकुशल शिष्योंकेअर्थ एवकार शब्दका प्रयोग उचित है और स्याद्वादमें जो कुशल हैं उनको आवश्यकता नहीं है। ऐसे ही अनेकान्तस्वरूप अर्थके बोधनार्थ स्यात् इस निपातका भी भङ्गोंमें प्रयोग किया है। और स्याद्वाद न्यायमें कुशल विद्वानोंके अर्थ तो 'अस्ति घट:' इतना ही प्रयोग पर्याप्त है, क्योंकि उनको तो शब्दकी शक्ति तथा प्रमाणादिद्वारा अनेकान्तरूप अर्थका बोध हो ही जावेगा, इस प्रकार सिद्धान्त किया है, और इसी प्रसङ्गमें निपातोंका वाचकत्व और द्योतकत्व दोनों पक्ष शास्त्रसम्मत हैं यह भी दर्शाया है। तथा जो बौद्धमतावलम्बी अनेकान्त पक्षको छोड़कर अन्य व्यावृत्ति ही शब्दशक्ति मानते हैं, उनका खंडन भी किया है। अर्थात् अन्यके निषेधसे अतिरिक्त सर्वत्र शब्दजन्य ज्ञान घटादि पदसे विधिमुखसे होता है, न कि व्यावृत्ति रूपसे। इस हेतुसे तथा प्रकारान्तरसे भी बौद्धमतकी असंगति दर्शाई है। इसी प्रकार सप्तभङ्गोंके अर्थ अनेक तर्क वितर्कोंसे वर्णन किया है; जिसको हमने संस्कृत भूमिकामें स्पष्ट किया है, यहाँ पुन: लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। इस ग्रन्थको जो आरम्भसे अन्ततक मनोयोगसे पढ़ेंगे, उनको पूर्ण रीतिसे विदित होगा, क्योंकि सब विषय शृंखलाबद्ध है।

मुझे इस ग्रन्थका भाषानुवाद करनेकी आज्ञा **रायचन्द्रशास्त्रमाला** के प्रबन्धकर्ताद्वारा प्राप्त हुई।

सर्वशुभचिन्तक:—

आचार्य्यठाकुरप्रसाद:।

श्रीमद्राजचन्द्रजैनशास्त्रमालायाम्

श्रीमद्विमलदासविरचिता

सप्तभङ्गीतरङ्गिणी ।

वन्दित्वा सुरसन्दोहवन्दिताङ्घ्रिसरोरुहम् ।
श्रीवीरं कुतुकात्कुर्वे सप्तभङ्गीतरङ्गिणीम् ॥१॥

इह खलु तत्त्वार्थाधिगमोपायं प्रतिपादयितुकामः सूत्रकारः **"प्रमाणनयैरधिगम"** इत्याह । तत्राधिगमो द्विविधः– स्वार्थः, परार्थश्चेति । स्वार्थाधिगमो ज्ञानात्मको मतिश्रुतादिरूपः । परार्थाधिगमः शब्दरूपः । स च द्विविधः—प्रमाणात्मको नयात्मकश्चेति । कात्स्न्र्यतस्तत्त्वार्थाधिगमः प्रमाणात्मकः । देशतस्तत्त्वार्थाधिगमो नयात्मकः । अयं द्विविधोऽपि भेदः सप्तधा प्रवर्तते, विधिप्रतिषेधप्राधान्यात् । इयमेव प्रमाणसप्तभङ्गीयसप्तभङ्गीति च कथ्यते । सप्तानां भङ्गानां–वाक्यानां समाहारः–समूहः सप्तभङ्गीति तदर्थः । तानि च वाक्यानि—

भाषाकारका मङ्गलाचरण.

गणेशं विघ्नहर्त्तारं वीतरागमकल्मषम् ।
प्रणम्य परया भक्त्या यत्नमेतं समारभे ॥ १ ॥
श्रीगुरोश्चरणद्वन्द्वं स्मारं स्मारमहर्निशम् ।
सप्तभङ्गितरङ्गिण्या अनुवादं करोम्यहम् ॥ २ ॥

शिष्टाचारप्राप्ति विघ्नविनाशार्थ तथा ग्रन्थकी परिसमाप्तिकी कामनासे उक्त ग्रन्थकार श्रीविमलदासजी स्वाभीष्ट श्रीअर्हन् भगवान् महावीरस्वामीकी वन्दना[1] 'वन्दित्वा' इत्यादि श्लोक से करते हैं ।

श्लोकान्वयः—अहं **विमलदासः** यह अध्याहृत पद है. [2]**सुरसन्दोहवन्दिताङ्घ्रिसरोरुहं श्रीवीरं–श्रिया अष्टप्रातिहार्य्यादिलक्ष्म्या पञ्चकल्याणसमये इन्द्रासनकम्पनादिलक्ष्म्या च युक्तो वीरः श्रीवीरस्तं [3]वन्दित्वा [4]कुतुकात् [5]सप्तभङ्गीतरङ्गिणीं [6]कुर्वे ॥** भावार्थ—मैं विमलदास सम्पूर्ण देवसमूहोंसे जिनका चरणकमल नमस्कृत है ऐसे अर्थात् सर्व देवसमूह–नमस्कृत रक्तचरणारविन्दयुक्त तथा अष्ट महा

---

१ नमस्काररूप मङ्गलाचरण. २ निखिलदेवसमूहनमस्कृतचरणपङ्कजम्. ३ नमस्कृत्य. ४ कुतूहलादनायासेनेति भाव. ५ सप्तानां स्यादस्ति स्यान्नास्तीत्यादिभङ्गानां समाहारः सप्तभङ्गी, तद्रूपां तरङ्गिणीम्. ६ रचयामीति भावः ।

प्रातिहार्य्यादि लक्ष्मी और गर्भ निवासादि पञ्च मंगल समयमें इन्द्रोंके आसनोंकी कम्पन आदि श्रीयुक्त[1] महावीरस्वामीको नमस्कार करके कुतूहल अर्थात् अनायाससेही (विनापरिश्रमके) इस सप्तभङ्गीतरङ्गिणी नाम ग्रन्थको अर्थात् स्यादस्ति स्यान्नास्ति इत्यादि सप्त भेद प्रतिपादक तर्कशास्त्रको रचता हूं ॥

जवतक सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्रकी प्राप्ति नहीं होती तबतक प्राणी अनादिकालसे प्रवृत्त इस संसारमें कर्मोके बन्धनसे मुक्त होकर मुक्तिरूप सुखको कदापि नहीं प्राप्त होता और इनकी प्राप्ति जीव आदि तत्त्वोंके पूर्ण ज्ञानसे होती है, इसी हेतुसे भगवान् सूत्रकारने तत्त्वार्थज्ञानके उपायके प्रतिपादनकी इच्छासे [2]**"प्रमाणनयैरधिगमः"** यह सूत्र कहा है, अर्थात् सम्यग्दर्शनादिक तथा नाम स्थापना द्रव्य आदि विधिसे निक्षिप्त जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, तथा मोक्षरूप तत्त्वार्थोका [3]अधिगम, प्रमाण तथा नयसेही होता है, इस सूत्रमें जो अधिगम कहा है वह दो प्रकारका है। एक स्वार्थ अधिगम दूसरा परार्थ अधिगम, इनमें मतिश्रुत आदिरूप ज्ञानात्मक अधिगमको स्वार्थाधिगम कहते हैं और शब्दात्मक अर्थात् वचनरूप अधिगमको परार्थाधिगम कहते हैं। और पुनः वह अधिगम प्रमाणरूप तथा नयरूप इन दो भागोंमें विभक्त है। इनमेंसे सम्पूर्ण रूपसे तत्त्वार्थाधिगम जिसकेद्वारा होता है उसको प्रमाणात्मक कहते हैं। और एक देशसे जिसकेद्वारा तत्त्वार्थाधिगम होता है उसको नयात्मक कहते हैं। पुनः विधि तथा निषेधकी प्रधानतासे ये दोनों [4]भेद सप्तभङ्गमें विभक्त हैं। इसी सप्त विभाग समूहको प्रमाणसप्तभङ्गी और नयसप्तभङ्गी भी कहते हैं, क्योंकि "सप्तानां भङ्गानां वाक्यानां समाहारः समूहः सप्तभङ्गी" अर्थात् [5]सप्त [6]भङ्गोंका जो समूह है उसका नाम सप्तभङ्गी है, इस प्रकार सप्तभङ्गी शब्दका व्याकरणकी रीतिसे अर्थ होता है। जैसे 'त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी' 'अष्टानां सहस्रणां समाहारः अष्टसहस्री' अर्थात् तीन लोकोंका जो समूह उसको त्रिलोकी, और [7]अष्ट सहस्रोंका जो समूह है उसको अष्टसहस्री कहते हैं। ऐसे ही सप्तभङ्गोंके समूहको सप्तभङ्गी कहते हैं। इन सप्तभङ्गोंका विभाग इस प्रकार है :—

"स्यादस्त्येव घटः ॥ १ ॥ स्यान्नास्त्येव घटः ॥ २ ॥ स्यादस्ति नास्ति च घटः ॥ ३ ॥ स्यादवक्तव्य एव ॥ ४ ॥ स्यादस्ति चावक्तव्यश्च ॥ ५ ॥ स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च ॥ ६ ॥ स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्यश्च ॥ ७ ॥" इति एतत्सप्तवाक्यसमुदायः सप्तभङ्गीति कथ्यते ।

स्यादस्ति घटः — कथंचित् घट है ॥ १ ॥
स्यान्नास्ति घटः — कथंचित् घट नहीं है ॥ २ ॥

---

१ लक्ष्मी वा ऐश्वर्य्यसहित अन्तिमतीर्थंकरको, २ महातत्त्वार्थ सूत्र, अध्याय १ सूत्र ६, ३ ज्ञान, ४ प्रमाण तथा नयरूप, ५ सात, ६ वाक्योंका, ७ आठ।

स्यादस्ति नास्ति च घटः — कथंचित् घट है और [1]कथंचित् नहीं है ॥ ३ ॥
स्यादवक्तव्यो घटः — कथंचित् घट अवक्तव्य है ॥ ४ ॥
स्यादस्ति चावक्तव्यश्च घटः — कथंचित् घट है और अवक्तव्य है ॥ ५ ॥
स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च घटः — कथंचित् नहीं है तथा अवक्तव्य घट है ॥ ६ ॥
स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्यश्च घटः — कथंचित् है नहीं है इस [2]रूपसे अवक्तव्य घट है ॥७॥

इन ही सप्तवाक्योंके समुदायका नाम सप्तभङ्गी है।

तल्लक्षणन्तु प्राश्निकप्रश्नज्ञानप्रयोज्यत्वे सति, एकवस्तुविशेष्यकाविरुद्धविधिप्रतिषेधात्मकधर्मप्रकारकबोधजनकसप्तवाक्यपर्याप्तसमुदायत्वम् । वर्त्तते चेदं लक्षणं दर्शितवाक्यसप्तके । तथाहि प्राश्निकप्रश्नज्ञानप्रयोज्यत्वं हि परम्परया प्राश्निकप्रश्नज्ञानजन्यत्वम् । तथा च प्राश्निकप्रश्नज्ञानेन प्रतिपादकस्य विवक्षा जायते, विवक्षया च वाक्यप्रयोग, इति प्राश्निकप्रश्नज्ञानप्रयोज्यत्वमुक्तसप्तवाक्यसमुदायस्याक्षतम् । एवं घटादिरूपैकवस्तुविशेष्यकाविरुद्धविध्यादिप्रकारको यो बोधः घटोऽस्तीत्यादिरूपो बोधः, तज्जनकत्वं च वर्तत इति ।

इस सप्तभङ्गीका लक्षण यह है कि—प्रश्नकर्त्ताके प्रश्नज्ञानका प्रयोज्य रहते, एक पदार्थ विशेष्यक अविरुद्ध विधिप्रतिषेधरूप नानाधर्मप्रकारक बोधजनक सप्तवाक्यपर्याप्तसमुदायता। अर्थात् प्रश्नकर्त्ताके प्रश्नज्ञानका जो प्रयोज्य रहते एक किसी पदार्थको विशेष्य करके अर्थात् एक वस्तुमें परस्पर अविरुद्ध नाना धर्मोंका निश्चायक ज्ञानजनक सप्तवाक्योंमें रहनेवाला सप्तभङ्गी नय है। यह लक्षण पूर्वोक्त सप्तवाक्य समुदायमें है। इसका समन्वय इस प्रकार है। प्रश्नकर्ताके प्रश्नज्ञानकीप्रयोज्यता परम्परासे प्रश्नकर्ताके प्रश्नज्ञानकी जन्यतारूप होगी। अर्थात् प्रश्नकर्त्ताका प्रश्न तो जनक और प्रश्नज्ञान उसका जन्य होगा। क्योंकि प्रश्नकर्त्ताके प्रश्नज्ञानसे ही प्रतिपादन [3]करनेवालेकी [4]विवक्षा होती है और [5]विवक्षासे वाक्य प्रयोग होता है। इस रीतिसे प्राश्निक प्रश्नज्ञान प्रयोज्यता पूर्वोक्त इस वाक्यसमूहको पूर्णरूपसे है और इसीप्रकार घट आदि एक पदार्थ विशेष्यक परस्पराविरुद्ध विधिनिषेधरूप नानाधर्म प्रकारक '[6]**स्यादस्ति घटः स्यान्नास्ति घटः**' किसी विवक्षासे घट है किसी विवक्षासे नहीं है ऐसा जो ज्ञान है उसका जनक पूर्वोक्त सप्तभङ्गी नय है।

तदिदमाहुरभियुक्ताः—"प्रश्नवशादेकत्र वस्तुन्यविरोधेन विधिप्रतिषेधकल्पना सप्तभङ्गी" इति ॥

इस विषयमें आचार्योंने ऐसा कहा है। [7]प्रश्नके वशसे एक किसी घटादि वस्तुमें अविरोधरूपसे विधि तथा प्रतिषेधकी जो कल्पना है उसको सप्तभङ्गी नय कहते हैं।

अस्यायमर्थः—'प्रश्नवशात्, इत्यत्र पञ्चम्याः प्रयोज्यत्वमर्थः। विधिप्रतिषेधकल्पनेत्यस्य विधिप्रतिषेधप्रकारकबोधजनिकेत्यर्थः। अविरोधेनेति तृतीयार्थो वैशिष्ट्यं विधिप्रतिषेधयोरन्वेति ।

---

१ किसी अपेक्षासे, २ अस्ति नास्ति आदि रूप, ३ उत्तरदाताकी, ४ कहनेकी इच्छा, ५ कथनकी इच्छासे. ६ किसी विवक्षासे घट है किसी विवक्षासे नहीं हैं, ७ प्रश्नाऽनुसार ।

एकत्र वस्तुनीत्यत्र सप्तम्यर्थो विशेष्यत्वम् । तस्य कल्पनापदार्थबोधजनकत्वैकदेशे बोधेऽन्वयः सप्तभङ्गीत्यस्य सप्तवाक्यपर्याप्तसमुदायत्वाश्रयोऽर्थः । तथाचास्मदुक्तलक्षणमेव पर्यवसन्नम् ।

इस वाक्यमें **'प्रश्नवशात्'** यह जो पञ्चम्यन्त पद है इस पदमें पञ्चमी विभक्तिका प्रयोज्यता अर्थ है । **'विधिप्रतिषेधकल्पना'** इस पदका विधिप्रतिषेध प्रकारक बोधजनिका अर्थ है । **'अविरोधेन'** यहाँ तृतीया विभक्तिका वैशिष्ट्य अर्थ है और उसका अन्वय विधिप्रतिषेधके साथ होता है । **'एकत्र वस्तुनि'** इस पदमें सप्तमीका अर्थ विशेष्यता है और उसका अन्वय बोधजनकतारूप जो कल्पना पदार्थ उसके एक-देशभूत बोधके साथ होता है । और सप्तभङ्गी इस पदका अर्थ सप्तवाक्यपर्याप्तसमुदायताश्रय है । इस रीतिसे हमने प्रथम जो सप्तभङ्गी लक्षण कहा है वही सिद्ध हुआ अर्थात् प्राश्निक प्रश्नज्ञानका प्रयोज्य होकर एक वस्तु विशेष्यक अविरुद्ध विधिप्रतिषेधरूप नानाधर्मप्रकारक बोधजनक सप्तवाक्यपर्याप्त समुदायतारूप जो है वही सप्तभङ्गी नय है ॥

अथ च प्रत्यक्षादिविरुद्धविधिप्रतिषेधवाक्येष्वतिव्याप्तिवारणायाविरुद्धेति घटोऽस्ति पटो नास्तीत्यादिसमुदायवारणाय एकवस्तुविशेष्यकेति । स्यादस्ति घटः, स्यान्नास्ति घटः, इति वाक्यद्वयमात्रेऽतिव्याप्तिवारणाय सप्तेति घटमानयेत्युदासीनवाक्यघटितनिरुक्त वाक्यसप्तकेऽव्याप्तिवारणाय सप्तवाक्यपर्याप्तेति ।

इस लक्षणके जो विशेष्य दलमें अविरुद्ध विधिप्रतिषेधात्मक धर्मप्रकारक इस पदमें अविरुद्ध पद है वह प्रत्यक्षादि प्रमाणमें विरुद्ध जो विधिप्रतिषेधरूप वाक्य हैं उनमें अतिव्याप्ति दोष वारणके लिये है । क्योंकि लक्षण ऐसा होना चाहिये जिसमें अतिव्याप्ति, अव्याप्ति तथा असंभव दोष न हों । और **'[1]घटोऽस्ति पटो नास्ति'** इत्यादि समुदायमें लक्षण न जाय इसलिये **'[2]एकवस्तुविशेष्यक'** यह पद दिया है । **'[3]स्यादस्ति घटः स्यान्नास्ति घटः'** इन दो वाक्योंमें अतिव्याप्ति वारण करनेके अर्थ सप्त यह पद दिया है ॥ तथा **'[4]घटमानय'** इस उदासीन वाक्यघटित घटको लेकर पूर्वोक्त वाक्य-सप्तकमें अव्याप्ति दोष निराकरण करनेके अर्थ **'सप्तवाक्य पर्याप्त समुदायता'** यह विशेषण दिया है, अर्थात् इन सप्त पूर्वोक्त वाक्योंमें ही यह लक्षण घटित होता है, अन्यत्र नहीं ॥

यद्यपि सत्यन्तनिवेशस्यातिव्याप्त्यव्याप्त्यादि-दोषवारकत्वं न सम्भवति, तथापि प्रतिपाद्यप्रश्नानां सप्तविधानामेव सद्भावात्सप्तैव भङ्गा इति नियमसूचनाय तन्निवेशनम् । ननु-प्रश्नानां सप्तविधत्वं कथमिति चेत्; जिज्ञासानां सप्तविधत्वात् । प्राश्निकनिष्ठजिज्ञासाप्रतिपादकवाक्यं हि प्रश्न इत्युच्यते ।

यद्यपि लक्षणमें जो सत्यन्त विशेषण दल है अर्थात् **'[5]प्राश्निकप्रश्नज्ञानप्रयोज्यत्वे सति'** इतना अंश अतिव्याप्ति तथा अव्याप्ति आदि दोषोंके निवारण करनेमें सम्भव

---

१. घट है पट नहीं है. २ एकवस्तु विशेष्य करके. ३ कथंचित् घट है कथंचित् नहीं है. ४ घट लाओ. ५ प्रश्नकर्त्ताके प्रश्नज्ञानका प्रयोज्य रहते.

नहीं हो सकता तथापि प्रश्नकर्त्ताके प्रश्नोंके [1]सप्त ही भेद हो सकते हैं, इसी हेतु भङ्ग अर्थात् वाक्य भी सात ही हो सकते हैं. इस नियमके सूचनार्थ सत्यन्तदल लक्षणमें नियत किया है. क्योंकि उत्तरदाता प्रश्नकर्ताके प्रश्नोंको जानकर उसके बोधार्थ वाक्यप्रयोग करता है. अतएव सप्तभङ्ग प्रश्नकर्ताके प्रश्नज्ञानके प्रयोज्य अवश्य हुये। शङ्का-प्रश्नोंके [1]सप्त भेद क्योंकर हो सकते हैं ? यदि ऐसी शङ्का करो तो उत्तर यह है कि-प्रश्नकर्ताके जाननेकी इच्छाओंके सात ही भेद हो सकते हैं, क्योंकि प्रश्नकर्ता में जो किसी पदार्थकी जाननेकी इच्छा है उस इच्छा के [2]प्रतिपादक जो वाक्य हैं उनको ही प्रश्न कहते हैं, क्योंकि गो पदार्थको न जाननेवाला पुरुष गौके जाननेकी इच्छा से किसी पुरुषसे प्रश्न करता है कि [3]**'गोपदवाच्यं किम्'** ? तब वह उत्तर देता है कि **" सास्नालाङ्गूलककुत्खुरविपाणाद्यर्थविशिष्टो गौः "** । सास्ना अर्थात् जो गलेमें स्थित रोम-मांसस मूहरूप कम्वल [4]ककुद्, [5]खुर तथा [6]विषाण इत्यादि पदार्थविशिष्ट गौ होता है. **को गौः**[7] इस प्रश्नसे गौको न जाननेवाले पुरुषकी उस पदार्थके जाननेकी इच्छाहीसे वक्ता उत्तर देता है, क्योंकि जिस पदार्थके जाननेकी इच्छा नहीं है उसको बोधन कराना अयोग्य है. उस पुरुषके जाननेकी इच्छा वक्ताको अर्थात् उत्तरदाताको उसके प्रश्नसे ज्ञात होती है. इसी कारणसे प्रश्नकर्ताका प्रश्न ही [8]जिज्ञासाका प्रतिपादक वाक्य है और वह उत्तरदाताके ज्ञानका जनक है कि अमुक प्रश्नकर्ता अमुक पदार्थ जानना चाहता है, उसीके अनुसार वह उत्तर देनेमें प्रवृत्त होता है ॥

ननु सप्तधैव जिज्ञासा कुत इति चेत्, सप्तधा संशयानामुत्पत्तेः । संशयानां सप्तविधत्वन्तु तद्विपयीभूतधर्माणां सप्तविधत्वात् । ताहशधर्माश्च कथञ्चित्सत्वं, कथञ्चिदसत्वं, क्रमार्पितोभयं, अवक्तव्यत्वं, कथञ्चित्सत्वविशिष्टावक्तव्यत्वं, कथञ्चिदसत्वविशिष्टावक्तव्यत्वम् क्रमार्पितोभयविशिष्टावक्तव्यत्वम्, चेति सप्तैव । एवं च दर्शितधर्मभिषयकाः सप्तैव संशयाः । अत्र घटः स्यादस्त्येव वा नवेति, कथञ्चित्सत्वतदभावकोटिकः प्रथमसंशयः ।

अब कदाचित् यह कहो कि [9]सप्त ही प्रकारकी जानने की इच्छा क्यों होती है ? तो इसका उत्तर यह है कि,—संशयोंके भेद भी सात ही प्रकारके होते हैं और संशयोंके सात प्रकारके होनेका कारण यह है कि संशयोंके विषयीभूत धर्मोके भेद सप्त ही प्रकारके हैं। उस प्रकारके धर्म कथंचित् सत्व १ कथंचित् असत्व २ कथंचित् क्रमसे समर्पित सत्व असत्व उभयरूप ३ कथंचित् [10] अवक्तव्यत्व ४ कथंचित् सत्वविशिष्ट अवक्तव्यत्व ५ कथंचित् असत्व विशिष्ट अवक्तव्यत्व ६ कथंचित् क्रमसे समर्पित सत्व और असत्व एतदुभय विशिष्ट अवक्तव्यत्व ७, ये सात हैं। इस प्रकार पूर्व[11] प्रदर्शित सत्व आदि विषयक सात ही संशय हो सकते हैं।

---

१ सात. २ कहनेवाले. ३ गौ किसको कहते हैं. ४ गर्दनकेसमीप पीठपर उच्च शरीरका अवयव, ५ सफ. ६ शृङ्ग. ७ गौ क्या है. ८ जाननेकी इच्छाका. ९ सात. १० किसी विवक्षा वा अपेक्षासे. ११ पहिले दर्शाये हुये.

यहाँ पर [1]**"घटः स्यादस्त्येव वा नवा'** यह घट विषयक [2]सत्त्व तथा उसके अभावविषयक प्रथम संशय है ॥

ननु च–कथञ्चित्सत्त्वस्याभावः कथञ्चिदसत्त्वम्, तस्य न संशयविषयत्वसम्भवः, कथञ्चित्सत्त्वेन साकं विरोधाभावात् । एकधार्मिकविरुद्धनानाधर्मप्रकारकज्ञानं हि संशयः नत्वेकधार्मिकनानाधर्मप्रकारकज्ञानमात्रं, तथा सति अयं घटोद्रव्यमित्यादीदन्त्वावच्छिन्नविशेष्यकघटत्वद्रव्यत्वरूपनानाधर्मप्रकारकज्ञानस्यापि संशयत्वापत्तेः। तथा च कथं घटस्स्यादस्त्येव न वेति संशयः इति चेत् ? उच्यते;—दर्शितसंशये कथञ्चिदस्तित्वसर्वथा–स्तित्वयोरेवकोटिताः; तथा च नोक्तानुपपत्तिः, तयोश्च परस्परं विरुद्धत्वात् ।

शङ्का—कथंचित् सत्त्वका अभाव कथंचित् [3]असत्त्वरूप ही है वह संशयका विषय नहीं हो सकता क्योंकि कथंचित् सत्त्वके साथ उसका विरोध नहीं है कथंचित् सत्त्व और कथंचित् असत्त्व इनका विरोध नहीं है किसी विवक्षा से सत्ता और किसी विवक्षा से असत्ता भी रह सकती है । क्योंकि एक धार्मिक एक पदार्थविषयक परस्पर विरुद्ध नानाधर्म प्रकारक ज्ञानको संशय कहते हैं । जैसे एक वृक्षके ठूंठको देखकर [4]**"स्थाणुर्वा पुरुषो वा'** ऐसे विरुद्ध नाना ज्ञानको संशय कहते हैं। स्थाणुत्व और पुरुषत्व ये दोनों विरुद्ध धर्म एक विषयमें हुये इस हेतुसे यह [5]संशय ज्ञान है । न कि एक पदार्थविषयक [6]नानाधर्म प्रकारक ज्ञानमात्रको संशय कहते हैं । क्योंकि परस्पर नानाधर्मों के विरोधके अभावमें एक पदार्थमें नानाधर्ममात्रको यदि संशय ज्ञान मानोगे तो [7]**"अयं घटो द्रव्यम्'** इत्यादि वाक्यमें इदन्ता–वच्छिन्न विशेष्यक घटत्व तथा द्रव्यत्वरूप नानाधर्म प्रकारक ज्ञान भी संशयरूप ज्ञान हो जायगा. क्योंकि इसमें घटत्व और द्रव्यत्व ये नानाधर्म हैं. परन्तु घटत्व और द्रव्यत्व इन दोनों धर्मोंका विरोध नहीं. ऐसे ही कथंचित् सत्त्व असत्त्व का विरोध नहीं है तो इस रीतिसे [8]**"घटः स्यादस्त्येव न वा'** इस ज्ञानको संशयरूपता कैसे होगी ? यदि ऐसा कहो तो इसका उत्तर कहते हैं—पूर्वदर्शित [9]विषयमें कथंचित् [10]अस्तिता और सर्वथा [11]अस्तित्व ये दो कोटि हैं । इस कारणसे पूर्वोक्त शङ्का युक्त नहीं हैं । क्योंकि घट विषयक कथञ्चित् अस्तिता और सर्व प्रकारावच्छिन्न अर्थात् सर्व प्रकारसे अस्तिता इन दोनों धर्मोंका परस्पर विरोध प्रसिद्ध ही है एक कोटिमें कथंचित् अस्तिता है और दूसरी कोटिमें सर्वथा अस्तिता है. जैसे जीव विषयमें दो कोटि हो सकती हैं. कथञ्चित् साकारता और सर्वथा साकारता । यह संशय दो भावकोटिको लेकर प्रवृत्त है इसीसे **'अयं स्थाणुर्वा पुरुषो वा'** यह [12]स्थाणु है वा पुरुष है यहां स्थाणु तथा पुरुष दोनोंमें दीर्घादि गुण समान ज्ञात होनेसे तथा पुरुषके हस्त पाद अवयव और स्थाणुके [13]कोटर आदि आकार ज्ञात न होनेसे संशय

---

१ घट है या नहीं. २ सत्ता. ३ असत्ता. ४ यह स्थाणु (ठूंठ) है वा पुरुष है. सन्देहात्मक. ६ अविरुद्ध धर्म. ७ यह घट द्रव्य है. ८ घट कथञ्चित् है या नहीं. ९ घटः स्यादस्त्येवनवा. १० किसी अपेक्षासे सत्ता. ११ सर्व प्रकारकसे सत्ता. १२ वृक्षका ठूंठ. १३ खोखल.

होता है। ऐसे ही एकपदार्थकी सर्वथा अस्तितता है वा कथञ्चित् अस्तितता है। इन दोनों भाव कोटिको लेकर संशय हो सकता है ॥

अथ–कुत्रचित्प्रसिद्धयोरेव संशयकोटिता, यथा–स्थाणुत्वपुरुषत्वयोः, इह च कथञ्चित्सत्त्वस्य प्रसिद्धत्वेऽपि सर्वथाऽसत्त्वस्य कुत्राप्यप्रसिद्धतया कथं संशयकोटित्वम्? इति चेन्न। वस्तुतोऽप्रसिद्धस्यापि प्रसिद्धत्वेन ज्ञातस्य संशयविषयत्वसम्भवात्। घटत्वावच्छिन्नसत्त्वस्यैकं कोटित्वं सर्वप्रकारावच्छिन्नत्वप्रकारेण सत्त्वस्य चापरं कोटित्वमिति वस्तुनः सत्त्वे सर्वप्रकारावच्छिन्नत्वस्यासत्त्वेपि न क्षतिः। एवं द्वितीयादिसंशय-प्रकारा अप्यूह्याः। निरुक्तसंशयेन च घटे वास्तवसत्त्वनिर्णयस्सम्पादनीय इति जिज्ञासोत्पद्यते; जिज्ञासांप्रति संशयस्य कारणत्वात्, तादृशजिज्ञासया घटः किं स्यादस्त्येवेति प्रश्नः, प्रश्ने च जिज्ञासाया हेतुत्वात्। तादृशप्रश्नज्ञानाच्च प्रतिपादकस्य प्रतिपिपादयिषा जायते। प्रतिपिपादयिषया चोत्तरम्। इत्युक्तप्रणाल्या धर्मसप्तविधत्वाधीनं भङ्गानां सप्तविधत्वमिति बोधयितुं सत्यन्तनिवेश इति ध्येयम्। तदुक्तम्;—

शङ्का,—जब दो धर्म कहीं प्रसिद्ध हों तब ही उनका संशयकोटिमें प्रवेश होता है। जैसे [1]स्थाणुत्व स्थाणुमें और [2]पुरुषत्व पुरुषमें पृथक् पृथक् प्रसिद्ध हैं. इस हेतुसे उनमें संशय कोटिता है। और **'घटः स्यादस्त्येव न वा'** इसमें कथञ्चित् सत्त्वके प्रसिद्ध होनेपर भी सर्वथा असत्त्वके अप्रसिद्ध होनेसे संशय कोटिता कैसे हो सकती है? ऐसी शङ्का न करो. क्योंकि वास्तवमें अप्रसिद्धकी भी प्रसिद्धता ज्ञात होनेसे संशय विषयताका संभव है। यहां प्रकृत विषयमें [3]घटत्वाच्छिन्न कथंचित् सत्वकी एक कोटि है और [4]सर्व प्रकारावच्छिन्न [5]सत्वकी दूसरी कोटि है। इस रीतिसे वस्तुके सत्त्वमें सर्व प्रकारावच्छिन्न असत्त्व होनेमें भी कोई [6]क्षति नहीं है इसी पूर्व कथित प्रकारसे द्वितीय तृतीय संशयके प्रकारकी स्वयं कल्पना कर लेनी चाहिये। अर्थात् जैसे कथञ्चित् घटकी सत्ता तथा सर्वथा घटकी सत्ता इन दोनों कोटिमें संशयकी संभावना है। ऐसे ही कथञ्चित् घटकी नास्तितता तथा सर्वथा घटकी ना-स्तितता इत्यादि द्वितीय तथा तृतीय संशयको भी स्वयं समझ लेना चाहिये॥ पूर्वोक्त संशयके दर्शनसे यथार्थ घटका स्वरूप क्या है यह निर्णय अवश्य करना चाहिये, ऐसी जिज्ञासा विवेकी पुरुषको होती है, क्योंकि जिज्ञासाके प्रति संशयको कारणता है, इस कारण [7]जिज्ञा-सासे घट कथंचित् है वा सर्वथा है ऐसा प्रश्न होता है, क्योंकि प्रश्नमें जिज्ञासा ही कारण है। इस प्रकारके प्रश्नसे उत्तरदाताको उत्तर देनेकी अभिलाषा उत्पन्न होती है और उसी उत्तर देनेकी अभिलाषासे वह उत्तर देता है॥ इस प्रकार पूर्व कथित रीतिसे धर्मोंके सप्त-भेदके आधीन भंगोंके **'स्यादस्ति'** इत्यादि सप्तभेद ज्ञापनकेलिये लक्षणमें सत्यन्त दल अर्थात् **'प्राश्निक प्रश्नज्ञान प्रयोज्यत्वे सति'** का निवेश किया है. ऐसा जानना चाहिये। ऐसा अन्य आचार्यने भी कहा है।

---

१ स्थाणुपना. २ पुरुषपना. ३ घटत्व धर्मसहित. ४ सर्व प्रकारसहित. ५ सत्ता वा होना. ६ हानि. ७ जाननेकी इच्छा.

"भङ्गास्सत्त्वादयस्सप्त संशयास्सप्त तद्गताः ।
जिज्ञासास्सप्त सप्त स्युः प्रश्नास्सप्तोत्तराण्यपि ॥"

'स्यादस्ति घटः' कथंचित् घट है, इत्यादि वाक्यमें सत्त्व आदि सप्तभंग इस हेतु से हैं कि, उनमें स्थित संशय भी सप्त हैं और सप्त संशय इसलिये हैं कि, जिज्ञासाओं[1] के भेद भी सप्त ही हैं और सप्त जिज्ञासाओंके भेदसे ही [2]सप्त प्रकारके उत्तर भी होते हैं।

नन्विदं सर्वं तदोपपद्यते, यदि धर्माणां सप्तविधत्वमेवेति सिद्धं स्यात्; तदेव न सम्भवति । प्रथमद्वितीयधर्मवत्प्रथमतृतीयादिधर्माणां क्रमाक्रमार्पितानां धर्मान्तरत्वसिद्धेस्सप्तविधधर्मनियमाभावात्; इतिचेन्न ।

शङ्का—यह [3]सब तब ही युक्त हो सकता है कि जब, धर्मोंके सात ही भेद सिद्ध हों, परन्तु [4]यही संभव नहीं है. क्योंकि प्रथम द्वितीय धर्मके सदृश क्रम तथा अक्रमसे अर्पित प्रथम तृतीय आदि धर्मोंसे सप्त धर्मसे भिन्न अन्य धर्मोंकी सिद्धि होनेसे सात ही प्रकारके धर्म हैं यह नियम नहीं हो सकता। तात्पर्य यह है कि जैसे, 'स्यादस्ति' यहां प्रथम धर्म सत्त्व और 'स्यान्नास्ति' यहां द्वितीय धर्म असत्त्व, इन दोनोंको क्रमसे लगानेपर 'स्यादस्ति-नास्ति' कथंचित् सत्त्व कथंचित् असत्त्व यह तृतीय धर्म हो जाता है। ऐसे ही प्रथम तृतीय आदि धर्मोंको क्रम वा अक्रमसे लगानेसे जैसे 'स्यादस्ति' तथा 'स्यादस्तिनास्ति' इन प्रथम तृतीयको क्रमसे योजन करनेसे 'स्यादस्ति स्यादस्तिनास्ति' कथंचित् सत्त्व कथंचित् सत्त्वासत्त्व यह एक सत्त्वधर्मसे भिन्न अन्य धर्म हो गया। ऐसे ही तृतीय चतुर्थके योजनसे भी अन्य धर्मकी संभावना है, तो धर्मोंके सात ही भेद हैं,—यह नियम असङ्गत है, ऐसी शङ्का यदि करो तो उसका उत्तर यह है—;

क्रमाक्रमार्पितयोः प्रथमतृतीयधर्मयोर्धर्मान्तरत्वेनाप्रतीतेः । स्यादस्ति घट इत्यादौ घटत्वावच्छिन्न-सत्त्वद्वयस्यासम्भवात्, मृण्मयत्वाद्यवच्छिन्नसत्वान्तरस्य सम्भवेऽपि दारुमयत्वाद्यवच्छिन्नस्यापरस्यासत्वस्यापि सम्भवेनापरधर्मसप्तकसिद्धेस्सप्तभंग्यन्तरस्यैव सम्भवात् । एतेन द्वितीय-तृतीयधर्मयोः क्रमाक्रमार्पितयोर्ध-र्मान्तरत्वमिति निरस्तम्,-एकरूपावच्छिन्ननास्तित्वद्वयस्यासम्भवात् ।

क्योंकि,—क्रम वा अक्रमसे अर्पित प्रथम तृतीय धर्मोंकी योजनासे धर्मान्तरकी प्रतीति लोकमें नहीं है। क्योंकि [5]'स्यादस्ति घटः' इत्यादि वाक्य में [6]घटत्वावच्छिन्न घटके [7]सत्त्वद्वय असंभव है। [8]मृत्तिकामयत्वादि अवच्छिन्न घटके अन्य सत्ताका संभव होनेपर भी उसी समय [9]दारुमयत्व आदि अन्य घटकी असत्ताका भी संभव होनेसे अन्य उसी प्रकारके सात धर्म सिद्ध हो। जायेंगे इस हेतुसे अन्य सप्तभङ्गी ही सिद्ध होनेका संभव है, न कि सप्त

---

१ जाननेकी इच्छाओंके. २ सात. ३ भङ्ग आदिका सप्त भेद कथन. ४ धर्मोंके सप्त भेद. ५ कथञ्चित् घट है. ६ घटको अन्यसे पृथक् करनेवाले घटत्व धर्मसहित. ७ एक घट विषयमें दो सत्ताका. ८ मिट्टीके. ९ काष्ठ आदि रचित.

धर्मो से पृथक् धर्म ॥ इस प्रकार प्रथम तृतीय धर्मोंकी योजनासे अन्य धर्म की सिद्धिके खण्डनसे क्रम तथा अक्रमसे अर्पित द्वितीय[1] तृतीय धर्मोकी योजनासे अन्य धर्मसिद्धिका भी खण्डन हो गया। यथा एक पदार्थ विषयक दो सत्त्वके सदृश एक रूपावच्छिन्न एक पदार्थ विषयक दो नास्तित्वका असंभव है। जैसे एकधर्मिक काष्ठमय घटके सत्त्वका अभाव होनेपर उससे भिन्न मृत्तिकादिमय घटकी सत्ताका भी संभव है॥

नन्वेवं—प्रथमचतुर्थयोर्द्वितीयचतुर्थयोस्तृतीयचतुर्थयोश्च सहितयोः कथं धर्मान्तरत्वम्, अवक्तव्यत्वं हि सहार्पितास्तित्वनास्तित्वोभयम्, तथा च यथा क्रमार्पितास्तित्वोभयस्मिन्नस्तित्वस्य योजनं न सम्भवति, अस्तित्वद्वयाभावात्; तथा सहार्पितोभयस्मिन्नपीतिचेन्न। यतोऽवक्तव्यत्वं सहार्पितोभयमेव न किन्तु सहार्पितयोरस्तित्वनास्तित्वयोस्सर्वथा वक्तुमशक्यत्वरूपं धर्मान्तरमेव; तथा च सत्त्वेन सहितमवक्तव्यत्वादिकं धर्मान्तरं प्रतीतिसिद्धमेव।

शङ्का,—[2]प्रथम चतुर्थ, [3]द्वितीय चतुर्थ तथा [4]तृतीय चतुर्थ धर्मोंके साथ योजनासे धर्मान्तरकी सिद्धि कैसे होती है? क्योंकि प्रथम धर्मोकी योजनासे [5]स्यादस्ति अवक्तव्यश्च इस पञ्चमभङ्गकी सिद्धि होती है। यहांपर अवक्तव्यत्व [6]सह [7]अर्पित **'स्यादस्ति'** और **'स्यान्नास्ति'** एतत् उभयरूप होगा तो इस प्रकार से जैसे क्रमसे अर्पित [8]अस्तित्वद्वयमें दूसरे अस्तित्वका कुछ प्रयोजन नहीं है। क्योंकि एक पदार्थ विषयक दो [9]सत्त्वका असंभव है। ऐसे ही साथ अर्पित **'अस्तित्वनास्तित्व'** इस उभयरूपमें नास्तित्व भी नहीं रह सकता, क्योंकि जहाँ एक धर्मविषयक नास्तित्व है वहां अन्य अस्तित्वका भी संभव है, ऐसी शङ्का नहीं कर सकते हो। क्योंकि अवक्तव्यत्वके साथ योजित **'अस्ति नास्तित्व'** उभयरूपही नहीं है। किन्तु सह [10]अर्पित [11]अस्तित्व नास्तित्व इन दोनों धर्मोका सर्वथा कथन करनेको अशक्यत्वरूप धर्मान्तर है. क्योंकि एक ही पदार्थके विषयमें साथ ही अस्तिता और नास्तिताका कथन नहीं हो सकता। इस प्रकार [12]सत्त्वके साथ अवक्तव्यत्व आदि [13]धर्मान्तर अनुभवसिद्ध ही हैं।

प्रथमे भङ्गे सत्त्वस्य प्रधानभावेन प्रतीतिः, द्वितीये पुनरसत्त्वस्य, तृतीये क्रमार्पितयोस्सत्त्वासत्त्वयोः, चतुर्थेत्ववक्तव्यत्वस्य, पञ्चमे सत्त्वविशिष्टावक्तव्यत्वस्य, षष्ठे चासत्त्वविशिष्टावक्तव्यत्वस्य, सप्तमे क्रमार्पितसत्त्वासत्त्वशिष्टावक्तव्यत्वस्येति विवेकः। प्रथमभङ्गादावसत्त्वादीनां गुणभावमात्रं, न तु प्रतिषेधः।

अब प्रथम भङ्गमें अर्थात् [14]**'स्यादस्त्येव घटः'** [15]सत्त्वकी प्रधानतासे [16]प्रतीति होती है. तथा द्वितीय [17]**'स्यान्नास्त्येव घटः'** भङ्ग में असत्त्व अर्थात् असत्ताकी प्रतीति प्रधा—

---

१ स्यान्नास्त्येव घटः स्यादस्ति नास्ति च घटः. २ स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्य एव. ३ स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्य एव. ४ स्यादस्तिनास्ति च स्यादवक्तव्य एव. ५ कथंञ्चित् है और अवक्तव्य है. ६ साथ. ७ योजित. ८ दो सत्व. ९ पूर्वोक्त रीतिके अनुसार. १० योजित. ११ साथ योजित सत्ता तथा असत्ता. १२ सत्ता. १३ उभयरूपसे भिन्न धर्म. १४ कथंञ्चित् घट है. १५ सत्ता. १६ अनुभव. १७ कथंचित् घट नहीं है.

नतासे है। तृतीय '[3]स्यादस्ति नास्ति च घटः' भङ्गमें क्रमसे योजित सत्त्व असत्त्वकी प्रधानतासे प्रतीति है। क्योंकि किसी अपेक्षा घटका [2]अस्तित्व और किसी अपेक्षा [3]नास्तित्व-का भी अनुभव होता है। तथा चतुर्थमें अवक्तव्यत्वकी, पञ्चम सत्तासहित अवक्तव्यत्वकी, षष्ठमें असत्तासहित अवक्तव्यत्वकी, और सप्तमभङ्गमें क्रमसे योजित सत्ता तथा असत्तासहित अवक्तव्यत्वकी प्रधानतासे [4]प्रतीति होती है, इस प्रकार सप्तभङ्गोंका विवेक जानना चाहिये। प्रथम भङ्गसे '[5]स्यादस्त्येव घटः' आदिसे लेकर कई भङ्गोंमें जो असत्त्व आदिका भान होता है उनकी गौणता है न कि निषेध. क्योंकि जब कथंचित् घटकी सत्ता है ऐसा कहा गया तब कथंचित् [6]असत्ताका भी भान होता है। परन्तु असत्ताकी [7]गौणता और सत्ताकी प्रधानता है ऐसे ही आगेके भङ्गोंमें भी जिस धर्मको कहें, उसकी प्रधानता और उससे विरुद्धकी गौणता समझनी योग्य है॥

ननु--अवक्तव्यत्व यदि धर्मान्तर तर्हि वक्तव्यत्वमपि धर्मान्तरं प्राप्नोति, कथं सप्तविध एव धर्मः ? तथाचाष्टमस्य वक्तव्यत्वधर्मस्य सद्भावेन तेन सहाष्टभङ्गी स्यात् , न सप्तभङ्गी; इति चेन्न।

शंका:—जैसे अवक्तव्यत्वके साथ योजित अस्तित्व नास्तित्व धर्मोंको कथन करनेमें सर्वथा अशक्यत्वरूपता है ऐसेही वक्तव्यत्वभी धर्मातर हो सकता है तो इस रीतिसे अष्टम वक्तव्यत्वरूप धर्मके होनेसे अष्टभंगी नय कहना उचित है नकि सप्तभंगी ? ऐसी शंका नहीं हो सकती॥

सामान्येन वक्तव्यत्वस्यातिरिक्तस्याभावात्। सत्त्वादिरूपेण वक्तव्यत्वं तु प्रथमभङ्गादावेवान्तर्भूतम्। अस्तु वा वक्तव्यत्वं नाम कश्चन धर्मोऽतिरिक्तः, तथापि वक्तव्यत्वावक्तव्यत्वाभ्यां विधिप्रतिषेधकल्पनाविषयाभ्यां सत्त्वासत्त्वाभ्यामिव सप्तभङ्ग्यन्तरमेव प्राप्नोतीति न सत्त्वासत्त्वप्रमुखसप्तविधधर्मव्याघातः। तथा च धर्माणां सप्तविधत्वात्तद्विषयसंशयादीनामपि सप्तविधत्वमिति सप्तभङ्ग्या अधिकसंख्याव्यवच्छेदस्सिद्धः।

क्योंकि सामान्यरूपसे वक्तव्यत्व भिन्न धर्म नहीं है और सत्त्व आदिरूपसे वक्तव्यत्व [8]प्रथम भङ्गादिमें अन्तर्गतही है और वक्तव्यत्वभी कोई पृथक् धर्म मानो तोभी सत्त्वअसत्त्वके समान विधि प्रतिषेध कल्पनाको विषय करनेवाले वक्तव्यत्व तथा अवक्तव्यत्व धर्मोंसे अन्य सप्तभङ्गी ही सिद्ध होगी। इस रीतिसे सत्त्व असत्त्व आदि सप्त प्रकारके धर्मका व्याघात नहीं हुआ। इससे यह सिद्धान्त हुआ कि धर्मोंके सात भेद होनेसे उनके विषयभूत संशय जिज्ञासा तथा प्रश्नादिकभी [9]सप्तभेदसहित हैं, इस कारणसे सप्तभङ्गीकी अधिक संख्याका निराकरण हुआ॥

नन्वेवं रीत्याऽधिकसंख्याव्यवच्छेदेऽपि न्यूनसंख्याव्यवच्छेदः कथं सिद्ध्यति ? तथाहि—

१ कथंचित् नहीं है. २ सत्ता. ३ असत्ता. ४ अनुभव. ५ कथंचित् घट है. ६ असत्ता. ७ अप्रधानता न कि निषेध. ८ स्यादस्त्येव. ९ सात प्रकारके.

यदि घटादावस्तित्वप्रमुखास्सप्त धर्माः प्रामाणिकास्स्युः, तदा तद्विषयसंशयातिक्रमेण सप्तभङ्गी सिद्धयेत् । तदेव न, सत्वासत्वयोर्भेदाभावात् । यत्स्वरूपेण सत्वं तदेव पररूपेणासत्वम् । तथा च न प्रथमद्वितीयभङ्गौ घटेते । तयोरन्यतरेणैव गतार्थत्वात् । एवं च तृतीयादिभङ्गाभावात्कुतस्सप्तभङ्गी ?—इति चेत् ।

कदाचित् यह शङ्का करोकि–इस रीतिसे सप्त संख्यासे अधिक संख्याका [1]व्यवच्छेद सिद्ध होनेपर भी न्यून संख्याका निराकरण कैसे हो सकता है ? इस शङ्काका निरूपण ऐसे है कि यदि घट आदि पदार्थोमें [2]सप्त धर्म [3]प्रामाणिक हों तो उनके विषयभूत संशय आदिके अतिक्रमसे सप्तभङ्गी सिद्ध हो, परन्तु यही नहीं सिद्ध होता. अर्थात् सप्तधर्म प्रमाणिक नहीं होते । क्योंकि सत्व तथा असत्वका भेद नहीं है । इसका कारण यह है कि जो पदार्थ जैसे घट, अपने रूपसे सत्वरूप है वही [4]पर पट आदि रूपसे असत्वभी है । इस प्रकार प्रथम **'स्यादस्त्येव'** तथा द्वितीय **'स्यान्नास्त्येव'** दो धर्म नहीं घटित हो सकते । इन दोनोंमेंसे अर्थात् सत्व अथवा असत्व एकमें दूसरा गतार्थ है । सत्व मानो तो असत्वकी आवश्यकता नहीं है और असत्व मानो तो सत्वकी आवश्यकता नहीं है। इस प्रकारसे तृतीय [5]आदि भङ्गोंके अभावसे सप्तभङ्गी कैसे और कहांसे सिद्ध हो सकती है ? क्योंकि जब स्वरूपसे जो सत्ता है वही अन्यरूपसे असत्ता है तव **'स्यादस्ति नास्ति च'** कथंचित् सत्व कथंचित् असत्व कहनेकी क्या आवश्यकता है ? यदि ऐसी शङ्का करो तो—

अत्रोच्यते । स्वरूपाद्यवच्छिन्नमसत्वमित्यवच्छेदकभेदात्तयोर्भेदसिद्धेः । अन्यथा स्वरूपेणेव पररूपेणापि सत्वप्रसङ्गात् । पररूपेणेव स्वरूपेणाप्यसत्वप्रसङ्गाच्च ।

इसका उत्तर यह है;–क्योंकि स्वरूप आदि अवच्छिन्न सत्व है और पररूप आदि अवच्छिन्न असत्व पदार्थ, यहां सत्व असत्वसे विवक्षित हैं । इस प्रकार स्वरूपादित्व और पररूपादित्व इन दोनों [6]अवच्छेदक धर्मोके भेदसे सत्व तथा असत्व इनका भेद सिद्ध है । यदि ऐसा न हो तो स्वरूपके सदृश पररूपसे सत्वका प्रसंग हो जायगा । और इसीके रीतिसे पर रूपके असत्वके तुल्य [7]स्वरूपसेभी असत्वका प्रसंग हो जायगा. । और अवच्छेदक भेद माननेसे दोनोंका भेद स्पष्ट ही है ।

किं च सत्वं हि वृत्तिमत्वं, भूतले घटोऽस्तीत्यादौ भूतलनिरूपितवृत्तित्ववान्घट इति बोधात् । असत्वं चाभावप्रतियोगित्वम्, भूतले घटो नास्तीत्यादौ भूतलनिष्ठाभावप्रतियोगी घट इति बोधात् । तथा च सत्वासत्वयोस्स्वरूपभेदोऽक्षत एव ।

और यह भी है कि सत्व [8]वृत्तिमत्वरूप होता है । जैसे [9]**'भूतले घटोऽस्ति'** यहांपर भूतल निरूपित जो वृत्तिता तादृश [10]वृत्तितावान् घट ऐसा शाब्दबोध होता है । और असत्वके अभावका [11]प्रतियोगित्वरूप होता है । जैसे **'भूतले घटो नास्ति'** पृथ्वीपर घट नहीं

१ निराकरण वा दूरीकरण. २ सात. ३ प्रमाणसिद्ध. ४ अन्य. ५ स्यादस्तिनास्ति. ६ पृथक् करनेवाले. ७ अपने रूप. ८ वृत्तितासम्बन्धसे पदार्थमें अन्वयवाला. ९ पृथ्वीपर घट है. १० वृत्तितासहित. ११ न्यायशास्त्रकी रीतिसे जिस पदार्थका अभाव वा असत्व कहते हैं वह पदार्थ उस अभावका प्रतियोगी होता है.

है इत्यादि प्रयोगोंमें [1]भूतलनिष्ठ जो अभाव उसका प्रतियोगी घट ऐसा शाब्दबोध होता है। तात्पर्य यह है कि **'भूतले घटोऽस्ति'** इत्यादिमें सत्त्व वृत्तिता सम्बन्धसे घटमें अन्वित है। और **'भूतले घटो नास्ति'** यहां अभावका प्रतियोगिता सम्बन्धसे घटमें अन्वय है। इस प्रकार सत्त्व तथा असत्त्वका स्वरूपभेद पूर्ण रूपसे है।

अपि च-ये त्रिरूपं हेतुमिच्छन्ति सौगतादयः। ये वा पञ्चरूपमिच्छन्ति नैयायिकादयः, तेषामुभयेपामपि हेतोस्सपक्षसत्वापेक्षया विपक्षासत्वं भिन्नमेवाभिमतम्, अन्यथा स्वाभिमतस्य त्रिरूपत्वस्य पञ्चरूपत्वस्य वा व्याघातात् इति।

और भी जो हेतुकी त्रिरूपता बौद्धमतावलम्बी मानते हैं-और जो नैयायिक पञ्चरूपता मानते हैं उन दोनोंको भी हेतुकी सपक्षमें सत्त्वकी अपेक्षासे विपक्षमें असत्व भिन्न हो अभीष्ट है। यदि ऐसा न हो तो अपने २ मतमें स्वीकृत त्रिरूपता तथा पंचरूपताकी हानि होगी। पक्षधर्मता, सपक्षे सत्वम् विपक्षे असत्वम्, ये तीन हेतुरूप बौद्धमतानुयायी मानते हैं। जैसे **'पर्वतो वह्निमान् धूमात्'** धूमदर्शनसे ज्ञात होता है कि पर्वतमें अग्नि है। **'धूमात्'** यह पञ्चम्यन्त पद वाच्य हेतु है उसकी [2]पक्षधर्मता है. [3]सपक्ष महानसमें भी धूमका सत्व है। और विपक्ष जलह्रद [4]आदिमे धूमका असत्व भी है। और नैयायिक तीन ऊपर कहे हुये से अधिक अबाधित विषयता तथा असत् प्रतिपक्षता ये दो रूप हेतुके और मानते हैं। इनमें से [5]साध्यसे विपरीत निश्चय करानेवाले प्रबल प्रमाणका अभाव जो है उसको अबाधित विषय कहते हैं। जैसे पर्वत में साध्यभूत अग्निके विपरीत निश्चय करानेवाला [6]प्रबल प्रमाण प्रत्यक्ष नहीं है, क्योंकि धूम देखनेके पश्चात् यदि पर्वतमें जाओ तो अग्नि अवश्य मिलेगी। इससे धूमरूप हेतुका विषय [7]प्रबल प्रमाणसे बाधित नहीं है। इसलिये [8]यह हेतु अबाधित विषय है। और उसी प्रकार साध्यसे विपरीत निश्चय करानेवाले [9]समबल प्रमाणकी शून्यता जिस हेतुको हो उसको असत्प्रतिपक्ष हेतु कहते हैं। अर्थात् जिसके साध्यसे विरुद्ध साध्य सिद्ध करनेवाला प्रतिद्वन्दी हेतु न हो सो यहां पर्वत में अग्निसे विरुद्ध अग्निके अभावका साधक कोई अनुमानादि प्रमाण नहीं है, इस कारण धूमरूप हेतु असत्प्रतिपक्षी है। इन दोनों अर्थात् बौद्ध और नैयायकका अभीष्ट [10]सपक्ष सत्व तथा विपक्षासत्वरूप हेतुके दूसरे तथा तीसरे अङ्गमें यदि सपक्षसत्वकी अपेक्षा विपक्षमें असत्वको भिन्न न मानेंगे अर्थात् सत्वअसत्वको एकरूपही मानेंगे तो बौद्धका अभीष्ट हेतुकी [11]त्रिरूपता और नैयायिकको अभीष्ट पञ्चरूपता सिद्ध नहीं होगी, क्योंकि सत्व असत्व एक माननेसे एकमें दूसरा गतार्थ होनेसे एक अङ्ग जाता रहेगा. इसलिये उनके सिद्धान्तसे भी सत्व और असत्वका भेद सिद्ध हो गया॥

---

१ भूतलपर रहनेवाला. २ पक्षरूप पर्वतमें वृत्ति रहना. ३ रसोईके घर. ४ तड़ाग आदि. ५ अग्नि-आदि. ६ अनुमानसे प्रबल. ७ प्रत्यक्ष. ८ धूम. ९ अनुमान वा आगम. १० समान पक्ष महानस आदिमें हेतुकी सत्ता और विपक्ष महा ह्रदादिमें हेतुकी असत्ता. ११ तीन रूपता.

अथैवमपि कथञ्चित्सत्त्वापेक्षया क्रमार्पितोभयस्य को भेदः ? न हि प्रत्येकघटपटापेक्षया घटपटोभयं भिन्नम्–इति चेन्न ।

शङ्का;—अब कदाचित् यह कहो कि कथञ्चित् सत्त्वकी अपेक्षा क्रमसे योजित सत्त्व असत्त्व कैसे भिन्न हो सकते हैं ? अर्थात् जैसा कथंचित् सत्त्वका रूप है वैसाही क्रमसे योजित सत्त्वासत्त्वमेंभी सत्त्वका रूप है तो क्रमयोजित उभयके सत्त्वका कथञ्चित् सत्त्वकी अपेक्षासे क्या भेद हैं ? क्योंकि [1]प्रत्येक घटपटकी अपेक्षासे क्रमयोजित घट पट उभयमें घट पट भिन्न नहीं है। ऐसी शङ्काभी युक्त नहीं है ।।

प्रत्येकापेक्षयोभयस्य भिन्नत्वेन प्रतीतिसिद्धत्वात् । अतएव–प्रत्येकघकारटकारापेक्षया क्रमार्पितोभयरूपं घटपदमतिरिक्तमभ्युपगम्यते सर्वैः प्रवादिभिः । अन्यथा प्रत्येकघकाराद्यपेक्षया घटपदस्याभिन्नत्वे घकारा–द्युच्चारणेनैव घटपटज्ञानसम्भवेन घटत्वावच्छिन्नोपस्थिति–सम्भवाच्छेषोच्चारणवैयर्थ्यमापद्येत । अतएव प्रत्येकपुष्पापेक्षया मालायाः कथञ्चिद्भेदस्सर्वानुभवसिद्धः । इत्थं च कथञ्चित्सत्त्वासत्त्वापेक्षया क्रमार्पितो–भयमतिरिक्तमेव ।

क्योंकि प्रत्येककी अपेक्षासे उभयरूप समुदायका भेद अनुभवसिद्ध है। इस हेतुसे [2]प्रत्येक घकार तथा टकारकी अपेक्षासे क्रमसे ज्योति घकार टकार एतत् उभय समुदायरूप घट इस पदको सब वादियोंने भिन्न माना है। और यदि प्रत्येक घकार तथा टकार आदिकी अपेक्षासे घट पदको अभिन्न मानो तो केवल घकारादिके ही उच्चारणसे घटपदके ज्ञानके सम्भव होनेसे घटत्व अवच्छिन्न उपस्थितिका संभव है तो [3]शेषका उच्चारण व्यर्थ होगा। इसी हेतुसे प्रत्येक पुष्पकी अपेक्षासे मालाका कथञ्चित् भिन्नरूपसे अनुभव सर्वजन प्रसिद्ध है। इस प्रकार माननेसे कथञ्चित् सत्त्वकी अपेक्षा क्रमार्पित उभयरूप भिन्नही है ।।

स्यादेतत्, क्रमार्पितोभयापेक्षया सहार्पितोभयस्य कथं भेदः ? क्रमाक्रमयोश्शब्दनिष्ठत्वेनार्थनिष्ठ–त्वाभावात् । न हि घटादौ क्रमार्पितसत्त्वासत्त्वोभयापेक्षयाऽक्रमार्पितसत्त्वासत्त्वोभयमतिरिक्तमस्ति । घटपटोभयाधिकरणे भूतले क्रमार्पितघटपटोभयमेकं सहार्पितघटपटोभयं चापरमिति न केनाप्यनुभूयते ।

अस्तु, कथञ्चित् सत्त्वका क्रमसे योजित उभयरूपका भेद सिद्धभी हो परन्तु क्रमसे योजित सत्त्व असत्त्व उभयरूपकी अपेक्षासे [4]सह योजित सत्त्व असत्त्व इस उभयरूपका भेद कैसे सिद्ध हो सकता है ? क्योंकि सत्त्व असत्त्वके क्रम वा अक्रम [5]शब्दनिष्ठ हैं [6]अर्थनिष्ठ नहीं हैं। सत्त्व असत्त्व इनकी साथ योजना करो वा क्रमसे रहेंगे तो सत्त्व असत्त्व येही। इस हेतुसे क्रमसे अर्पित सत्त्व असत्त्व इस उभयरूपकी अपेक्षासे साथ अर्पित इस उभय रूपका भेद नहीं सिद्ध हो सकता। क्योंकि घट आदि पदार्थमें क्रमसे अर्पित सत्त्व असत्त्व उभयरूपकी अपेक्षासे [7]अक्रमसे अर्पित सत्त्व असत्त्व यह उभयरूप भिन्न नहीं है। घट और पट इन दोनोंके आधारभूत भूतलमें क्रमसे योजित घट पट यह उभयरूप और साथ

---

१ अलग अलग. २ पृथक् एक एक. ३ घकारादिसे शेषभूत टकारादिका उच्चारण. ४ साथ. ५ शब्दमें रहनेवाले. ६ अर्थमें रहनेवाले. ७ साथ.

अर्पित घट पट यह उभयरूप अन्य २ हैं, यह अनुभव किसीको भी नहीं होता। क्योंकि क्रमसे योजना करो वा साथ, पदार्थ वही घट पट उभयरूप दोनों दशामें हैं।

अथ क्रमार्पितसत्त्वासत्त्वोभयापेक्षयाऽक्रमार्पितसत्त्वासत्त्वोभयस्य भेदाभावेऽपि न क्षतिः। अपुनरुक्तवाक्यसप्तकस्यैव सप्तभङ्गीपदार्थत्वेन सप्तधा वचनमार्गप्रवृत्तेर्निराबाधत्वात्। सत्त्वासत्त्वधर्मविषयतया सप्तधैव वचनमार्गाः प्रवर्तन्ते नातिरिक्ताः, पुनरुक्तत्वादित्यत्र सप्तभङ्गीतात्पर्यात्। स्वजन्यबोधसमानाकार-बोधजनकवाक्योत्तरकालीनवाक्यत्वमेव हि पुनरुक्तत्वम्। प्रकृते च तृतीयचतुर्थयोर्नेदृशं पौनरुक्त्यं सम्भवति, तृतीयभङ्गजन्यबोधे अस्तित्वविशिष्टनास्तित्वस्य प्रकारतया चतुर्थभङ्गजन्यबोधे चास्तित्वनास्तित्वोभयस्य प्रकारतया तृतीयचतुर्थजन्यबोधयोस्समानाकारत्वविरहात्–इति चेन्न। तथा सत्यधिकभङ्गस्य दुर्निवार-त्वात्। तथाहि–यथा तृतीयचतुर्थयोरपौनरुक्त्यं विलक्षणबोधजनकत्वात्। तथा व्युत्क्रमार्पितस्य स्यान्नास्ति चास्ति चेति भङ्गस्य नास्त्यस्तित्वसहितावक्तव्यत्वप्रतिपादकभङ्गान्तरस्य च न तृतीयसप्तमाभ्यां पौनरुक्त्यम्। अस्तित्वविशिष्टे नास्तित्वप्रकारकबोधस्य तृतीयेन जननात्, व्युत्क्रमप्रयुक्तेन नास्तित्वसहितास्तित्वप्रकारक-बोधस्य जननाच्च विशेषणविशेष्यभावे वैपरीत्येन तादृशबोधयोस्समानाकारत्वाभावात्। एवं सप्तमेनापि व्युत्क्रमार्पितोभयसहितावक्तव्यत्वप्रतिपादकभङ्गस्येति नवभङ्गीं प्राप्नोति। इति चेत्।

कदाचित् यह कहो कि क्रमसे योजित सत्व असत्व इस [1]उभयरूपकी अपेक्षासे [2]अक्रम योजित सत्व असत्व इस उभयरूपका भेद न होनेपरभी कोई हानि नहीं है। क्योंकि पुन-रुक्तिदोषरहित वाक्यसप्तक समुदायरूप ही सप्तभङ्गी पदार्थ है। उसके द्वारा [3]सप्त प्रकारसे वचनमार्गकी प्रवृत्तिमें कोई बाधा नहीं है। सत्व असत्व धर्मके विषयतारूपसे सप्तभेदसे वचनके मार्ग प्रवृत्त हो सकते हैं न कि अधिक। क्योंकि अधिक होनेसे पुनरुक्तिदोष आता है। इसी अर्थके बोधनमें सप्तभङ्गीन्यायका तात्पर्य है। क्योंकि एक [4]वाक्यजन्य जो [5]बोध है उसी बोधके समान बोधजनक यदि उत्तर कालका वाक्य हो तो यही पुनरुक्त-दोष है। और [6]प्रचलित प्रकरणमें तृतीय **'स्यादस्ति नास्ति च घटः'** तथा चतुर्थ **'स्यादवक्तव्य एव घटः'** भङ्गोंमें ऐसा पुनरुक्तदोष संभव नहीं है. क्योंकि तृतीयभङ्ग-[7]जन्य ज्ञानमें अस्तित्वविशिष्ट[8] नास्तित्व [9]प्रकारतासे भासता है और चतुर्थ **'स्यादवक्तव्य एव'** [10]भङ्गजन्य ज्ञानमें अस्तिनास्तित्व उभयत्वरूप अवक्तव्यत्वके साथ अन्वित होकर प्रकारता से भासता है. इस कारण तृतीय तथा चतुर्थ भङ्गसे उत्पन्न ज्ञानोंमें [11]समानाकारता नहीं है, क्योंकि तृतीय भङ्गजन्यबोधमें अस्तित्वनास्तित्वप्रकारता अवच्छेदक धर्म है। और चतुर्थभङ्गजन्यबोधमें उभयत्वप्रकारता अवच्छेदक धर्म है, इस हेतु से अवच्छेदक धर्म भिन्न होने से समान आकारवाले [12]बोधका अभाव है। सो यह कथनभी युक्त नहीं है। क्योंकि ऐसा भेद माननेसे सप्तभङ्ग से अधिक भङ्गकी संख्या [13]दुर्निवारणीय है। इसका निरूपण

---

१ दो वा दोका समुदाय. २ विनाक्रम. ३ सात. ४ एक वाक्यसे उत्पन्न. ५ ज्ञान. ६ सप्तभङ्गी नय. ७ उत्पन्न. ८ सहित विशेषणता. १० उत्पन्न. ११ सादृश्य. १२ ज्ञान. १३ कठिनतासे दूर करनेयोग्य.

इस प्रकार है;—जैसे तृतीय चतुर्थ भङ्गोंमें पुनरुक्तिदोषका अभाव उनके विलक्षण बोधजनक होनेसे माना है। ऐसेही विपरीत क्रमसे नास्तित्व अस्तित्व इस पृथक् भङ्गकी तथा नास्तित्व-अस्तित्वसहित अवक्तव्यत्वप्रतिपादक इस पृथक् भङ्गकी सिद्धिमें तृतीय **'स्यादस्ति नास्तित्व'** तथा सप्तम **'स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्यश्च'** भङ्गोंमेंभी पुनरुक्ति दोष नहीं है। क्योंकि [1]अस्तित्वविशिष्ट नास्तित्वप्रकारकबोधजनकता तृतीय भङ्गमें है। और हमने जो नूतन भङ्ग सिद्ध किया है उसमें अस्तित्वनास्तित्वको विपरीत क्रमसे योजित नास्तित्वसहित अस्तित्व-प्रकारकबोधजनकता है इस प्रकार विशेषणविशेष्यभावकी [2]विपरीतता होनेसे [3]दोनों भङ्गोंसे उत्पन्न ज्ञानोंमें समान [4]आकारता नहीं है। ऐसेही सप्तम भङ्ग **'स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्यश्च'** के साथ विपरीत अर्थात् नास्तित्व अस्तित्व इस उभयसहित अवक्तव्यत्वप्रतिपादक [5]विलक्षण बोधजनक भङ्गकी सिद्धि होनेसे नव भङ्गीकी सिद्धि प्राप्त होती है, न कि सप्तभङ्गी यदि ऐसी शङ्का करो ?

अत्राहुः। तृतीयेऽस्तित्वनास्तित्वोभयस्य प्रधानत्वम्। चतुर्थे चावक्तव्यत्वरूपधर्मान्तरस्येति न तयोरभेदशंका। अवक्तव्यत्वं चास्तित्वनास्तित्वविलक्षणम्। नहि सत्त्वमेव वस्तुनस्स्वरूपं, स्वरूपादिभिस्स-त्त्वस्येव पररूपादिभिरसत्त्वस्यापि प्रतिपत्तेः। नाप्यसत्त्वमेव। स्वरूपादिभिस्सत्त्वस्यापि प्रतीतिसिद्धत्वात्। नापि तदुभयमेव, तदुभयविलक्षणस्यापि जात्यन्तरस्य वस्तुनोनुभूयमानत्वात्। यथा—दधिगुड चातुर्जातकादि-द्रव्योद्भवं पानकं हि केवलदधिगुडाद्यपेक्षया जात्यन्तरत्वेन पानकमिदं सुस्वादुसुरभीति प्रतीयते। न चोभयविलक्षणत्वमेव वस्तुनस्स्वरूपमिति वाच्यम्; वस्तुनि कथञ्चित्सत्त्वस्य कथञ्चिदसत्त्वस्य च प्रतीतेः। दधिगुडचातुर्जातकाद्युद्भवे पानके दध्यादिप्रतिपत्तिवत्। एवमुत्तरत्रापि बोध्यम्। तथा च विविक्तस्वभावानां सप्तधर्माणां सिद्धेस्तद्विषयसंशयजिज्ञासादिक्रमेण सप्तप्रतिवचनरूपा सप्तभङ्गी सिद्धेति ॥

तो यहांपर उत्तर कहते हैं;—[6]तृतीय भङ्गमें अस्तित्व नास्तित्व इस उभयकी प्रधानता है। और [7]चतुर्थ भङ्गमें अवक्तव्यत्वरूप पृथक् धर्मकी प्रधानता है. इसलिये इन दोनोंके अभेदकी शङ्का नहीं हो सकती, क्योंकि अवक्तव्यत्वरूप धर्म अस्ति नास्तिसे विलक्षण पदार्थ है। [8]सत्त्वमात्रही वस्तुका स्वरूप नहीं है. क्योंकि जैसे स्वरूप आदिसे वस्तुका सत्त्व अनुभव-सिद्ध है ऐसेही [9]पररूप आदिसे असत्त्वभी अनुभवसिद्ध है और केवल असत्त्वभी वस्तुका स्वरूप नहीं है, क्योंकि [10]स्वकीयरूप आदिसे उसके सत्त्वकीभी [11]प्रतीति सिद्ध है। और सत्त्व असत्त्व एतत् उभयभी वस्तुका स्वरूप नहीं है, क्योंकि उभयरूपसे [12]विलक्षण अन्य जातीय भी वस्तुका स्वरूप अनुभवसिद्ध है। जैसे दधि शर्करामें मरिच इलायची नाग-केसर तथा लवंगके संयोगसे द्रव्यमें एक अपूर्व भिन्न जातिका पानक रस उत्पन्न होता है

---

१ ज्ञानके उत्पन्न करनेकी शक्ति. २ उलटापन. ३ तृतीय तथा इस नूतन. ४ सादृश्य. ५ स्यादस्ति नास्ति च. ६ स्यादवक्तव्य एव. ७ अपूर्व. ८ सत्ता. ९ अन्यरूप. १० अपने. ११ अनुभव. १२ अपूर्व।

जो कि केवल दधि गुड़ तथा मरिच तथा लवंगादिकी अपेक्षासे विलक्षण सुस्वाद तथा सुगन्धयुक्त होता है। इसका स्वाद [1]श्रीखण्ड तथा आमके भी रसमें पूर्वोक्त मरिच आदिके संयोगसे अनुभवसिद्ध है। और [2]उभय विलक्षण ही वस्तुका स्वरूप है यह भी नहीं कह सकते। क्योंकि वस्तुमें [3]कथञ्चित् सत्त्व और कथञ्चित् असत्त्वकी प्रतीति होती है। जैसे कि दधि शर्करामें मिलित मरिचादि चातुर्जातक दधि गुड शर्करामें मिलित मरिच पत्रक नागकेसर तथा इलायची इन चार द्रव्योंसे उत्पन्न [4]पानकमें दधि आदिके भी स्वादका अनुभव होता है। इसी प्रकार उत्तरके तृतीय चतुर्थ आदि भङ्गोंमेंभी विलक्षण अर्थका अनुभव समझलेना। इससे पृथक् २ स्वभाववाले सातों धर्मोंके सिद्ध होनेसे उन धर्मोंके विषयभूत संशय जिज्ञासा आदि क्रमसे [5]सप्त [6]प्रतिवचनरूप सप्तभङ्गी सिद्ध हुई ॥

इयं च सप्तभङ्गी द्विविधा—प्रमाणसप्तभङ्गी नयसप्तभङ्गी चेति। किं पुनः प्रमाणवाक्यम्, किं वा नयवाक्यमिति चेत्?

यह सप्तभङ्गी दो प्रकारकी है एक प्रमाण वाक्य सप्तभङ्गी १ दूसरी नय वाक्य सप्तभङ्गी २। कदाचित् यह कहो कि प्रमाण वाक्य क्या है और नय वाक्य क्या है तोः—

अत्र केचित्—सकलादेशः प्रमाणवाक्यं, विकलादेशो नयवाक्यम्। अनेकधर्मात्मकवस्तुविषयकबोधजनकवाक्यत्वं सकलादेशत्वम्, एकधर्मात्मकवस्तुविषयकबोधजनकवाक्यत्वम् विकलादेशत्वम् इत्याहुः।

यहांपर कोई ऐसा कहते हैं कि [7]सकलादेश वाक्य प्रमाण वाक्य है तथा विकलादेश नय वाक्य है। इनमेंसे सत्त्व असत्त्व आदि अनेक धर्म स्वरूप जो वस्तु है उस वस्तु विषयक बोधजनक अर्थात् वस्तुके अनेक धर्मोंका ज्ञान करानेवाला वाक्य सकलादेश है। और वस्तुके सत्त्व असत्त्व अवक्तव्यत्व आदि धर्मोंमेंसे किसी एक धर्मका ज्ञान उत्पन्न करानेवाला वाक्य विकलादेश है ॥

तेषां प्रमाणवाक्यानां नयवाक्यानां च सप्तविधत्वव्याघातः। प्रथमद्वितीयचतुर्थभङ्गानां सत्त्वासत्त्वावक्तव्यत्वरूपैकैकधर्मात्मकवस्तुविषयकबोधजनकानां सर्वथा विकलादेशत्वेन नयवाक्यत्वापत्तेः तृतीयपञ्चमषष्ठसप्तमानामनेकधर्मात्मकवस्तुविषयक बोधजनकानां सदा सकलादेशत्वेन प्रमाणवाक्यतापत्तेः। न च त्रीण्येव नयवाक्यानि चत्वार्येव प्रमाणवाक्यानीति वक्तुं युक्तं सिद्धान्तविरोधात्।

उनके मतमें प्रमाण वाक्योंके तथा नय वाक्योंके भी सप्त भेदका व्याघात होगा. अर्थात् प्रमाण वाक्योंका और नय वाक्योंकाभी सात प्रकारका भेद नहीं सिद्ध होगा। क्योंकि प्रथम द्वितीय तथा चतुर्थ अर्थात् **'स्यादस्ति स्यान्नास्ति स्यादवक्तव्य एव'** भङ्गोंकी क्रमसे सत्त्व असत्त्व तथा अवक्तव्यत्वरूप वस्तुके एक एक धर्म [9]विषयक बोध

---

१ शिखिरन. २ सत्त्वासत्त्व. ३ किसी अपेक्षासे. ४ पीनेके पदार्थ. ५ सात. ६ उत्तर वचन. ७ सम्पूर्णरूपसे पदार्थोंका ज्ञान करानेवाला वाक्य. ८ एक अंशमें पदार्थोंका ज्ञान करानेवाला वाक्य. ९ धर्मके.

करानेवाले होनेसे सर्वथा विकलादेशताके कारण [1]नयवाक्यताकी आपत्ति होगी तथा तृतीय, पञ्चम, षष्ठ और सप्तम **'स्यादस्ति नास्ति च, स्यादस्ति चावक्तव्यश्च, स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च, स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्यश्च'** भङ्गोंकी क्रमसे सत्त्व असत्त्व, सत्त्वसहित अवक्तव्यत्व, असत्त्वसहित अवक्तव्यत्व तथा सत्त्व असत्त्व उभयसहित अवक्तव्यत्व वस्तुके अनेक स्वरूपोंका बोध करानेसे सर्वथा सकलादेशके कारण [2]प्रमाण वाक्यताकी [3]आपत्ति होगी। और तीन ही नय वाक्य हैं और [4]चार ही प्रमाण वाक्य हैं ऐसा नहीं कह सकते। क्योंकि ऐसा कहनेसे अर्थात् प्रथम द्वितीय चतुर्थ भङ्गोंको नयवाक्य और तृतीय पञ्चम षष्ठ तथा सप्तम भङ्गोंको प्रमाणवाक्य माननेसे स्याद्वादके सिद्धान्तका विरोध होगा।

यत्तु धर्माविषयकधर्मिविषयकबोधजनकवाक्यत्वं सकलादेशत्वं, धर्म्यविषयकधर्मविषयकबोधजनकवाक्यत्वं विकलादेशत्वमिति–तन्न। सत्त्वाद्यन्यतमेनापि धर्मेणाविशेषितस्य धर्मिणश्शाब्दबोधविषयत्वासम्भवात्, धर्मिवृत्तित्वाविशेषितस्य धर्मस्यापि तथात्वादुक्तलक्षणस्यासम्भवात्।

और जो कोई कहते हैं कि विशेषणभूतधर्मको छोड़के केवलधर्मी [5]विषयक [6]बोधजनक वाक्य सकलादेश और इसके विपरीत [7]धर्मीको छोड़के केवल विशेषणीभूत धर्ममात्र विषयक [8]बोधजनक वाक्य विकलादेश है सो यह भी [9]युक्त नहीं है, क्योंकि सत्त्व असत्त्व आदि धर्मोंसे किसी एक धर्मसे [10]अविशेषित [11]धर्मीकी शाब्दबोधमें विषयताका हो असंव है अर्थात् किसी न किसी धर्मसहित ही विशेष्य धर्मीका [12]शाब्दबोधमें भान होता है न कि धर्मरहित धर्मी मात्रका। ऐसे ही धर्मीमें [13]वृत्तितारूपसे [14]अविशेषित धर्मका भी शाब्दबोधमें भान नहीं होता इस हेतुसे पूर्वोक्त सकलादेश तथा विकलादेशका लक्षण असंभव है अर्थात् लक्षण असंभव दोषसे ग्रस्त है।

न च स्याज्जीव एवेत्यनेन धर्मिमात्रविषयकबोधस्य जननात्स्यादस्त्येवेत्यनेन केवलधर्मविषयकबोधस्य जननाच्च नासम्भव इति वाच्यं; यतो जीवशब्देन जीवत्वरूपधर्मावच्छिन्नस्यैव जीवस्याभिधानम्–नतु केवलधर्मिणः, अस्तिशब्देन च यत्किञ्चिद्धर्मिवृत्तित्वविशेषितस्यैवास्तित्वस्याभिधानम्–न तु केवलधर्मस्येति सर्वानुभवसाक्षिकम्।

कदाचित् **'स्याज्जीव एव'** कथञ्चित् जीव, इस वाक्यसे केवल जीव धर्मीमात्रका ज्ञान उत्पन्न होनेसे तथा **'स्यादस्त्येव'** कथञ्चित सत्त्व, इस वाक्यसे केवल सत्त्वधर्ममात्रका ज्ञान उत्पन्न होनेसे पूर्वोक्त सकलादेश तथा विकलादेशके लक्षणका संभव है। ऐसा कहो, सो भी नहीं कह सकते। क्योंकि जीव शब्दसे जीवत्वरूप [15]धर्मावच्छिन्न ही जीवका कथन

---

१ केवलनय वाक्यता. २ केवल. ३ प्रसंग. ४ पूर्वोक्त. ५ विशेष्य. ६ धर्ममात्रका बोध करानेवाला. ७ विशेष्यको. ८ धर्म्ममात्रका बोध करानेवाला. ९ ठीक. १० विशेषणतासे रहित. ११ विशेष्यकी. १२ शब्दजन्य ज्ञान. १३ स्थितित्व. १४ विशेषण न होकर. १५ अन्य वस्तुसे जीवको पृथक् करनेवाले जीवत्वरूप अवच्छेदक धर्मसहित.

होता है न कि पृथक्कारक अवच्छेदक धर्म्मशून्य केवल धर्मीमात्रका। ऐसे ही **'अस्ति'** शब्दसे जिस किसी धर्मीमें वृत्तित्वरूपसे विशेषित ही विशेषणता वा वृत्तिता सम्बन्धसे अन्वित [1]अस्तित्व धर्मका कथन होता है न कि धर्मी अन्वित हुये विना केवल धर्ममात्रका भान होता है, इस विषयमें सब विद्वानोंका अनुभव ही साक्षी है ॥

न चैवं–द्रव्यशब्दस्य भावशब्दस्य च विभागानुपपत्तिरितिवाच्यम्;—यतो मुख्यतया द्रव्य-प्रतिपादकशब्दो द्रव्यशब्दः, यथा जीवशब्दः, जीवशब्देन हि जीवत्वरूप धर्मो गौणतया प्रतिपाद्यते—जीवद्रव्यं मुख्यतया। एवं मुख्यतया धर्मप्रतिपादकशब्दो भावशब्दः, यथा–अस्त्यादिशब्दः, तेन हि–अस्तित्वरूप धर्मस्य मुख्यतया प्रतिपादनम्, धर्मिणश्च गौणतया, इति द्रव्यभावशब्दयोर्विभाग उपपद्यत इति ॥

कदाचित् यह कहो कि यदि धर्मी तथा धर्मका पृथक् भान नहीं होता तब द्रव्यवाचक शब्द तथा भाववाचक शब्दोंके विभागकी [2]अनुपपत्ति होगी। सो यह भी नहीं कह सकते, क्योंकि प्रधानतासे द्रव्यका वाचक जो शब्द हैं उसको द्रव्य शब्द कहते हैं। जैसे जीव शब्द, **'जीवः'** यहांपर जीव शब्दसे जीवत्वरूपधर्म तो [3]गौणतासे [4]प्रतिपादित होता है। इसी प्रकार मुख्यतासे [5]धर्मप्रतिपादक जो शब्द है उसको भावशब्द कहते हैं। जैसे अस्ति आदि शब्द। यहांपर **'अस्ति'** इस शब्दसे मुख्यतासे [6]अस्तित्वरूप धर्मका [7]प्रतिपादन होता है और जीव आदि धर्मीका गौणतासे। इस प्रकारसे द्रव्य तथा भाववाचक शब्दोंका विभाग [8]उत्पन्न होता है ॥

यदपि–पाचकोऽयमिति द्रव्यशब्दः, पाचकत्वमस्येति भावशब्दः, इति द्रव्यभावशब्दयोर्विभागनि-रूपणम्; तदपि न सङ्गच्छते। पाचकशब्देनापि पाचकत्वधर्मविशिष्टस्यैव पुरुषस्याभिधानात्; पाचकत्वमित्यनेनापि पाचकवृत्तित्वविशेषितस्यैव धर्मस्य बोधनात्;–इति ॥

और जो ऐसा कहते हैं **'पाचकोऽयम्'** यह रोटी पकानेवाला। यह द्रव्यवाचक शब्द है, और **'पाचकत्वमस्य'** इसका पाचकपना, यह भाववाचक शब्द है। इस प्रकार द्रव्यवाचक तथा भाववाचक शब्दोंके विभागका निरूपण होता है। सो यह कथन भी उनका युक्तिसे [9]संगत नहीं है। क्योंकि पाचक ऐसा कहनेसे पाचकत्वधर्मसहित ही पुरुषका कथन होता है और **'पाचकत्व'** इस शब्दसे पाचकमें वृत्तित्व सम्बन्धसे [10]विशेषित धर्मका ही कथन होता है ॥

अपरे तु–स्यादस्तीत्यादिवाक्यं सप्तविधमपि प्रत्येकं विकलादेशः, समुदितं सकलादेशः,— इति वदन्ति।

और अन्य ऐसा कहते हैं कि **'स्यादस्ति स्यान्नास्ति'** इत्यादि सप्तप्रकारका जो वाक्यभेद है, वह प्रत्येक तो विकलादेश है और सातों वाक्य मिलकर सकलादेश है ॥

---

१ सत्त्व. २ असिद्धि. ३ अप्रधानतासे. ४ कहा जाता है, ५ धर्मवाचक. ६ सत्त्व. ७ कथन. ८ युक्त. ९ युक्त. १० विशेषणरूपताको प्राप्त.

अत्र चिन्त्यते—कुतस्स्यादस्तीत्यादिवाक्यं प्रत्येकं विकलादेशः ?

अब यहांपर विचार करते हैं कि किस कारणसे 'स्यादस्ति' इत्यादि सप्तप्रकारका वाक्यभेद एक २ भेद विकलादेश है ॥

ननु—सकलार्थप्रतिपादकत्वाभावाद्विकलादेश इति चेन्न । तादृशवाक्यसप्तकस्यापि विकलादेशत्वापत्तेः, समुदितस्यापि सदादिवाक्यसप्तकस्य सकलार्थप्रतिपादकत्वाभावात्; सकलश्रुतस्यैव सकलार्थप्रतिपादकत्वात् ।

कदाचित् ऐसा कहो कि एक २ पृथक् वाक्य सम्पूर्ण अर्थोंका [1]प्रतिपादक नहीं है इस लिये विकलादेश है, सो ऐसा भी नहीं कह सकते । क्योंकि ऐसा माननेसे उस प्रकारके सातों वाक्य भी विकलादेश हो जायेंगे । 'स्यादस्ति' सत्त्व आदि सातों वाक्य मिलकर भी सम्पूर्ण अर्थोंके प्रतिपादक सिद्ध नहीं हो सकते । क्योंकि सकलश्रुतज्ञान ही सम्पूर्ण अर्थोंका प्रतिपादक है ॥

एतेन—सकलार्थप्रतिपादकत्वात्सप्तभङ्गीवाक्यं समुदित सकलादेशः, इति निरस्तम्; समुदितस्यापि तस्य सकलार्थप्रतिपादकत्वासिद्धेः, सदादिसप्तवाक्येन एकानेकादि—सप्तवाक्यप्रतिपाद्यधर्माणामप्रतिपादनात् ।

इसीसे सम्पूर्ण अर्थोंका प्रतिपादक होनेसे मिलित सप्तभङ्गी वाक्य-समुदाय सकलादेश है, यह मत [2]परास्त हो गया, क्योंकि मिलित भी सप्तभङ्गी वाक्यकी सम्पूर्ण अर्थोंकी प्रतिपादकता असिद्ध है । सत्त्व असत्त्व आदि सप्तवाक्योंसे एक तथा अनेक आदि सप्तवाक्य [3]प्रतिपाद्य धर्मोंका [4]प्रतिपादन नहीं होता ॥

सिद्धान्तविदस्तु एकधर्मबोधनमुखेन तदात्मकानेकाशेषधर्मात्मकवस्तुविषयक बोधजनकवाक्यत्वम् सकलादेशत्वम् । तदुक्तम् । 'एकगुणमुखेनाशेषवस्तु रूपसङ्ग्रहात्सकलादेशः' इति ।

और सिद्धान्तवेत्ता अर्थात् सिद्धान्तके जाननेवाले तो ऐसा कहते हैं कि एक धर्मके [5]बोधनके [6]मुखसे उसको आदि लेकर सम्पूर्ण जो धर्म हैं उन सब धर्मस्वरूप जो वस्तु तादृश वस्तुविषयक [7]बोधजनक जो वाक्य है उसको सकलादेश कहते हैं । इसी बातको अन्य आचार्योंने भी कहा है । वस्तुके एक धर्मके द्वारा [8]शेष सब वस्तुके स्वरूपोंका संग्रह करनेसे सकलादेश कहलाता है ॥

तस्यार्थः—यदा-अभिन्नं वस्तु एकगुणरूपेणोच्यते । गुणिनां गुणरूपमन्तरेण विशेषप्रतिपत्तेरसम्भवात्; तदा सकलादेशः एको । हि जीवोऽस्तित्वादिष्वेकस्य गुणस्य रूपेण अभेदवृत्त्या, अभेदोपचारेण वा, निरंशस्समस्तो वक्तुमिष्यते, विभागनिमित्तस्य तत्प्रतियोगिनो गुणान्तरस्याविवक्षितत्वात् । कथमभेदवृत्तिः ? कथं चाऽभेदोपचारः ? इति चेत् ।

द्रव्यार्थत्वेनाश्रयणे तदव्यतिरेकादभेदवृत्तिः, पर्यायार्थत्वेनाश्रयणे परस्परव्यतिकरेऽप्येकत्वाध्यारोपादभे-

---

१ कहनेवाला. २ खण्डित. ३ कथनेके योग्य. ४ कथन. ५ जनाने. ६ द्वार. ७ ज्ञानकरानेवाला. ८ बाकी.

दोपचारः इति । अभेदवृत्त्यभेदोपचारयोरनाश्रयणे–एकधर्मात्मिकवस्तुविषयबोधजनकं वाक्यं विकलादेशः इति प्राहुः ॥

इसका तात्पर्य यह है कि जब अभिन्न वस्तु एकगुणरूपसे कहा जाता है तब गुण रूपके बिना अर्थात् अन्य शेष धर्मोंके बिना वस्तुके विशेष ज्ञानका असंभव होनेसे वह एक धर्मद्वारा कथन ही सकलादेश है । क्योंकि एक जीव अस्तित्व आदि सब धर्मोंमें एक धर्म-स्वरूपसे अभेद वृत्तिसे अथवा अभेदके उपचारसे अंशरहित है, अतः समस्तरूपसे ही वह कथन करनेको अभीष्ट है । क्योंकि विभागके निमित्तभूत उस [1]जीवके प्रतियोगी अन्य धर्म [2]अविवक्षित हैं, कदाचित् यह कहो कि, कैसे अभेद सम्बन्धसे वस्तुकी [3]वृत्ति है ? और किस प्रकार अभेदका उपचार है ? तो इसका उत्तर यह है कि,—द्रव्यार्थतारूपसे आश्रय करनेसे द्रव्यत्वरूपसे अभेद होनेके कारण अभेद सम्बन्धसे द्रव्यत्वकी वृत्ति है । क्योंकि द्रव्यत्व धर्मसे सब द्रव्योंका अभेद है और पर्यायार्थतारूप अर्थात् घटत्व कपालत्वादिरूपका तथा जीवमें देवत्व मनुष्यत्वादि वा मिथ्यात्व सम्यक्त्वादि धर्मका आश्रयण करनेसे परस्पर भेद होनेपर भी द्रव्यत्वरूप एकत्वके [4]अध्यारोपसे अभेदका भी उपचार है । और अभेदवृत्ति तथा अभेदोपचार इन दोनोंका आश्रय न करके एक धर्मात्मक वस्तुविषयक बोधजनक जो वाक्य है, वह विकलादेश है ॥

तत्र धर्मान्तराऽप्रतिषेधकत्वे सति विधिविषयकबोधजनकवाक्यं प्रथमो भङ्गः । स च स्यादस्त्येव घट इति वचनरूपः । धर्मान्तराप्रतिषेधकत्वे सति प्रतिषेधविषयकबोधजनकवाक्यं द्वितीयो भङ्गः । स च स्यान्नास्त्येव घट इत्याकारः, तत्र प्रथमवाक्ये घटशब्दो द्रव्यवाचकः, विशेष्यत्वात् । अस्तीति गुणवाचकः, विशेषणत्वात् ।

इन [5]सप्तभङ्गोंमेंसे अन्य धर्मोंका निषेध न करके विधि विषयक अर्थात् सत्ता विषयमें बोध उत्पन्न करानेवाला वाक्य प्रथम **'स्यादस्त्येव घटः'** कथञ्चित् घट है, भङ्ग है उस भङ्गका स्वरूप **'स्यादस्त्येव घटः'** कथंचित् घट है इत्यादि वचनरूप है और इसी प्रकार अन्य धर्मका निषेध न करके निषेध [6]विषयक बोधजनक वाक्य द्वितीय भङ्ग है । और **'स्यान्नास्त्येव घटः'** कथञ्चित् घट नहीं है इत्यादि वचनरूप द्वितीय भङ्गका आकार है, उसमें विशेष्य होनेके कारण प्रथम [7]वाक्यमें घट शब्द द्रव्यवाचक है और विशेषण होनेसे **'अस्ति'** यह शब्द गुणवाचक है ॥

ननु–घटस्य रूपम् । फलस्य माधुर्यम् । पुष्पस्य गन्धः । जलस्य शैत्यम् । वायोः स्पर्शः । इत्यादौ गुणस्यापि विशेष्यत्वम् दृश्यते; द्रव्यस्यापि विशेषणत्वं; इति चेत्सत्यम् । तथापि–समानाधिकरणवाक्ये–नीलमुत्पलं, शुक्लः पटः, सुरभिर्वायुः, इत्यादौ द्रव्यवाचकस्यैव विशेष्यत्वं गुणवाचकस्यैव विशेषणत्वमिति नियमात् ॥

---

१ विशेषणीभूत. २ कहनेको इष्ट. ३ अभिन्न धर्मसे स्थिति. ४ मानने. ५ सात. ६ असत्त्व-विषयक. ७ मङ्ग.

कदाचित् घटका रूप, फलकी मधुरता, पुष्पका [1]सौगन्ध्य, जलकी शीतलता और वायुका स्पर्श इत्यादि वाक्योंमें गुणकी भी विशेषणता दीख पड़ती है, क्योंकि इन पूर्वोक्त वाक्योंमें घट, फलादि द्रव्योंका अन्वयरूप तथा मधुरता आदि गुणोंमें है. इससे द्रव्यकी भी विशेषणता सिद्ध हुई। ऐसी शङ्का करो तो सत्य है। तथापि समानाधिकरण वाक्यमें अर्थात् अवच्छेदक धर्म तथा वस्तुका गुण दोनों एक अधिकरणमें अन्वयजनक वाक्यमें जैसे नीलकमल [2]शुक्लपट और सुगन्ध पवन इत्यादि स्थानोंमें द्रव्यवाचक कमल आदि शब्दोंको विशेष्यता तथा गुणवाचक नीलादि शब्दको विशेषणताका नियम है, इस हेतुसे द्रव्यवाचक शब्द प्राय: विशेष्य और गुणवाचक विशेषण होता है ।।

तत्र स्वरूपादिभिरस्तित्वमिव नास्तित्वमपि स्यादित्यनिष्टार्थस्य निवृत्तये स्यादस्त्येवेत्येवकारः । तेन च स्वरूपादिभिरस्तित्वमेव न नास्तित्वमित्यवधार्यते । तदुक्तम्—

प्रथम भङ्गमें जैसे स्वकीयरूप आदिसे अस्तित्वका भान होता है ऐसे ही नास्तित्वका भी कथञ्चित् भान हो, इस अनिष्ट अर्थके निराकरणके लिये **'स्यादस्त्येव'** यहां अस्ति पदके अनन्तर 'एव' पद दिया गया, इस हेतु से **'स्यात् अस्ति एव'** इस वाक्यसे यह अर्थ बोधित होता है कि स्वरूप आदिसे घटका अस्तित्वही है न कि नास्तित्व अर्थात् अपने रूपसे है ही है. उसका असत्व निजरूपसे नहीं है । जैसा कि कहा भी है—

"वाक्येऽवधारणं तावदनिष्टार्थनिवृत्तये ।
कर्तव्यमन्यथानुक्तसमत्वात्तस्य कुत्रचित् ।।" इति ।।

'स्यात् अस्ति एव घटः' कथञ्चित् घट है ही है इत्यादि वाक्यमें अवधारण अर्थात् निश्चयवाचक **'एव'** शब्दका प्रयोग अनिष्ट असत्वादि अर्थकी निवृत्तिकेलिये अवश्य कर्तव्य है। ऐसा न करनेसे अकथितके तुल्य कदाचित् कहीं उसकी प्रतीति हो जाय ।

ननु नानार्थस्थले गौरेवेत्यादौ सत्यप्यवधारणेऽनिष्टार्थनिवृत्तेरभावात्, गामानयेत्यादावसत्यप्यवधारणे प्रकरणादिनानिष्टार्थनिवृत्तेर्भावाच्च, नावधारणाधीनाऽन्यनिवृत्तिः । किञ्च अन्यनिवृत्तिं कुर्वन्नेवकार एवकारान्तरमपेक्षते वा ? न वा ? आद्येऽनवस्थापत्तिः । द्वितीये यथैवकारप्रयोग एवकारान्तराभावेऽपि प्रकरणादिनाऽन्यनिवृत्तिर्लभ्यते तथा सर्वशब्दप्रयोगेऽपि प्रकरणादिनाऽन्यनिवृत्तेर्लाभसम्भवादेवकारप्रयोगोऽनर्थक इति ।।

कदाचित् यह कहो कि [3]नाना अर्थवाचक शब्दोंमें जैसे **'गौः एव'** केवल गौ इत्यादि में निश्चयवाचक एव शब्दके रहने पर भी अनिष्ट अर्थकी निवृत्तिका अभाव है। गो शब्द पशु इन्द्रिय तथा किरण आदि कई अर्थोंका वाचक है, तो अवधारणवाचक रहनेपर भी सब ही अर्थोंकी उपस्थिति होगी और **गाम् आनय'** गौ लाओ, यहांपर अवधारणवाचक एव शब्दके न रहनेपर भी प्रकरण आदिसे अनिष्ट अर्थकी निवृत्ति है । क्योंकि दुग्धादिके प्रकरणसे पशुरूपका आनयनरूप अर्थका ज्ञान इस वाक्य से होता है, न कि अन्यका ।

१. खुशबू. २. सफेद कपड़ा. ३ अनेक.

इससे यह सिद्ध हुआ कि अवधारण शब्दके प्रयोगसे अन्यकी निवृत्ति वा अभाव नहीं होता, क्योंकि निश्चयवाचक एव शब्दके रहनेपर भी अन्यकी निवृत्ति नहीं है। और न होनेपर भी **'गाम् आनय'** इसमें अन्यकी निवृत्ति देखी गई है। इस हेतुसे अन्वय-व्यतिरेकसे निश्चयवाचक शब्दको अन्यकी निवृत्तिमें कारणता नहीं है। और भी अन्यकी निवृत्ति करता हुआ एवकार अन्य एवकार अर्थात् निश्चयबोधक दूसरे एव शब्दकी अपेक्षा रखता है या नहीं ? यदि प्रथम पक्ष है अर्थात् अन्य एव शब्दकी अपेक्षा रखता है तब तो अनवस्था दोष आवेगा। क्योंकि जैसे **'अस्ति'** इत्यादि शब्द अपने अर्थको निश्चय व पुष्ट करानेके लिये एव शब्दकी अपेक्षा रखते हैं ऐसे ही एव शब्द भी अपने अर्थको दृढ करानेके लिये दूसरे एव शब्दकी अपेक्षा करेगा और दूसरा एव शब्द भी अपने अवधारणरूप अर्थको दृढ़ करानेके लिये तीसरे एव शब्दकी अपेक्षा करेगा। इस प्रकार अनवस्था होगी और द्वितीय अर्थात् एवकार दूसरे एवकार की अपेक्षा अपने अर्थके बोध करानेमें नहीं रखता तो जैसे एवकारके प्रयोगमें दूसरे एवकारके अभावमें भी प्रकरण आदिसे अन्यकी निवृत्तिका लाभ होता है, ऐसे ही सब शब्दोंके प्रयोगमें भी एवकारके विना ही प्रकरण आदिसे अन्यकी निवृत्तिके लाभका संभव होनेसे **'स्यादस्ति एव'** इस भङ्गमें भी एवकारका प्रयोग व्यर्थ ही है ॥

मैवम्। यतश्शब्दाम्नायपरिपाटी विरुद्ध्यते। तत्र हि ये शब्दास्स्वार्थमात्रेऽनवधारिते सङ्केतितास्ते तदवधारणविवक्षायामेवकारमपेक्षन्ते। तत्समुच्चयादिविवक्षायां चकारम्। यथा-घटमेवानय, पटं चानय, इति। यस्त्ववधारणे सङ्केतितस्तस्य च नावधारणबोधने एवकारान्तरापेक्षा। यथा-चकारस्य समुच्चयबोधने न चकारान्तरापेक्षा।

ऐसी शङ्का नहीं कर सकते, क्योंकि शब्दशास्त्रकी पद्धति, रीति वा सम्प्रदायका इसमें विरोध आता है। शब्दशास्त्रमें अर्थात् शब्दोंकी शक्ति तथा शब्दकी व्युत्पत्तिकारक व्याकरण आदि शास्त्रमें जो शब्द निश्चयरहित केवल [१]स्वार्थमात्रमें जैसे घट पट अस्ति आदि कम्बुग्रीवादि व्यक्तिमें संकेतित हैं वे ही [२]अवधारण अर्थके कथनकी वक्ताकी इच्छा होनेपर एवकार की अपेक्षा करते हैं, और वे ही शब्द पदार्थान्तरके संग्रहकी विवक्षामें चकारकी अपेक्षा रखते हैं। जैसे **'घटमेवानय, पटं चानय'** घट ही लाओ और पट भी लाओ, इन दोनों वाक्योंमें घट पट शब्द अपने अर्थ कम्बुग्रीवादिमान् पदार्थ, तथा तन्तुओंकी रचना-विशेष मात्रमें संकेतित[३] हैं, इस हेतुसे वे निश्चयके लिये एव शब्द तथा [४]समुच्चयबोधक चकारकी अपेक्षा करते हैं, और जो शब्द [५]अवधारणरूप अर्थमें ही संकेतित हैं अर्थात् जिसका अवधारणरूप ही अर्थ है उसको पुनः अवधारणरूप अर्थबोध करानेके लिये दूसरे एवकार शब्दकी आकांक्षा नहीं है, ऐसे ही [६]समुच्चयरूप अर्थबोधक चकार भी दूसरे चकारकी अपेक्षा नहीं रखता

---

१ अपने अर्थ. निश्चयरूप अर्थ. ३ बोधित. ४ समूहकेलिये. ५ निश्चयकरण. ६ वाक्यमें कथितसे अनेक संग्रह.

और न्यायशास्त्रकी रीतिसे उसी शब्दके अनन्तर एकार्थबोधक वही शब्द जैसे **'एव एव'** वा **'च च'** ऐसा रखनेसे [1]शाब्दबोध भी नहीं होगा। जैसे **'घटो घटः'** घड़ा घड़ा, इस वाक्यका अर्थबोध नहीं होता। क्योंकि शाब्दबोधमें एक शब्दके उच्चारणके पश्चात्[2] उसी अर्थबोधक उसी शब्दको कारणता नहीं मानी गई है। इस हेतुसे भी एव शब्द दूसरे एव शब्दकी अपेक्षा अपने अर्थबोध करानेमें नहीं रखता।

न च निपातानां द्योतकत्वादेवकारस्य वाचकत्वं न सम्भवतीति वाच्यम्। निपातानां द्योतकत्व-पक्षस्य वाचकत्वपक्षस्य च शास्त्रे प्रदर्शनात्। "द्योतकाश्च भवन्ति निपाताः" इत्यत्र 'च शब्दाद्वाचकाश्च' इति व्याख्यानात्॥

कदाचित् यह कहो कि निपातोंको तो [3]द्योतकता है नकि वाचकताका संभव है। तब एवकारका प्रयोग व्यर्थ ही है. सो ऐसा नहीं कह सकते। क्योंकि निपातोंका द्योतकत्व तथा वाचकत्व दोनों पक्ष शास्त्रोंमें देखे जाते हैं। **'द्योतकाश्च भवन्ति निपाताः'** निपात द्योतक भी होते हैं इस वाक्यमें च शब्दसे वाचकताका भी व्याख्यान किया गया है। यदि निपात केवल द्योतक ही होते तो **'द्योतकाश्च'** द्योतक भी, यहांपर समुच्चयार्थक 'च' शब्दका प्रयोग क्यों किया? केवल **'द्योतकाः'** इतना ही कहना [4]पर्य्याप्त था। च शब्दसे यह बोधित होता है कि द्योतक तथा वाचक भी निपात हैं॥

परे तु-"निपातानां द्योतकतया न द्योतकस्य द्योतकान्तरापेक्षेत्यवधारणद्योतने नैवकारस्यैवकारान्तरापेक्षा; यथा प्रदीपस्य न प्रदीपान्तरापेक्षा, वाचकस्य च घटादिपदस्य युक्ताऽवधारणबोधनायैवकारापेक्षा। ननु-द्योतकस्यापि द्योतकान्तरापेक्षा दृश्यते, एवमेवेत्यादौ एवमितिमान्तनिपातस्यैवकारापेक्षणात्; तथा च सर्वोऽपि द्योतको द्योत्यार्थे द्योतकान्तरापेक्षस्स्यादित्यनवस्था दुर्निवारेति चेन्न, तत्र एव शब्दस्य स्वार्थवाचक-त्वादन्यनिवृत्तौ द्योतकापेक्षोपपत्तेः, निपातानां वाचकत्वस्यापि शास्त्रसम्मतत्वात्, अतएव उपकुम्भमित्यादावु-पशब्देन कुम्भशब्दस्य समासः सङ्गच्छते, अन्यथा-उपशब्दस्य द्योतकत्वेन समासो न स्यात्, द्योतकेन समासासम्भवात्" इत्याहुः॥

अन्य तो ऐसा कहते हैं कि,-निपातोंको द्योतकत्व होनेसे एक द्योतकको[5] दूसरे द्योतककी अपेक्षा नहीं रहती। इसलिये [6]अवधारणरूप अर्थ द्योतित[7] होनेके लिये एक एवकार शब्दको दूसरे एवकार शब्दकी अपेक्षा ऐसे नहीं रहती जैसे एक दीपकके प्रकाशित होनेके लिये दूसरे दीपककी अपेक्षा नहीं रहती, और वाचक जो घट तथा अस्ति आदि शब्द हैं उनके अवधारणरूप अर्थ जाननेकेलिये एवकारकी अपेक्षा योग्य ही है। कदाचित् यह कहो कि एक द्योतकको भी दूसरे द्योतककी अपेक्षा होती है जैसे **'एवम् एव'** ऐसा ही, यहांपर एवम् यह जो [8]मकरान्त निपात है उसको एवकी अपेक्षा है तो इस रीतिसे सब [9]द्योतक

---

१ शब्दजन्य ज्ञान. २ घट शब्दके आगे घट या कलश शब्द. ३ किसी पदके संयोगमें उसीके अर्थकी प्रकाशकता. ४ काफी. ५ प्रकाशक. ६ निश्चय. ७ प्रकाशित. ८ म जिसके अन्तमें. ९ प्रकाशक.

शब्द अपने [1]द्योत्य अर्थ प्रकाशित होनेकेलिये अन्य द्योतकका साक्षेप होगा और वह भी द्योतक दूसरेकी अपेक्षा करेगा तो अनवस्था दोष दुर्निवारणीय है, यह कथन भी अनुचित है. क्योंकि **'एवम् एव'** यहांपर जो एवम् शब्द है, वह **'ऐसा'** इस अपने स्वार्थमात्रका वाचक है, इस हेतुसे वहांपर अन्यकी निवृत्तिकेलिये उसको दूसरे [2]द्योतक एव शब्दकी अपेक्षा होनी योग्य है, क्योंकि निपातोंका वाचकत्व पक्ष भी शास्त्रसम्मत है। इसी कारण **'उपकुम्भम्'** घटके समीप इत्यादि पदोंमें निपातरूप समीप अर्थके वाचक उप शब्दके साथ घट शब्दका समास संगत होता है, और यदि उप शब्दको केवल द्योतकता मात्र हो तो घट शब्दके साथ उसका समास न हो, क्योंकि द्योतक शब्दके साथ समासका होना असंभव है ॥

अत्र सौगताः-"सर्वशब्दानामन्यव्यावृत्तिवाचकात् घटादिपदैरेव घटेतरव्यावृत्तिबोधनान्न तदर्थमवधारणं युक्तम्" इति वदन्ति ।

यहांपर [3]सौगत कहते हैं,—कि अन्य व्यावृत्ति अर्थात् जिस शब्दका अर्थ कहना है उससे भिन्न जितने शब्द हैं उन सबकी [4]व्यावृत्ति ही जब सब शब्दकी वाचकता है तब घट आदि पदोंसे ही घटसे भिन्न सबकी [5]व्यावृत्तिरूप अर्थका बोध हो जाता है तो उसके लिये[6] अवधारण वाचक एव शब्दका प्रयोग करना योग्य नहीं है ॥

तन्न;-घटादिशब्दाद्विधिरूपतयाप्यर्थबोधस्यानुभवसिद्धत्वात् । यदि च शब्दाद्विधिरूपतयार्थबोधो नानुभवसिद्ध इति मन्यते तदा कथमन्यव्यावृत्तिशब्दो विधिरूपेणान्यव्यावृत्तिं बोधयति । न च-अन्यव्यावृत्तेरपि तदितरव्यावृत्तिरूपेणैवान्यव्यावृत्तिशब्दाद्बोध इति वाच्यम् । तथा सति तदन्यव्यावृत्तेरपि तदन्यव्यावृत्तिरूपेण बोधस्य वक्तव्यतयाऽनवस्थापत्तेरिति । तथा च 'वाक्येऽवधारणं तावदनिष्टार्थनिवृत्तये' इति सिद्धम् ॥

सो यह बौद्धोंका कथन युक्तिपूर्वक नहीं है क्योंकि,—घट आदि शब्दोंसे अन्यकी निवृत्तिके सिवाय विधिरूपसे भी अर्थका बोध सबको अनुभवसिद्ध है। **'घटः'** ऐसा उच्चारण करनेसे घटकी [7]विधिका भी ज्ञान होता है और यदि ऐसा ही मानते हो कि घट आदि शब्दसे विधिरूप अर्थका बोध अनुभव—सिद्ध नहीं है, तब [8]अन्य व्यावृत्ति यह शब्द विधिरूपसे अन्यकी निवृत्तिरूप अर्थका बोध कैसे कराता है ? कदाचित् ऐसा कहो कि अन्य व्यावृत्ति यह शब्द भी उससे भिन्नकी व्यावृत्तिरूपसे अन्यकी व्यावृत्तिरूप अर्थका बोध कराता है तो यह भी नहीं कह सकते. क्योंकि यदि उससे भिन्न अन्यव्यावृत्ति शब्द भी उससे भिन्न व्यावृत्तिरूपसे और वह अन्य व्यावृत्ति भी अपनेसे भिन्न व्यावृत्तिरूपसे ही अर्थका बोध करावेगा। इसी प्रकार उत्तर उत्तर सब अन्य व्यावृत्ति शब्द उससे भिन्न व्यावृत्ति रूपसे ही अर्थबोध करावेंगे तो अनवस्था दोष आवेगा, क्योंकि विधि न माननेसे अन्यकी

१ प्रकाश होनेके योग्य. २. अवधारणरूप अर्थका द्योतक. ३ बौद्धमतानुयायी. ४ प्रकृत शब्दमें भेद. ५ निराकरणके. ६ अनिष्टरूप अर्थकी निवृत्तिकेलिये. ७ सत्व. ८ अन्यकी निवृत्ति.

व्यावृत्ति कभी समाप्त न होगी। इससे यह सिद्ध होगया कि वाक्यमें अनिष्टकी निवृत्तिके लिये अवधारण वाचक एव शब्दका प्रयोग करना उचित है ॥

अयं चैवकारस्त्रिविधः, अयोगव्यवच्छेदवोधकः अन्ययोगव्यवच्छेदवोधकः अत्यन्तायोगव्यवच्छेद-बोधकश्च इति।

यह अवधारणवाचक एवकार तीन प्रकारका है। एक अयोगव्यवच्छेदबोधक अर्थात् सम्बन्धके न होनेका व्यावर्त्तक, दूसरा अन्ययोगव्यच्छेदबोधक अर्थात् दूसरेके सम्बन्धकी निवृत्तिका बोधक, और तीसरा अत्यन्त असम्बन्धकी व्यावृत्तिका बोधक ॥

तत्र विशेषणसङ्गतैवकारोऽयोगव्यवच्छेदवोधकः, यथा—शङ्खः पाण्डुर एवेति । अयोगव्य-वच्छेदो नाम—उद्देश्यतावच्छेदकसमानाधिकरणाभावाप्रतियोगित्वम् । प्रकृते चोद्देश्यतावच्छेदकं शङ्खत्वं, शङ्खत्वावच्छिन्नमुद्दिश्य पाण्डुरत्वस्य विधानात्, तथा च—शङ्खत्वसमानाधिकरणो योऽत्यन्ताभावः, न तावत्पाण्डुरत्वाभावः, किन्त्वन्याभावः, तदप्रतियोगित्वं पाण्डुरत्वे वर्तत इति शङ्खत्वसमानाधिकरणाभावाप्रतियोगिपाण्डुरत्ववान् शङ्ख इत्युक्तस्थले बोधः ।

इनमेंसे विशेषणके साथ अन्वित एवकार तो [1]अयोगकी निवृत्तिका बोध करानेवाला होता है, जैसे **'शङ्खः पाण्डुः एव'** शंख श्वेत ही होता है। इस वाक्यमें उद्देश्यतावच्छेदकके समान अधिकरणमें रहनेवाला जो अभाव उस अभावका जो अप्रतियोगी उसको अयोग-व्यवच्छेद कहते हैं। यह प्रथम दिखा चुके हैं कि जिस वस्तुका अभाव कहा जाता है वह वस्तु उस अभावका प्रतियोगी होता है। अब यहां प्रकृत प्रसंगमें उद्देश्यताका अवच्छेदक धर्म शंखत्व है, क्योंकि शंखत्व धर्मसे [2]अवच्छिन्न जो शंख है उसको [3]उद्देश्य करके पाण्डुत्व धर्मका विधान करते हैं तो शंखत्व जो उद्देश्यताका अवच्छेदक धर्म उसका अधिकरण शंख है, शंखरूप उद्देश्यमें उद्देश्यतावच्छेदकधर्म समवाय सम्बन्धसे रहता है, तो इस रीतिसे शंखत्वके समान अधिकरणरूप शंखमें नीलत्वका अभाव है पीतत्वका अभाव है परन्तु पाण्डुत्वका अभाव नहीं है। इस हेतुसे शंखमें रहनेवाले अभावका अप्रतियोगी पाण्डुत्व हुआ न कि प्रतियोगी, क्योंकि इस अभावकी प्रतियोगिता नीलत्व आदि धर्ममें रहती है और प्रतियोगितावाला ही प्रतियोगी होता है। इस रीतिसे शंखत्वके समान अधिकरणमें रहनेवाले अभावका अप्रतियोगी, पाण्डुत्वधर्म होगया, उस धर्म करके सहित शंख है, ऐसा पूर्वोक्त उदाहरण **'शङ्खः पाण्डुः एव'** में अर्थबोध होता है। तात्पर्य्य यह है कि उद्देश्यतावच्छेदक शंखत्व [4]जिसमें रहता है, उसी अधिकरणमें रहनेवाला जो अभाव है उसका जो प्रतियोगी न होगा वही अयोगव्यवच्छेद होगा तो उद्देश्यतावच्छेदक शंखत्व शंखरूप अधिकरणमें है; उसमें पाडुत्त्वका अभाव तो है नहीं, क्योंकि वह तो पाण्डुवर्ण ही है, इसलिये उद्देश्यतावच्छेदक समानाधिकरण अभावका अप्रतियोगी

१ असम्बन्ध. २ सहित. ३ रख. ४ शंखमें.

पाण्डुत्व है उसीके अयोग अर्थात् असम्बन्धकी निवृत्तिका बोधक एवकार यहाँ **'शङ्खः पाण्डुः एव'** पर लगाया है ॥

विशेष्यसङ्गतैवकारोऽन्ययोगव्यवच्छेदबोधकः । यथा—पार्थ एव धनुर्धर इति । अन्ययोगव्यवच्छेदो नाम विशेष्यभिन्नतादात्म्यादिव्यवच्छेदः । तत्रैवकारेण पार्थान्यतादात्म्याभावो धनुर्धरे बोध्यते । तथा च पार्थान्यतादात्म्याभाववद्धनुर्धराभिन्नः पार्थ इति बोधः ॥

और विशेष्यके साथ [1]सङ्गत जो एवकार है वह [2]अन्ययोगव्यवच्छेदरूप अर्थका बोध कराता है, जैसे **'पार्थ एव धनुर्धरः'** धनुर्धर पार्थ ही है, इस उदाहरणमें एवकार अन्य योगके व्यवच्छेदका बोधक है। विशेष्यसे अन्यमें रहनेवाले जो [3]तादात्म्य आदि उनकी व्यावृत्तिका जो बोधक उसको अन्ययोगव्यवच्छेदबोधक कहते हैं। इस पूर्वोक्त उदाहरणमें एवकार शब्दसे [4]पार्थसे अन्य पुरुषमें रहनेवाला जो [5]तादात्म्य जो उसका अभाव वह धनुर्धरमें बोधित होता है । इस रीतिसे पार्थसे अन्य व्यक्तिमें रहनेवाला जो तादात्म्य उसके अभावसहित जो धनुर्धर तदभिन्न पार्थ है अर्थात् पार्थसे अतिरिक्तमें धनुर्धरत्व नहीं है, ऐसा **'पार्थ एव धनुर्धरः'** इस उदाहरणका अर्थ होता है। यहाँपर धनुर्धरत्वका पार्थसे अन्यमें [6]सम्बन्धके [7]व्यवच्छेदका बोधक पार्थ इस विशेष्यपदके आगे एव शब्द लगाया गया है ।

क्रियासङ्गतैवकारोत्यन्तायोगव्यवच्छेदबोधकः यथा नीलं सरोजं भवत्येवेति । अत्यन्तायोगव्यवच्छेदो नाम—उद्देश्यतावच्छेदकव्यापकाभावाप्रतियोगित्वम् । प्रकृते चोद्देश्यतावच्छेदकं सरोजत्वम्, तद्धर्मावच्छिन्ने नीलाभेदरूपधात्वर्थस्य विधानात् । सरोजत्वव्यापको योऽत्यन्ताभावः, न तावन्नीलाभेदाभावः, कस्मिंश्चित्सरोजे नीलाभेदस्यापि सत्त्वात्, अपि त्वन्याभावः, तदप्रतियोगित्वं नीलाभेदे वर्तत इति सरोजत्वव्यापकात्यन्ताभावाप्रतियोगि नीलाभेदवत्सरोजमित्युक्तस्थले बोधः ।

और क्रियाके साथ [8]सङ्गत जो एवकार है वह अत्यन्त अयोगके [9]व्यवच्छेदका बोधक है जैसे **'नीलं सरोजं भवत्येव'** कमल नील भी होता है। उद्देश्यतावच्छेदक धर्मका व्यापक जो अभाव उस अभावका जो अप्रतियोगी उसको अत्यन्तायोगव्यवच्छेद कहते हैं। प्रकृत प्रसङ्गमें गृहीत **'नीलं सरोजं भवत्येव'** इस उदाहरणमें [10]उद्देश्यतावच्छेदक धर्म सरोजत्व है क्योंकि उसीसे अवच्छिन्न कमलको उद्देश्य करके नीलत्वका विधान है, सो सरोजत्वरूप धर्मसे [11]अवच्छिन्न सरोजमें नीलसे अभेदरूप धातुके अर्थका विधान यहांपर अभीष्ट है, अत. सरोजत्वका [12]व्यापक जो अभाव है वह नीलके अभेदका अभाव नहीं हो सकता, क्योंकि किसी न किसी सरोजमें नीलका अभेद भी है, जब किसी [13]सरोजमें नीलका अभेद है तव नीलके अभेदका अभाव सरोजत्वका व्यापक नहीं है

---

१ अन्वयको प्राप्त. २ अन्यके साथ सम्बन्ध की निवृत्ति. ३ अभेद. ४ अर्जुन. ५ अभेद. ६ अन्ययोग. ७ व्यावृत्ति. ८ अन्वित. ९ व्यावृत्ति. १० सरोजको अन्यसे पृथक् करनेवाला. ११ सहित. १२ व्याप्त होकर कमलमात्रमें रहनेवाला. १३ कमल.

यह सिद्ध हुआ किन्तु अन्यघटादि पदार्थका अभाव सरोजत्वका व्यापक है, उस अभावकी प्रतियोगिता घट आदिमें है और अप्रतियोगिता नीलके अभेदमें है। इस रीतिसे सरोजत्वका व्यापक जो अत्यन्ताभाव उस अभावका अप्रतियोगी जो [1]नीलाभेद उस अभेदसहित सरोज है ऐसा **'नीलं सरोजं भवत्येव'** इस स्थानमें अर्थ होता है,—भावार्थ यह है कि,—जहां अभेद रहेगा वहांपर अभेदका अभाव नहीं रह सकता, इसलिये सरोजत्व व्यापक अत्यन्ताभावका अप्रतियोगी नीलका अभेद हुआ, और उस नीलके अभेदसे युक्त सरोज है ऐसा अर्थ पूर्वोक्त वाक्यका हुआ॥

नन्वेवं—स्यादस्त्येव घट इत्यादावत्यन्तायोगव्यवच्छेदबोधकेनैवकारेण भवितव्यम्, क्रियासङ्गतत्वात्; एवं च विवक्षितार्थासिद्धिः, कस्मिंश्चिद्धटेऽस्तित्वस्याभावेऽपि तादृशप्रयोगसम्भवात्। यथा कस्मिंश्चित्सरोजे नीलत्वस्याभावेऽपि नीलंसरोजं भवत्येवेति प्रयोगः। इति चेन्न,—प्रकृतेऽयोगव्यवच्छेदबोधकस्यैवैवकारस्य स्वीकृतत्वात्, क्रियासङ्गतस्यैवकारस्यापि क्वचिदयोगव्यवच्छेदबोधकत्वदर्शनात्। यथा—ज्ञानमर्थं गृह्णात्येवेत्यादौ ज्ञानत्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वस्यार्थग्राहकत्वे धात्वर्थे बोधः। तत्राप्यत्यन्तायोगव्यवच्छेदबोधस्योपगमे ज्ञानमर्थं गृह्णात्येवेतिवज्ज्ञानं रजतं गृह्णात्येवेति प्रयोगप्रसङ्गः। सकलज्ञानेषु रजतग्राहकत्वस्याभावेऽपि यत्किंचिज्ज्ञाने रजतग्राहकत्वसत्त्वेनैव ज्ञानं रजतं गृह्णात्येवेत्यत्यन्तायोगव्यवच्छेदबोधकैवकारप्रयोगस्य निर्बाधत्वात्। तद्वत्प्रकृते क्रियासङ्गतोऽप्ययोगव्यवच्छेदबोधक एवकारः। स्यादस्त्येव घट इत्यादौ घटत्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वस्यैवकारार्थस्य धात्वर्थेऽस्तित्वेऽन्वयेन घटत्वसमानाधिकरणोऽत्यन्ताभावाप्रतियोग्यस्तित्ववान् घट इति बोधः। घटत्वसमानाधिकरणो योऽत्यन्ताभावः, न तावदस्तित्वात्यन्ताभावः, किन्त्वन्याभावः, तदप्रतियोगित्वस्यास्तित्वे सत्त्वात्॥

कदाचित् ऐसा कहो कि,—ऐसा माननेसे **'स्यादस्ति एव घटः'** कथंचित् घट है इत्यादि उदाहरणमें भी अत्यन्तायोगव्यवच्छेदक ही एवकार होना चाहिये क्योंकि यहाँ भी क्रिया-सङ्गत एवकार है और क्रियामें अन्वित एवकारको अत्यन्तायोगव्यवच्छेदक कह आये हैं, तो इस प्रकार कथन करनेको इष्ट अर्थात् स्वरूपादिसे भी अस्तित्वके सदृश नास्तिरूप अनिष्टकी आवृत्ति अर्थात् अयोगव्यवच्छेदरूप अर्थकी सिद्धि नहीं होगी ? और किसी घटमें अस्तित्वके अभावमें भी इस प्रकारके प्रयोगकी संभावना है। जैसे किसी [2]सरोजमें नीलत्वके अभावमें भी **'नीलं सरोजं भवत्येव'** कमल नील भी होता है, ऐसे ही **'स्यादस्ति एव घटः'** यहां भी उसी अर्थमें एवकार क्यों नहीं ? ऐसा यहाँ नहीं कह सकते। क्योंकि इस प्रचलित स्थल **'स्यादस्ति एव घटः'** में अयोगव्यवच्छेदबोधक ही एवकार स्वीकार किया गया है। कहीं कहीं क्रियाके साथ सङ्गत एवकार भी अयोगव्यवच्छेदबोधक अर्थमें देखा गया है। जैसे **'ज्ञानं अर्थं**

---

१ नील गुणीका अभेद. २ श्वेत कमलमें. ३ ज्ञान.

गृह्णात्येव' ज्ञान किसी न किसी अर्थको ग्रहण करता ही है, इत्यादि उदाहरणमें उद्देश्यतावच्छेदक ज्ञानत्व धर्मके समान अधिकरणमें रहनेवाले अत्यन्ताभावका अप्रतियोगी अर्थग्राहकत्वरूप धात्वर्थका बोध होता है। ज्ञानमें जब अर्थग्राहकता है तब उसमें अर्थग्राहकत्वका अत्यन्ताभाव नहीं रह सकता, इसलिये [1]अर्थग्राहकत्व उस अत्यन्ताभावका अप्रतियोगी हुआ। यदि वहां भी अत्यन्तायोगव्यवच्छेदरूप अर्थका बोधक ही एवकार मानोगे तब 'ज्ञानमर्थं गृह्णाति एव' इसीके सदृश 'ज्ञानं रजतं गृह्णाति एव' ज्ञान चाँदीको ग्रहण करता ही है, ऐसा भी प्रयोग हो जायगा। यद्यपि सब ज्ञानोंमें [2]रजतकी ग्राहकताका अभाव है, क्योंकि सब ज्ञान चाँदीको नहीं ग्रहण करते तथापि कोई एक चांदीको भी ग्रहण [3]करता है, इस हेतुसे 'ज्ञानं रजतं गृह्णाति एव' इस उदाहरणमें अत्यन्तायोगव्यवच्छेदबोधक एवकारके प्रयोगमें कोई बाधा न होगी तो जैसे वहाँ अयोगव्यवच्छेदरूप अर्थका बोधक क्रियासङ्गत भी एवकार है वैसा ही यहाँ भी क्रियामें अन्वित होनेपर भी एवकार अयोगव्यवच्छेदबोधक ही है. 'स्यादस्ति एव घटः' कथंचित् घट है ही है, इत्यादि उदाहरणमें उद्देश्यतावच्छेकद घटत्वरूप धर्मके अधिकरणरूप घटमें रहनेवाले अत्यन्ताभावका अप्रतियोगित्वरूप जो एवकारका अर्थ है उसका अस् धातुके अस्तित्वरूप अर्थ में अन्वय होनेसे घटत्वका जो अधिकरण उसी अधिकरणमें रहनेवाले अत्यन्ताभावका अप्रतियोगी जो अस्तित्व तादृश अस्तित्ववान् अर्थात् अस्तित्वसहित घट ऐसा इस वाक्यका अर्थ हुआ। तात्पर्य्य यह है कि घटमें घटत्व धर्म है और 'अस्ति' इस शब्दसे अस्तिताका विधान भी घटत्व धर्मसे अवच्छिन्न घटको उद्देश्य करके करते हैं, इसलिये उसीमें अस्तित्व भी है, तो अस्तित्व रहते तो अस्तित्वका अत्यन्ताभाव घटमें नहीं कह सकते, किन्तु पटादिका अत्यन्ताभाव घटमें उसका प्रतियोगी पटादि पदार्थ हुवे। अप्रतियोगी अस्तित्व इसलिये उद्देश्यतावच्छेदक घटत्वके समानाधिकरणमें रहनेवाले अत्यन्ताभावका अप्रतियोगी जो अस्तित्व उस अस्तित्वसे युक्त घट ऐसा अर्थ इस 'स्यादस्त्येव घटः' वाक्यका हुआ।

अथ—घटत्वसमानाधिकरणो योऽत्यन्ताभाव इत्युक्तेऽस्तित्वात्यन्ताभावोऽपि भवितुमर्हति, अस्तित्वात्यन्ताभावस्य नास्तित्वस्य घटे सत्त्वात्; तादृशाभावाप्रतियोगित्वं चास्तित्वे बाधितम्, इति निरुक्तवाक्येनास्तित्वाभावस्य नास्तित्वस्य घटे निषेधः प्राप्नोतीति चेत्।—उच्यते, प्रतियोगिव्यधिकरणाभावाप्रतियोगित्वमेवकारार्थः।

तादृशाभावे—उद्देश्यतावच्छेदकसामानाधिकरण्यं चोद्देश्यबोधकपदसमभिव्याहारलभ्यम्। शङ्खः पाण्डुर एवेत्यादौ प्रतियोगिव्यधिकरणाभावाप्रतियोगित्वरूपैवकारार्थैकदेशेऽभावे शङ्खत्वसामानाधिकरण्यस्य शङ्खपदसमभिव्याहारलभ्यत्वात्। एवं च प्रकृतेऽप्येवकारार्थः प्रतियोगिव्यधिकरणाभावाप्रतियोगित्वम्, अभावे घटत्वसामानाधिकरण्यन्तु घटपदसमभिव्याहारलभ्यम्। तथा च घटत्वसमानाधि-

१ अर्थ ग्रहण करानेकी शक्ति. २ चांदी. ३ जानता.

करणः प्रतियोगिव्यधिकरणो योऽभावः, न तावदस्तित्वाभावरूपं नास्तित्वं, तस्य प्रतियोगिनाऽस्तित्वेन समानाधिकरणत्वात् । किन्त्वन्याभावः, तदप्रतियोगित्वं चास्तित्वे निर्बाधमिति ॥

कदाचित् ऐसी शंका करो कि घटत्व समानाधिकरण जो अत्यन्ताभाव अर्थात् जिस अधिकरणमें घटत्व धर्म रहता है उसीमें रहनेवाला जो अत्यन्ताभाव ऐसा कहनेपर अस्तित्वका अभाव भी हो सकता है, क्योंकि अस्तित्वका अत्यन्ताभाव जो नास्तित्व है वह भी परकीय रूपादिसे है । तो उस अस्तित्वके अत्यन्ताभावकी अप्रतियोगिता अस्तित्वमें बाधित है, इस रीतिसे पूर्वोक्त **'स्यादस्त्येव घटः'** वाक्यसे अस्तित्वका अभाव जो नास्तित्व है उससे घटमें निषेध प्राप्त होता है, तो इसका उत्तर देते हैं,—यहांपर अभावका अप्रतियोगी इस पदसे प्रतियोगिव्यधिकरण जो अभाव अर्थात् जिस अधिकरणमें प्रतियोगी है उसीमें उसका अभाव भी हो ऐसा नहीं, किन्तु प्रतियोगीके अधिकरणमें न रहनेवाला जो अभाव उस अभावका अप्रतियोगित्वरूप इस स्थलमें एवकारका अर्थ है । इस प्रकार प्रतियोगिव्यधिकरण अभावमें उद्देश्यतावच्छेदक समानाधिकरणताका लाभ उद्देश्यबोधक घट आदि पदके सन्निधानसे होता है । जैसे **'शङ्खः पाण्डुः एव'** इत्यादि उदाहरणमें प्रतियोगिव्यधिकरण अभावके अप्रतियोगित्वरूप एवकारके अर्थके एकदेशरूप अभावमें शंखत्व समानाधिकरणताका शंख पदके सन्निधानसे लाभ होता है । ऐसा स्वीकार करनेसे प्रकृतस्थल **'स्यादस्त्येव घटः'** में भी एवकारका अर्थ प्रतियोगी व्यधिकरण अभावका अप्रतियोगित्वरूप है । इस [1]प्रतियोगी व्यधिकरण अभावमें घटत्व [2]समानाधिकरणताका लाभ तो घट पदके [3]सन्निधानसे होता है तो इस रीतिसे घटत्व समानाधिकरण[4] तथा प्रतियोगी [5]व्यधिकरण जो अभाव है वह अस्तित्वका अभाव नास्तित्व नहीं हो सकता है, क्योंकि उसी अस्तित्वके अभावका प्रतियोगी अस्तित्व भी घटरूप अधिकरणमें है किन्तु अस्तित्वके अभावसे अन्य पटत्व आदिका अभाव रह सकता है, उसके अभावके प्रतियोगी पटत्व आदि होंगे और अप्रतियोगित्व अस्तित्वमें बिना किसी बाधाके सिद्ध है उस अस्तित्वसहित घट यह अर्थ सिद्ध होगया ।

अत्र प्रतियोगिवैयधिकरण्याप्रवेशे पूर्वोक्तरीत्या सर्वप्रकारेणाप्यस्तित्वप्रसक्त्या नास्तित्वनिषेधे प्राप्तेऽस्तित्वैकान्त्यनिवृत्तिपूर्वकमनैकान्त्यद्योतनाय स्यात्कारः । स्यात्कारप्रयोगाधीनमेवैवकारार्थे प्रतियोगिवैयधिकरण्यं पूर्वं प्रवेशितम् ।

इस पूर्वोक्त उदाहरणमें प्रतियोगिव्यधिकरण ऐसा प्रवेश न करनेपर पूर्व कथित रीतिसे सर्व प्रकारसे अस्तित्वके प्रसंगसे नास्तित्वका निषेध प्राप्त होनेपर अस्तित्वकी

---

१ जिसमें उसका प्रतियोगी है उस अधिकरणमें न रहनेवाले. २ जहां घटत्व रहता है उसी अधिकरणमें स्थिति. ३ समीपता. ४ जिस अधिकरणमें घटत्व है उसीमें रहनेवाला. ५ अपने प्रतियोगीके अधिकरणमें न रहनेवाला.

सर्वथा निवृत्ति न करके अनेकान्त पक्षके सूचनार्थ **'स्यात् अस्ति एव घटः'** यहांपर स्यात्कारका प्रयोग किया है। क्योंकि स्यात्कारके ही आधीन एवकारके अर्थके एक देश अभावमें प्रतियोगिवैयधिकरण्य यह पद [1]पूर्वनिविष्ट किया गया है।

स्याच्छब्दस्य चानेकान्तविधिविचारादिषु बहुष्वर्थेषु सम्भवत्सु इह विवक्षावशादनेकान्तार्थो गृह्यते। अनेकान्तत्वं नामानेकधर्मात्मकत्वम्। अन्तशब्दस्य घटादावभेदेनान्वयः। तथा चानेकधर्मात्मको घटस्तादृ-शास्तित्ववानितिबोधः।

यद्यपि अनेकान्त विधि, विचार आदि अनेक अर्थ स्यात्कारके संभव हैं तथापि यहां वक्ताकी विशेष इच्छासे अनेकान्तार्थका वाचक ही स्यात्कार शब्दका ग्रहण है। अनेकान्त इस शब्दका अर्थ अनेक धर्मस्वरूप है और अनेकान्तमें जो अन्त शब्द है उसका घट आदि शब्दमें अभेद सम्बन्धसे अन्वय होता है तो अनेक धर्मात्मक घट अथवा अनेक धर्मस्वरूप अस्तित्ववान घट ऐसा अर्थ **'स्यादस्त्येव घटः'** इस वाक्यका होता है।

न च—स्याच्छब्देनैवानेकान्तस्य बोधनेऽस्त्यादिवचनमनर्थकमिति वाच्यम्। स्याच्छब्देन सामान्यतोऽ-नेकान्तबोधनेऽपि विशेषरूपेण बोधनायास्त्यादिशब्दप्रयोगात्।

स्यात् शब्दसे ही जब अनेक धर्मस्वरूप घट ऐसा बोध होगया तब अस्तित्व आदिका कथन व्यर्थ है। ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि स्यात् शब्दसे सामान्यरूपसे अनेकान्त पक्षका बोध होनेपरभी विशेष रूपसे बोध करानेकेलिये अस्तित्व आदि शब्दोंका प्रयोग आवश्यक है।

तदुक्तम्—ऐसा कहा भी है—

"स्याच्छब्दादप्यनेकान्तसामान्यस्यावबोधने।
शब्दान्तरप्रयोगोऽत्र विशेषप्रतिपत्तये॥" इति॥

"[2]सामान्यरूपसे स्यात् शब्दसे अनेकान्तरूप अर्थका बोध होनेपर भी विशेषरूपसे अर्थका बोध करानेकेलिये वाक्यमें अस्तित्व आदि अन्य शब्दोंका प्रयोग करना आवश्यक है"।

यथा—वृक्षो न्यग्रोधः, इति वृक्षत्वेन रूपेण न्यग्रोधस्य बोधनेऽपि न्यग्रोधत्वेन रूपेण न्यग्रोधबोधनाय न्यग्रोधपदप्रयोगः। स्याच्छब्दस्य द्योतकत्वपक्षे तु न्यायप्राप्त एवास्त्यादिप्रयोगः। अस्त्यादिशब्देनोक्तस्याने-कान्तस्य स्याच्छब्देन द्योतनात्। स्याच्छब्दाप्रयोगे सर्वथैकान्तव्यवच्छेदेनानेकान्तप्रतिपत्तेरसम्भवात्, एवकारा-वचने विवक्षितार्थाप्रतिपत्तिवत्।

जैसे **'वृक्षो न्यग्रोधः'** वृक्ष वट इस उदाहरणमें वृक्षत्व इस सामान्यरूपसे वटका बोध होनेपर भी न्यग्रोधका[3] इस विशेषरूपसे [4]न्यग्रोधका बोध करानेके लिये न्यग्रोध इस शब्दका प्रयोग किया गया है। और स्यात् शब्दके द्योतकत्वपक्षमें तो अस्ति आदि शब्दोंका प्रयोग करना वाक्यमें न्यायसे प्राप्त है, क्योंकि अस्ति आदि शब्दोंसे

---

१ संयुक्त. २ साधारण. ३ वटत्व. ४ वट.

कथित अनेकान्तरूप अर्थ स्यात् शब्दसे द्योतित[1] होता है और द्योतकत्व तथा वाचकत्व दोनों पक्ष अव्यय निपातोंका शास्त्रसंमत ही है। स्यात् शब्दका प्रयोग न करनेपर सर्वथा एकान्त पक्षकी व्यावृत्तिपूर्वक अनेकान्तरूप अर्थका ज्ञान ऐसे असंभव है जैसे एवकार प्रयोगके बिना विवक्षित[2] अर्थका निश्चयपूर्वक ज्ञान।

नन्वप्रयुक्तोऽपि स्याच्छब्दो वस्तुनोऽनेकान्तस्वरूपत्वसामर्थ्यात्प्रतीयते, सर्वत्रैवकारवद् इति चेत्सत्यं; प्रतिपाद्यानां स्याद्वादन्यायकौशलाभावे वस्तुसामर्थ्यात्तदप्रतीत्या तेषां प्रतिपत्त्यर्थं तदावश्यकत्वात्। प्रतिपाद्यानां स्याद्वादकौशले च स्यात्कारप्रयोग इष्ट एव। प्रमाणादिनाऽनेकान्तात्मके समस्तवस्तुनि सिद्धे कुशलानामस्ति घट इति प्रयोगेऽपि स्यादस्त्येव घट इति प्रतिपत्तिसम्भवात्।

कदाचित् ऐसी शङ्का करो कि सब स्थानमें एवकार शब्दके प्रयोगके बिना भी जैसे [3]अवधारणरूप अर्थका बोधक एव शब्दका बोध शब्दकी शक्तिसे हो जाता है ऐसे ही वाक्यमें अप्रयुक्त अर्थात् प्रयोग न किया हुआ भी **'स्यात्'** शब्द वस्तुकी अनेकान्त रूप अर्थबोध करानेकी शक्ति होनेसे अनेकान्तरूप अर्थबोधक स्वयं भासेगा। यह शङ्का सत्य है, परन्तु जिन-मतके जीवनरूप स्याद्वादन्यायमें शिष्योंका [4]कौशल न होने पर केवल वस्तुके सामर्थ्यमात्रसे अनेकान्तरूप अर्थका भान न होगा। इसलिये उन अप्रौढ शिष्योंको अनेकान्तरूप अर्थका बोध करानेकेलिये वाक्य में स्यात् शब्दका प्रयोग आवश्यक है। और शिष्योंकी स्याद्वादमें पूर्ण रूपसे कुशलता होनेपर तो स्यात् शब्दका प्रयोग करना इष्ट ही है। क्योंकि जब प्रमाण आदिसे सम्पूर्ण वस्तुमें अनेकान्त स्वरूपता सिद्ध है तब स्याद्वादमें कुशल मनुष्यको **'अस्ति घटः'** घट है ऐसा प्रयोग करनेपर भी **'स्यादस्ति एव घटः'** कथंचित घट है, इस अर्थका बोध होना सम्भव है।

तदुक्तम्—सो अन्यत्र भी कहा है—

"सोऽप्रयुक्तोऽपि वा तज्ज्ञैस्सर्वत्रार्थात्प्रतीयते।
यथैवकारोऽयोगादिव्यवच्छेदप्रयोजनः॥" इति॥

"स्याद्वादके जाननेवाले बुद्धिमान् जन यदि अनेकान्तरूप अर्थके प्रकाशक स्यात्का प्रयोग न भी करें तो वह प्रमाणादि सिद्ध अनेकान्त वस्तुके स्वभावसे ही सर्वत्र स्वयं अर्थात् आप ही ऐसे भासता है जैसे विना प्रयोग भी अयोगादिके [5]व्यवच्छेदका बोधक एवकार शब्द"।

ननु योऽस्ति घटादिस्स सर्वोऽपि स्वायत्तद्रव्यक्षेत्रकालभावैः, नेतरैः। तेषामप्रस्तुतत्वादेव निरास-सम्भवात्। तथा च स्यात्कारप्रयोगो व्यर्थ इति चेत्सत्यम्। स तु तादृशोऽर्थश्शब्दात्प्रतीयमानः कीदृशात्प्र-तीयत इति चिन्तायां स्यात्कारः प्रयुज्यते। स च लिङन्तप्रतिरूपको निपातः।

---

१ प्रकाशित. २ कथन करनेको अभीष्ट. ३ निश्चय. ४ प्रवीणता. ५ व्यावृत्ति.

कदाचित् ऐसी शङ्का करो कि जो घट आदि पदार्थ हैं वे सब अपने आधीन द्रव्य क्षेत्र काल तथा भावसे ही हैं न कि अन्यके आधीन द्रव्य क्षेत्र काल तथा भावसे हैं. क्योंकि अन्य द्रव्य क्षेत्रकालादिकी निवृत्ति तो अप्रसङ्ग होनेसे ही सिद्ध है, तब इस दशामें स्यात् शब्दका प्रयोग व्यर्थ ही है। यह कथन सत्य है। परन्तु अपने द्रव्य क्षेत्रादिकी अपेक्षासे कथंचित् इस प्रकार अनेकान्तरूप अर्थ शब्दसे भान होता है सो वह अर्थ किस प्रकारके शब्दसे भान होता है, ऐसा विचार उपस्थित होनेपर स्यात् शब्दका प्रयोग किया जाता है। और वह तिङन्त-प्रतिरूपक अर्थात् सत्ता अर्थमें 'अस्' धातुका लिङ् लकारमें **'स्यात्'** ऐसा रूप होता है, उसीके सदृश निपात है ॥

ननु स्याच्छब्दस्य द्योतकत्वपक्षे केन पुनश्शब्देनोक्तानेकान्तस्स्याच्छब्देन द्योत्यते इति चेत्—

शङ्का-यदि ऐसा कहो कि जब निपातोंका [1]द्योतकत्व पक्ष है तो किस शब्दसे कथित अनेकान्तरूप अर्थ स्यात् शब्दसे द्योतित[2] होता है ? क्योंकि द्योतकका तो यह ही अर्थ है कि किसी शब्दसे कथित अर्थको स्पष्ट रीतिसे प्रकाशित कर देना, तो किस शब्दसे कशित अर्थको स्यात् प्रकाशित करता है ? तो इसका उत्तर कहते हैं:—

अस्त्येव घट इत्यादिवाक्येनाभेदवृत्त्याऽभेदोपचारेण वा प्रतिपादितोऽनेकान्तस्स्याच्छब्देन द्योत्यत इति ब्रूमः। सकलादेशो हि यौगपद्येनाशेषधर्मात्मकं घटादिरूपमर्थं कालादिभिरभेदवृत्त्याऽभेदोपचारेण वा प्रतिपादयति, सकलादेशस्य प्रमाणरूपत्वात्। विकलादेशस्तु क्रमेण भेदप्राधान्येन भेदोपचारेण वा सुनयैकान्तात्मकं घटादिरूपमर्थं प्रतिपादयति। विकलादेशस्य नयस्वरूपत्वात्।

'अस्ति एव घटः' अपने द्रव्य क्षेत्र आदिकी विवक्षासे घट है ही है, इत्यादि वाक्यसे द्रव्यत्व अर्थके आश्रयसे अभेदवृत्तिसे और पर्याय अर्थके आश्रय से अभेदके उपचारसे कथित जो अनेकान्तरूप अर्थ है वही स्यात् शब्दसे द्योतित[3] होता है क्योंकि द्रव्यरूपसे घटकी सब दशामें अभेदवृत्ति है और पर्य्यायोंका [4]परस्पर भेद होनेपर भी द्रव्यत्वरूपसे एकत्व होनेसे अभेदका उपचार है। इससे **'अस्ति एव घटः'** इस वाक्यसे ही अनेकान्त[5] अर्थ कथित है, उसी अर्थको स्यात् शब्द प्रकाशित करता है। सकलादेश अर्थात् प्रमाणरूप सप्तभङ्गी काल आत्मस्वरूपादिद्वारा द्रव्यत्वरूप अर्थसे अभेदवृत्तिसे और पर्यायत्वरूप अर्थसे एकत्वके अध्यारोपसे अभेदके उपचार एक कालमें ही सत्व असत्वादि सम्पूर्ण धर्म्मस्वरूप घट आदि पदार्थोंको प्रतिपादन करता है क्योंकि सकलादेश प्रमाणरूप है इस विषयको प्रथमे सिद्ध कर चुके हैं। और विकलादेश अर्थात् नयरूप सप्तभङ्गी तो क्रमसे भेदकी प्रधानतासे अथवा भेदके उपचारसे नयसे एकान्तरूप घट पट आदि पदार्थोंको प्रतिपादन[6] करता है और विकलादेश नयरूप है, यह वार्ता भी प्रथम सिद्ध हो चुकी है।

---

१ किसी शब्दसे कथित अर्थका प्रकाशत्व. २ प्रकाशित. ३ प्रकाशित. ४ आपसमें घट आदिका. ५ अनेक धर्मस्वरूप. ६ कथन.

कः पुनः क्रम ? किं वा यौगपद्यम् ? इति चेदुच्यते । यदा तावदस्तित्वादिधर्माणां कालादिभिर्भेदविवक्षा, तदाऽस्त्यादिरूपैकशब्दस्य नास्तित्वाद्यनेकधर्मबोधने शक्त्यभावात्क्रमः । यदा तु तेषामेव धर्माणां कालादिभिरभेदेन वृत्तमात्मरूपमुच्यते, तदैकेनाप्यस्त्यादिशब्देनास्तित्वादिरूपैकधर्मबोधनमुखेन तदात्मकतामापन्नस्य सकलधर्मस्वरूपस्य प्रतिपादनसम्भवाद्यौगपद्यम् ॥

पूर्व प्रसङ्गमें क्रम तथा [1]यौगपद्यकी चर्चा कर आये हैं, उनमें क्रम क्या पदार्थ है, और यौगपद्य भी क्या वस्तु है ? ऐसा प्रश्न करो तो उसका उत्तर कहते हैं—जब अस्तित्व तथा नास्तित्व आदि धर्मोंकी देश काल आदिसे भेदसे कथनकी इच्छा है तब अस्तित्व आदिरूप एक ही शब्दकी नास्तित्व आदिरूप अनेक धर्मोंके बोधन करनेमें शक्ति न होनेसे नियत पूर्वापर भाव वा अनुक्रमसे जो निरूपण है उसको **'क्रम'** कहते हैं। और जब उन्हीं अस्तित्व आदि धर्मोंकी काल आदि द्वारा अभेदसे [2]वृत्ति कही जाती है तब एक अस्तित्व आदि शब्दसे भी अस्तित्व आदिरूप एक धर्मके बोधनके [3]उपलक्षणसे उस वस्तुरूपताको प्राप्त जितने धर्म हैं उनका प्रतिपादन एक समयमें सम्भव है। इस प्रकारसे जो वस्तुके स्वरूपका निरूपण है उसको [4]यौगपद्य कहते हैं।

के पुनः कलादयः ? इति चेदुच्यते । कालः, आत्मरूपम्, अर्थः, सम्बन्धः, उपकारः, गुणिदेशः, संसर्गः, शब्दः, इति । तत्र स्याद्स्त्येव घट इत्यत्र यादृशकालावच्छेदेन घटादावस्तित्वं वर्तते—तत्कालावच्छेदेन शेषानन्तधर्मा अपि घटे वर्तन्त इति तेषामेककालावच्छिन्नैकाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वं कालेनाभेदवृत्तिः । यदेवास्तित्वस्य घटगुणत्वं स्वरूपं—तदेवान्यानन्तगुणानामपि स्वरूपमित्येकस्वरूपत्वमात्मरूपेणाभेदवृत्तिः । य एव घटद्रव्यरूपोऽर्थोऽस्तित्वस्याधारस्स एवान्यधर्माणामप्याधार इत्येकाधारवृत्तित्वमर्थेनाभेदवृत्तिः । य एव चाविष्वग्भावः कथंचित्तादात्म्यलक्षणोऽस्तित्वस्य सम्बन्धस्स एवानन्तधर्माणामपीत्येकसम्बन्धप्रतियोगित्वं सम्बन्धेनाभेदवृत्तिः । य एव चोपकारोऽस्तित्वस्य स्वानुरक्तत्वकरणम् तच्च स्ववैशिष्टयसम्पादनं, यथा,—नीलरक्तादिगुणानां नीलरक्ताद्युपरञ्जनं नीलरक्तत्वादिगुणवैशिष्टयसम्पादनमेव, तदापि स्वप्नकारकधर्मिविशेष्यकज्ञानजनकत्वपर्यवसन्नम्, अस्तित्वस्य स्वानुरक्तत्वकरणं हि अस्तित्वप्रकारकघटविशेष्यकज्ञानजनकत्वम्, तादृशोपकार एव नास्तित्वादिभिरशेषधर्मैः क्रियत इत्येककार्यजनकत्वमुपकारेणाभेदवृत्तिः । यद्देशावच्छेदेन घटादावस्तित्वं वर्तते—तद्देशावच्छेदेनैव घटे नास्तित्वादिधर्माः, न तु कण्ठावच्छेदेनास्तित्वं पृष्ठावच्छेदेन नास्तित्वमिति देशभेदः, इत्येकदेशावच्छिन्नवृत्तित्वं गुणिदेशेनाभेदवृत्तिः । य एव चैकवस्त्वात्मनास्तित्वस्य संसर्गस्स एवापरधर्माणामपीत्येकसंसर्गप्रतियोगित्वं संसर्गेणाभेदवृत्तिः ॥

ननु—सम्बन्धसंसर्गयोः को विशेषः ? इति चेदुच्यते । कथंचित्तादात्म्यलक्षणे सम्बन्धेऽभेदप्रधानः भेदो गौणः, संसर्गे तु भेदः प्रधानभेदो गौणः, इति विशेषः । कथंचित्तादात्म्यं हि कथंचिद्भेदाभेदोभयरूपम् । तत्र भेदविशिष्टाभेदस्सम्बन्ध इत्युच्यते । अभेदविशि-

---

१ एक कालमें. २ वस्तुस्वरूपकी स्थिति. ३ मिष. ४ एक कालीनत्व वा समान कालिकता.

ष्टभेदश्च संसर्ग इत्युच्यते । य एवास्तीति शब्दोऽस्तित्वधर्मात्मकस्य वस्तुनो वाचकस्य एवाशेषानन्तधर्मात्मकस्यापि वस्तुनो वाचक इत्येकशब्दवाच्यत्वं शब्देनाभेदवृत्तिः । एवं कालादिभिरष्टविधाऽभेदवृत्तिः पर्यायार्थिकनयस्य गुणभावे द्रव्यार्थिकनयप्राधान्यादुपपद्यते ।

काल आदि कौन हैं ? यदि ऐसा प्रश्न किया जाय तो इसका उत्तर कहते हैं—काल १ आत्मरूप अर्थात् जिस स्वरूपसे वस्तुमें धर्म रहे वह स्वरूप २ अर्थ (घट आदि पदार्थ) ३ सम्बन्ध (अभेदकी प्रधानता जनानेवाला सम्बन्ध) ४ उपकार ५ गुणिदेश (पदार्थके जिस देशमें धर्म रहे वह देश) ६ संसर्ग (प्रधानतासे भेदको जनानेवाला सम्बन्ध) ७ शब्द (वस्तुका वाचक शब्द) ८ इन आठ प्रकारसे धर्मोंकी अभेदरूपसे स्थिति रहती है ॥ उनमेंसे **'स्यादस्ति एव घटः'** किसी अपेक्षासे घट है । यहाँपर जिस कालमें घट आदि पदार्थमें अस्तित्व धर्म है, उसी कालमें घटमें रहनेवाले नास्तित्व तथा अवक्तव्यत्व आदि सम्पूर्ण धर्म भी रहते हैं । इस रीतिसे उन सब अस्तित्व आदि धर्मोंकी एक घटरूप अधिकरणमें स्थिति कालद्वारा अभेदसे है । अर्थात् कालिक सम्बन्धसे सब धर्म अभिन्न हैं क्योंकि समान कालमें ही सब धर्म विद्यमान है १ तथा जिस प्रकार अस्तित्वका स्वरूप घटका [1]गुणत्व है ऐसे ही वही गुणत्वरूप अन्य अन्य अनन्त धर्मोका भी स्वरूप है । इस प्रकार एक घटरूप अधिकरणमें [2]आत्मस्वरूपसे सब धर्म रहते हैं । यह आत्मस्वरूपसे सब धर्मोंकी अभेदसे [3]वृत्ति हुई । २ जो घटरूप द्रव्य पदार्थ अस्तित्व धर्मका आधार है वही घट द्रव्य अन्य धर्मोका भी आधार है । इस प्रकार एक आधारमें [4]वृत्तिता अर्थसे अभेदवृत्ति है । ३ जो सर्वथा वा एकान्तरूपसे नहीं । किन्तु कथंचित् अभेदरूप अस्तित्वका सम्बन्ध घटके साथ है वही कथंचित् सम्बन्धरूपता अन्य सब धर्मोंकी भी घटके साथ है । यह एक सम्बन्ध [5]प्रतियोगितारूप सम्बन्धसे अभेदवृत्ति सब धर्मोंकी है । ४ तथा जो [6]स्वानुरक्तत्वकरण अर्थात् अपने स्वरूपसहित होता तन्मयताका सम्पादन करनारूप उपकार अस्तित्वका घटके साथ है, वही अपना वैशिष्ट्यसम्पादन एक कार्यजनकतारूप उपकार अन्य धर्मोका भी है और स्वानुरक्तत्वकरण अपने स्वरूपका वस्तुमें साहित्य सम्पादन करता है । जैसे नील रक्त आदि गुणोंका वस्तुमें नीलत्व रक्तत्व आदि धर्मसे अपने स्वरूपका उपराग करते हैं, वह उनका उपराग जिस वस्तुको नीलत्व तथा रक्तत्व आदि गुणोंसे युक्त करता है वह भी धर्म प्रकारक तथा वस्तुरूप जो धर्मी तद्विशेष्यक ज्ञानजनकतासे तात्पर्य्य रखता है, अर्थात् अस्तित्व आदि धर्म जिसमें विशेषण हों और जिसमें धर्म रहे वह वस्तु जिसमें विशेष्य हो ऐसा

---

१ घटका गुण होना जैसें अस्तित्व अपने गुणपनेसे है ऐसे ही अन्य धर्म भी हैं. २ निजस्वरूप जिस स्वरूपसे धर्म वस्तुमें रहते हैं वही उनका निजका आत्मरूप है. ३ स्थिति वा रहना. ४ एक ही पदार्थमें सब धर्मोंकी स्थिति. ५ एक सम्बन्ध प्रतियोगी अर्थात् विशेषण होके रहना. ६ अपने स्वरूपसहित अथवा अपने स्वरूपमय वस्तुको करना ।

जो ज्ञान उस ज्ञानको उत्पन्न करनेरूप उपकार अस्तित्व आदि धर्म घट आदि वस्तुका करते हैं। 'घटः स्यादस्ति एव' यहांपर अस्तित्वका [1]स्वानुरक्तत्वकरणरूप उपकार क्या है कि अस्तित्व धर्म जिसमें विशेषण है और घट जिसमें विशेष्य है इस प्रकारके ज्ञानका जनक होना अर्थात् ऐसा ज्ञान उत्पन्न कर देना है ऐसा जिसमें ज्ञान धर्म विशेषण हो और धर्मी (वस्तु) विशेष्य हो उस ज्ञानको उत्पन्न करनेरूप वस्तुका उपकार नास्तित्व आदि सम्पूर्ण अन्य धर्म भी करते हैं तो इस रीतिसे एक [2]कार्यजनकतारूप उपकारसे भी सब धर्मोंकी अभेदसे वस्तुमें स्थिति हुई। ५ तथा घट आदि पदार्थके जिस देशमें अपनी अपेक्षासे अस्तित्वधर्म है घटके उसी देशमें अन्यकी अपेक्षासे नास्तित्व आदि सम्पूर्ण धर्म भी हैं, क्योंकि घटके कण्ठदेशमें अस्तिता धर्म है और उसके पृष्ठदेश (भाग) में नास्तिता है ऐसा व्यवहार अथवा अनुभव नहीं है इस लिये देश-भेद नहीं है। इस प्रकारसे [3]गुणोके एक [4]देशवृत्तितारूप [5]गुणीके देशरूप अभेद सब धर्मोंकी स्थिति है। ६ तथा जिस प्रकार एक वस्तुत्वस्वरूपसे अस्तित्वका घटमें [6]संसर्ग है ऐसे ही एक वस्तुत्वरूपसे अन्य सब धर्मोंका भी संसर्ग है; इस रीतिसे एक संसर्ग [7]प्रतियोगितारूप संसर्गसे अभेदवृत्ति सब धर्मोंकी घट आदि वस्तुमें है। ७कदाचित् यह शङ्का करो कि सम्बन्ध तथा संसर्गमें क्या भेद है ? तो इसका उत्तर कहते हैं—किसी अपेक्षासे [8]तादात्म्यरूप सम्बन्धमें तो अभेद प्रधानतासे रहता है और भेद [9]गौणतासे और संसर्गमें तो भेद प्रधानतासे रहता है और अभेद गौणतासे रहता है, यही [10]विशेष सम्बन्ध तथा संसर्गमें है। और सम्बन्धके विषयमें जो कथंचित् तादात्म्यरूपता कहा है वह तादात्म्य कथंचित् भेद अभेद [11]उभयरूप है। उनमेंसे भेदसहित अभेदको सम्बन्ध कहते हैं। यहांपर भेदसहित अभेद कहनेसे ही सम्बन्धमें भेद विशेषण होनेसे गौण है और अभेद मुख्य है, यह तात्पर्य्य सिद्ध होगया । तथा अभेदसहित भेदको संसर्ग कहते

यहांपर स्वपदसे अस्तित्व आदि धर्मका ग्रहण है, घटके अनन्तर अस्ति आदि पद लगानेसे वह ऐसा ज्ञान कराते हैं कि हम (धर्म) विशेषण हैं और जिस वस्तुमें धर्म है, वह विशेष्य है जैसे रक्त कमल ऐसा कहनेसे रक्तत्व धर्म अपने सहित कमलको सिद्ध करता है ऐसे ही अस्तित्व आदि धर्मभी अपने सहित घट आदि पदार्थको सिद्ध करते हैं और उसमें वे धर्म विशेषण तथा जिसमें धर्म हैं वह विशेष्य ऐसा ज्ञान उत्पन्न करादेना यही धर्मोका वस्तुके साथ उपकार है और इसी अपने सहित विशेषणविशेष्यभावका ज्ञान करादेना एक कार्यजनकतारूप उपकारमें सबकी अभेदसे वस्तुमें स्थिति है. २ विशेष्यविशेषणभावसे स्थितिका ज्ञान उत्पन्न करादेना. ३ जिसमें अस्तित्व आदि धर्म वा गुण रहें वह वस्तु. ४ रहना वा स्थिति. ५ जिस भागमें अस्तिता आदि धर्म रहते हैं वह गुणी अथवा धर्मीका भाग वा देश. ६ भेदकी प्रधानताका सूचक सम्बन्ध. ७ संसर्गका विशेषण होकर वस्तुमें रहना. ८ जिसके साथ वक्तव्य है उस वस्तुके साथ आत्मरूपता अर्थात् भेदका अभाव जो कथंचित् अभेदस्वरूप है. ९ सम्बन्धमें भेदकी अप्रधानता. १० परस्पर एक दूसरेसे विलक्षणता अथवा भेद. ११ किसी अपेक्षासे भेद और किसी अपेक्षासे अभेद यह दोनोंरूप.

है। यहाँपर भी अभेदसहित भेद इस कथनसे ही संसारमें अभेद गौण और भेद मुख्य है यह तात्पर्य सिद्ध होगया। तथा जो अस्ति शब्द अस्तित्वधर्मस्वरूप घट आदि वस्तुका भी [1]वाचक है। इस प्रकार एक शब्द [2]वाच्यत्वरूपसे शब्दसे सब धर्मोंकी घट आदि पदार्थमें अभेदवृत्ति है। ८ इस पूर्वकथित रीतिसे [3]पर्य्यायार्थिक नयके गौण होनेपर [4]द्रव्यार्थिक नयकी प्रधानतासे काल आत्मस्वरूप तथा अर्थ आदि आठ प्रकारसे घट आदि पदार्थमें सब धर्मोंकी अभेदसे स्थिति रहती है।

द्रव्यार्थिकगुणाभावे पर्यायार्थिकप्राधान्ये तु नेयं गुणानामभेदवृत्तिस्सम्भति। तथा हि–तत्र कालेन तावदभेदवृत्तिर्न सम्भवति, समकालमेकत्र नानागुणानां परस्परविरुद्धानामसम्भवात्; प्रतिक्षणं वस्तुनो भेदात्। सम्भवे वा तावदाश्रयस्य तावत्प्रकारेण भेदप्रसङ्गात्॥ नाप्यात्मरूपेणाभेदवृत्तिस्सम्भवति नानागुणानां स्वरूपस्य भिन्नत्वात्; स्वरूपाभेदे तेषां परस्परभेदस्य विरोधात्॥ नाप्यर्थेनाभेदवृत्तिः, स्वाश्रयार्थस्यापि नानात्वात्, अन्यथा नानागुणाश्रयस्यैकत्वविरोधात्॥ नापि सम्बन्धेनाभेदवृत्तिः, सम्बन्धस्यापि सम्बन्धिभेदेन भेददर्शनात्; यथा दण्डदेवदत्तसम्बन्धादन्यदछत्रदेवदत्तसम्बन्धः॥ नाप्युपकारेणाभेदः, अनेकगुणैः क्रियमाणस्य चोपकारस्य प्रतिनियतरूपस्यानेकत्वात्, अनेकैरुपकारिभिः क्रियमाणस्योपकारस्यैकत्वविरोधात्॥ नापि गुणिदेशाभेदः, गुणिदेशस्यापि प्रतिगुणं भेदात्, तदभेदे भिन्नार्थगुणानामपि गुणिदेशाभेदप्रसङ्गात्॥ नापि संसर्गेणाभेदः, संसर्गस्यापि संसर्गिभेदेन भेदात्, तदभेदे संसर्गिभेदविरोधात्॥ नापि शब्देनाभेदः, शब्दस्यार्थभेदेन भिन्नत्वात्, सर्वगुणानामेकशब्दवाच्यतायां सर्वार्थानामेकशब्दवाच्यतापत्त्या शब्दान्तरवैफल्यापत्तेः॥ एव तत्त्वतोऽस्तित्वादीनामेकत्रवस्तुन्यभेदवृत्तेरसम्भवे कालादिभिर्भिन्नानामपि गुणानामभेदोपचारः क्रियते।

और द्रव्यार्थिक नयकी गौणता तथा पर्यायार्थिक नयकी प्रधानतामें तो पदार्थमें धर्मोंकी काल आदि द्वारा अभेदरूपसे स्थितिका सम्भव नहीं है॥ इसी असम्भवताको दर्शाते हैं। जैसे—पर्यायार्थिकनयकी विवक्षासे उन आठों प्रकारोंमेंसे प्रथमकाल अभेदसे धर्मोंकी स्थिति वस्तुमें सम्भव नहीं होती, क्योंकि परस्परविरुद्ध नानागुण पर्यायोंका एक ही कालमें होना असम्भव है और प्रतिक्षणमें वस्तुके परिणाम वा दशाके [5]परिवर्तनसे वस्तुके भेद होनेसे भी अभेदवृत्तिका असम्भव दृढ़ है। और एक कालमें गुणोंका सम्भव माननेसे भी उन गुणोंके [6]आश्रय होनेसे जितने गुणोंका वह द्रव्य आश्रय होगा उतनेही प्रकारके भेद उस द्रव्य या पदार्थके हो जायेंगे, क्योंकि गुण वा धर्मके भेदसे [7]गुणी

---

१ कहनेवाला वा प्रतिपादक शब्द तथा अर्थमें वाच्यवाचकभाव सम्बन्ध रहता है, उसमें अर्थ वाच्य और शब्द वाचक होता है. २ जो कहा जाय. ३ मृतिका आदि द्रव्यमें पिंड कपाल घट आदि पर्य्याय (दशा) मात्रसे प्रयोजन रखनेवाला. ४ पर्यायकी अपेक्षा न करके केवल मृत्तिका वा जीव आदि द्रव्यसे प्रयोजन रखनेवाला. ५ वस्तुके स्वरूपका बदलना, प्रतिक्षणमें सूक्ष्मरूपसे पदार्थ बदलता है इससे वह किसी प्रकारसे भिन्न माना जाता है. ६ आधार जिसमें गुण वा धर्म रहते हैं. ७ गुणका आधार पदार्थ.

वा [1]धर्म्मीके भी भेद माने जाते हैं, इसी रीतिसे [2]आत्मरूप अर्थात् धर्मके स्वरूपसे भी धर्मोंकी पदार्थमें अभेदवृत्ति नहीं है, क्योंकि पर्यायार्थिक नयकी प्रधानतामें नाना प्रकारके गुणोंके स्वरूप भिन्न २ हैं। और [3]गुणत्व अथवा [4]धर्मत्व स्वरूपका अभेद माननेपर भी अस्तित्व- नास्तित्व आदि धर्मोंका परस्पर भेद होनेसे विरोध स्पष्ट ही है। ऐसे ही [5]अर्थरूपसे भी धर्मोंकी वा गुणोंकी अभेदवृत्ति नहीं है। क्योंकि परस्पर भिन्न नाना नाना प्रकारके गुणोके आश्रय पदार्थ भी नाना प्रकारके भेदसहित हो जाते हैं, गुणोंके भेदसे गुणोका भी भेद युक्तिसिद्ध हीं है, यदि ऐसा न माना जाय तो नाना प्रकारके गुणोंके आश्रयमें द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे जो एकत्व माना जाता है उसका विरोध होगा, क्योंकि गुणोंके भेदसे भी यदि पदार्थमें अभेद है तो अन्य प्रकारसे एकत्व माननेकी क्या आवश्यकता है ? इस प्रकार सम्बन्धसे भी अभेदवृत्ति नहीं है, क्योंकि [6]सम्बन्धीके भेदसे सम्बन्धका भी भेद देखा जाता है, जैसे दण्ड तथा देवदत्तके संयोग सम्बन्धसे छाता तथा देवदत्तका संयोग सम्बन्ध भिन्न है। ऐसे ही उपकाररूपसे भी अभेदवृत्ति वस्तुमें गुणोंकी नहीं है, क्योंकि अनेक गुणोंसे किये हुये वा क्रियमाण अपने २ नियतरूप सहित उपकार भी अनेक हैं। और यदि उपकारोंकी अनेकता न मानी जाय तो अनेक [7]उपकारियोंसे जो उपकार किया जाता है उसमें जो एकत्व माना गया है, उसका विरोध आवेगा। तथा गुणीके देशसे भी गुणोंकी वस्तुमें अभेदवृत्ति नहीं है, क्योंकि प्रत्येक गुणकी अपेक्षासे गुणोके देशका भी भेद माना गया है, और यदि प्रत्येक गुणके भेदसे गुणीके देशका अभेद मानो तो भिन्न [8]पदार्थके जो गुण हैं उनके गुणीके देशका भी [9]अभेदप्रसङ्ग हो जायगा। इसी प्रकारसे पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे संसर्गसे भी गुणोंकी अभेदवृत्ति नहीं है, क्योंकि प्रतिपर्याय संसर्गीके भेदसे संसर्गका भी भेद है, और यदि संसर्गका भेद न माना जाय तो प्रत्येक पर्यायमें जो संसर्गीका भेद अनुभव-सिद्ध ज्ञात होता है उसका विरोध आवेगा। इसी रीतिसे शब्दसे भी अभेदवृत्ति नहीं हैं। क्योंकि [10]अर्थके भेद होनेसे [11]शब्दका भी भेद अनुभवसिद्ध है। और यदि अस्तित्व नास्तित्व आदि सब गुणोंको एकशब्दवाच्यता मानोगे तो सब अर्थोंकी भी एक शब्दवाच्यता ही जाननेसे अन्य भिन्न २ जो शब्दों के प्रयोग किये जाते हैं वे सब व्यर्थ हो जाएंगे, क्योंकि जब एक ही शब्द सब अर्थोंको कह सकता है तब अन्य

---

१ धर्मका आधारभूत पदार्थ. २ धर्मोंका निजस्वरूप. ३ सब गुणोंमें अनुगतरूपसे रहनेवाला गुणपना. ४ सब धर्मोंमें अनुगत-धर्मपना. ५ सब धर्मोंका आश्रय पदार्थ वा द्रव्य जैसे घट अथवा जीव. ६ जिसमें सम्बन्ध रहता है वह पदार्थ. ७ जिनमें अस्तित्व आदि उपकार हैं वे घट आदि वस्तु. ८ जिस पदार्थका निरूपण विवक्षित है उससे भिन्न, जैसे घटकी अपेक्षा भिन्न जीव. ९ गुणीके देशस्वरूप से भेदाभाव. १० अस्तित्व अर्थसहित घटशब्दसे नास्तित्व अर्थसहित घटशब्द भिन्न है. ११ अर्थके भेदसे शब्द पर्यायकी अपेक्षासे है.

शब्दोंकी क्या आवश्यकता है ? इस रीतिसे पर्यायार्थिक नयकी प्रधानतामें यथार्थमेंही अस्तित्व नास्तित्व आदि अनेक गुणोंकी एक वस्तुमें अभेदसे स्थितिका असम्भव होनेपर काल तथा आत्मरूप आदिसे परस्पर भिन्न भी गुणोंका कथंचित् अभेदका [१]उपचार किया जाता है।

एवं निरूपिताभ्यामभेदवृत्त्यभेदोपचाराभ्यामेकेनास्तिनास्त्यादिशब्देनोपात्तस्याशेषधर्मात्मकस्य घटादि-वस्तुनः स्यात्कारोद्योतकस्समवतिष्ठते । इत्येवं पदार्थो निरूपितः ।

इस प्रकारसे पूर्व कथित द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे अभेदवृत्ति तथा पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे अभेदोपचार, इन दोनोंके द्वारा एक अस्तिसे तथा एक अस्ति आदि शब्दसे कथित जो सम्पूर्ण अस्तित्व नास्तित्व आदि धर्ममय घट आदि वस्तु हैं उनकी अनेकान्तस्व-रूपताद्योतक[२] होकर **'स्यादस्ति घटः'** इत्यादि वाक्यमें स्यात् शब्द स्थित रहता है। इस प्रकार सप्तभङ्गोंके स्यात् तथा अस्ति आदि पक्षका अर्थ निरूपण किया गया।

वाक्यार्थो निरूप्यते । स्यादस्त्येव घटः, स्यान्नास्त्येव घटः, इत्यस्य स्वरूपाद्यवच्छिन्नास्तित्वाश्रयो घटः, पररूपाद्यवच्छिन्ननास्तित्वाश्रयो घटः, इति च बोधः । घटादिरूपे वस्तुनि स्वरूपादिना सत्वम् पररूपादिनाऽसत्वञ्चाङ्गीकरणीयम् । अन्यथा वस्तुत्वस्यैव विलयापत्तेः स्वपररूपोपादानापोहनव्यवस्थाप्यं हि वस्तुनो वस्तुत्वम् ।

अब इसके अनन्तर [३]वाक्यार्थका निरूपण करते हैं। उनमें **स्यादस्त्येव घटः** तथा **स्यान्नास्त्येव घटः,** अपने कम्बुग्रीवादिरूप घटत्वसे [४]अवच्छिन्न जो अस्तित्व धर्म है उसका आश्रय वा आधार घट, यह प्रथम वाक्यका, और परकीय पटत्व आदिरूपसे अवच्छिन्न नास्तित्वका आश्रय घट, यह द्वितीय वाक्यका अर्थ है। भावार्थ यह है कि, घट है ऐसे वाक्यसे जिस प्रकार घटसे [५]कम्बुग्रीव आदि स्वरूपका भान होता है वैसे ही यह पट आदि अन्य-वस्तु नहीं है किन्तु घट है इस रीतिसे अन्यका निषेध भी भासता है; अतएव अन्य पदार्थके रूपादिसे नास्तित्वका आश्रय घट है यह विषय अर्थात् अपने रूपादिसे सत्व और अन्यके रूपादिसे असत्व सूक्ष्मरूपसे अन्तःकरणमें भासता है, उसका अनुसन्धान कुशल बुद्धिवालोंको होता है। क्योंकि घट आदि समस्त वस्तुरूपमें अपने रूप आदिसे सत्व तथा अन्यके रूप आदिसे असत्व भी अवश्य अङ्गीकार करना चाहिये। इसके विरुद्ध अर्थात् सत्व अथवा असत्व इनमेंसे एक ही वस्तुका स्वरूप माननेसे वस्तुका जो वस्तुत्व है उसका [६]विलय हो जायगा। क्योंकि अपने स्वरूपके ग्रहण तथा अन्यके स्वरूपके त्यागसे ही वस्तुके [७]वस्तुत्वका व्यवस्थापन किया जाता है।

---

१ यथार्थमें पर्यायोंका परस्पर भेद रहते भी एक द्रव्य मानकर अभेदका उपचार (उपलक्षण). २ प्रकाशक, निपातोंके द्योतकत्वपक्षमें कृत अर्थका प्रकाश मात्र स्यात् शब्दसे है. ३ पदसमुदायका अर्थ। पदोंके समूहको वाक्य कहते हैं। प्रथम पदोंका अर्थ कहा अब वाक्यका अर्थ कहते हैं. ४ अपने धर्मद्वारा अन्य पदार्थोंसे पृथक् किया हुआ है. ५ शङ्खके आकारके सदृश गलासहित. ६ नाश वा सबकी अभावरूपता. ७ वस्तुमें रहनेवाला उसका यथार्थ स्वरूप.

तत्र घटस्य किं स्वरूपम् ? किंवा पररूपम् ? इति चेत्;–घट इत्यादिबुद्धौ प्रकारतया भासमानो घटपदशक्यतावच्छेदकीभूतसदृशपरिणामलक्षणो यो घटत्वनामको धर्मस्स घटस्य स्वरूपं, पटत्वादिकं पररूपम् । तत्र घटत्वादिरूपेणेव पटत्वादिरूपेणापि घटस्य सत्वे घटस्य पटात्मकत्वप्रसङ्गः, पटत्वादिनेव घटत्वादिनाप्यसत्वे सर्वथा शून्यत्वापत्तिः, शशविषाणवत् ।

अब यहांपर घटका अपना निजस्वरूप क्या है, और परस्वरूप क्या है ? यदि ऐसी शंका करो तो उत्तर यह है–घट, इत्यादि बुद्धिमें विशेषरूपसे भासता हुआ जो घटपदका शक्यतावच्छेदक[1] अर्थात् जो सब घटमें अनुगतरूपसे घटपदकी शक्तिसे कहा जाता है वही घटत्वरूप धर्म घटका स्वरूप है और पटत्व आदिरूप घटके पररूप है यहांपर अपने घटत्वस्वरूपसे जैसे घटका सत्व है ऐसे ही परकीय पटत्वरूपसे भी यदि सत्व ही मानोगे और अन्यरूपसे भी अस्तित्व मानोगे तो घट भी पटस्वरूप हो जायगा । क्योंकि घटका जैसे अपने घटत्वस्वरूपसे सत्व है ऐसे परकीय पटत्वस्वरूपसे सत्व है तो दोनोंके सत्व स्वरूपमें भेद न होनेपर घट पट हो जायगा । और घटका घटसे अन्य पटत्व आदि स्वरूपसे जैसे असत्व मानते हैं ऐसे ही यदि अपने घटत्वस्वरूपसे भी [2]असत्व ही मानो तो शशश्रृङ्गके तुल्य सर्वथा शून्यवादका प्रसङ्ग हो जायगा ।

अथवा–नामस्थापनाद्रव्यभावानां मध्ये यद् विवक्षितन्तत्स्वरूपं, इतरत्पररूपम् । तत्र विवक्षितेन रूपेणास्ति अविवक्षितेन नास्ति । यदि विवक्षितेनापि रूपेण नास्ति, तर्हि शशविषाणवदसत्वमेव घटस्य प्राप्नोति । यदि चाविवक्षितेनापि रूपेणास्ति, तदा नामादीनां परस्परभेदो न स्यात् ।

अथवा [3]नाम [4]स्थापना [5]द्रव्य तथा [6]भाव इन चार निक्षेपोंमेंसे जो [7]विवक्षित है वही घटका स्वरूप है, और उससे भिन्न पररूप है । उसमें विवक्षित रूपसे तो घटका अस्तिस्वरूप है और अविवक्षित रूपसे नास्तिस्वरूप है । क्योंकि यदि विवक्षित स्वरूपसे घटका [8]नास्ति स्वरूप ही माना जाय तो शशश्रृङ्गके तुल्य घटका असत्व ही प्राप्त होता है । और यदि अविवक्षित रूपसे भी [9]अस्ति ही घटका स्वरूप मानों तो नाम स्थापना आदिका परस्पर भेद नहीं होगा, क्योंकि यदि विवक्षित तथा अविवक्षित दोनों रूपसे सत्व ही स्वरूप है तब सत्वरूप जैसे नाममें है वैसे ही स्थापना आदिमें भी है तो परस्पर भेद न रहा ।

---

१ जो पदकी शक्तिसे कहा जाय उसको शक्य कहते हैं और शक्यमें रहनेवाला और अन्यसे उस वस्तुको पृथक्कारक जो धर्म है उसको शक्यतावच्छेदक कहते हैं, जैसे घटका घटत्व. २ सत्ताका अभाव निज तथा अन्यके स्वरूपसे पदार्थका सत्व माननेसे अभाव पदार्थका स्वरूप होगा तो वह खरगोशके सींगके तुल्य असत् ही होजायगा. ३ पदार्थके गुणद्रव्यादि न रखकर लोकव्यवहारके लिये नियुक्त जो संज्ञा है उसको नामनिक्षेप कहते हैं, जैसे नाम जीव वा नाममात्र घट. ४ काष्ठ पाषाण धातु वा चित्रकर्ममें वही यह पुरुष आदि है ऐसा जो स्थापित किया जाता है उसको स्थापनानिक्षेप कहते हैं, जैसे प्रतिमा वा चित्र घट आदि स्थापनाजीव वा स्थापनाघट. ५ वस्तुके गुणोंसे जो युक्त है वा गुणोंके परिणामको प्राप्त है वा होगा. ६ जैसे राजाके पुत्रमें राजा व्यवहार वा पिण्डदशामें घट. ७ कथन करनेको इष्ट. ८ असत्व. ९ सत्व ।

अथवा-घटत्वावच्छिन्नेषु मध्ये यादृशघटः परिगृह्यते, तन्निष्ठस्थौल्यादिधर्मः स्वरूपम्, इतरघटादि-व्यक्तिवृत्तिधर्म एव पररूपम् । तत्र तादृशस्वरूपेणास्ति, पररूपेण नास्ति । स्वरूपेणाप्यस्तित्वानङ्गीकारेऽसत्वप्रसङ्गः पूर्ववत् । एवमग्रेऽपि । तादृशो घटो यदि निरुक्तपररूपेणाप्यस्ति, तदा सर्वघटानामैक्यप्रसङ्गात्सामान्याश्रयव्यवहारविलोपापत्तिः ।

अथवा घटत्वसे अवच्छिन्न, अर्थात् घटत्वधर्मसे अन्य पदार्थोंसे पृथक् किये सब घटोंमेंसे विवक्षित प्रसङ्गमें गृहीत जिस प्रकारका घट [1]अनुभूत होता है उस घटमें रहनेवाले जो स्थूलता आदि धर्म हैं वही उस घटका स्वकीयरूप है और उस घटसे अन्य जो घट आदि पदार्थमें रहनेवाला धर्म है वह उसका पररूप है, वहांका भी अपने स्वरूप-निष्ठ जो स्थूलतादि धर्मरूप है उस स्वरूपसे अस्तित्व और अन्य घट आदिके रूपसे नास्तित्वका आश्रय घट है, क्योंकि अपने रूपसे भी यदि अस्तित्वका आश्रय नहीं अङ्गीकार करोगे तो पूर्वके सदृश घटके असत्वका प्रसङ्ग हो जायगा। इसी प्रकार आगे भी समझ लेना अर्थात् जो घट अनुभूत होता है उस घटका अन्य घटके रूपसे भी यदि अस्तित्व ही मानो तो सब घटोंकी एकता हो जायगी, क्योंकि सबके स्वरूपसे सबमें अस्तिता है तो कोई भेद न रहा, और इस रीतिसे सामान्यके आश्रय जो व्यवहार है उसका लोप ही हो जायगा, जब सब एक ही है तो अनेकमें अनुगत धर्म भी न रहा ।

अथवा—तस्मिन्नेव घटविशेषे कालान्तरावस्थायिनि पूर्वोत्तरकुसूलान्तकपालाद्यवस्थाकलापः पररूपं, तदन्तरालवृत्तिघटपर्यायस्स्वरूपं, तेन रूपेणास्ति । इतररूपेण नास्ति । यदि कुसूलान्तकपालाद्यात्मनापि घटोऽस्ति, तदा घटावस्थायां घटपर्यायस्येव कुसूलादिपर्यायस्याप्युपलब्धिप्रसङ्गः । कुसूलाद्यवस्थायामपि घटसत्वे घटपर्यायोत्पत्तिविनाशार्थं गुरुप्रयत्नवैफल्यं च । एवं—अन्तरालवृत्तिघटपर्यायात्मनापि यदि घटो नास्ति, तदा तत्काले जलाहरणादिरूपं तत्कार्यं नोपलभ्यते ।

अथवा कालान्तर में भी रहनेवाले उसी [2]घटमें पूर्व तथा उत्तर कालमें जो पिण्ड कुशूल तथा कपाल आदिका अवस्था–समुदाय है वह सब घटका पररूप है, और पूर्व तथा उत्तर कालमें रहनेवाला जो पिण्ड कपाल आदि समुदाय है उस समुदायमें रहनेवाला जो केवल घट [3]पर्याय है वह घटका स्वरूप है। उस अपने रूपसे अस्ति तथा अन्य पूर्वोत्तर कालवर्ती पिण्डादि पर्यायोंसे नास्ति घटका स्वरूप है। और यदि [4]कपालसे आदि लेकर कुशूलान्तसमुदायरूपसे भी अस्ति ही घटकी मानोगे तो जैसे घट दशामें घटकी प्राप्ति है ऐसे ही पिण्ड-कपाल आदि पर्यायोंकी प्राप्तिका प्रसङ्ग होगा अर्थात् जैसे घट दशामें घट

१-भासता है. २ जो घट जाननेको इष्ट है-वही घट, हर एक वस्तुमें विजातीय सजातीय तथा स्वगत भेद रहता है, उनमेंसे प्रथम विजातीय पट आदिको पररूप मानकर भेद सिद्ध किया. अनन्तर समान जातिवाले अन्य घटोंसे। अब अपने ही में जो अन्य पर्याय हैं उनको पररूपके भेद सिद्ध करते हैं. ३ घट दशा प्रथम गीली मृत्तिकामें पिण्ड पर्याय पुनः लम्बाासा कुशूल पर्याय पुनः घट पर्याय. ४ घटके दो भाग जो घटमें जुड़े रहते हैं.

पर्यायका भान होता है ऐसे ही घटके पूर्व तथा उत्तरमें जो पर्याय हैं उनका भी भान होगा, और उन पर्यायोंका भान तो घट दशामें लोकमें प्रसिद्ध नहीं है। और इसी प्रकार पिण्ड आदि दशामें घटकी सत्ता भी भासेगी तो जब पिण्ड कपाल आदि सब पर्यायोंमें घटका सत्त्व है तब पिण्ड–पर्यायकी उत्पत्ति तथा अन्य पर्यायोंके नाशार्थ जो महा प्रयत्न किया जाता है वह सब व्यर्थ होगा। और इसी प्रकार यदि पिण्ड आदिसे लेकर कपालान्त समुदायके मध्यमें जो घट–पर्याय है उस पर्यायरूपसे भी यदि घटका नास्तित्व-रूप मानोगे अर्थात् निजरूपसे नास्तित्वरूप मानो तो घटपर्यायरूपसे भी घट नहीं है यह सिद्ध हुआ, तो उस कालमें घटसे जलका आनयन तथा धारण कार्य होते हैं वे न होने चाहिये। और जल आनयन आदि कार्य्य होते तो हैं, इससे यह निश्चय होता है कि घटपर्याय अपने रूपसे अस्तित्वका आश्रय है और अन्य पूर्वोत्तर पर्यायोंके रूपसे नास्तित्वका आश्रय हैं।

अथवा—घटादौ प्रतिक्षणं सजातीयपरिणामो जायत इति तावत्सिद्धान्तसिद्धम्। तत्र ऋजुसूत्रनयापेक्षया वर्तमानक्षणवृत्तिघटपर्यायः स्वरूम्, अतीतानागतघटपर्याय एव पररूपम्। तत्क्षणवृत्तिस्वभावेन सता घटोस्ति, क्षणान्तरवृत्तिस्वभावेन नास्ति, तथा प्रतीतेः। तत्क्षणवृत्तिस्वभावेनेव क्षणान्तरवृत्तिस्वभावेनाप्यस्तित्वे एकक्षणवृत्त्येव सर्वं स्यात्। क्षणान्तरवृत्तिस्वभावेन तत्क्षणवृत्तिस्वभावेनाप्यस्तित्वाभावे घटाश्रयव्यवहारस्यैव विलोपापत्तिः। विनष्टानुत्पन्नघटव्यवहाराभावात्।

अथवा घट आदि सब पदार्थोंमें प्रत्येक क्षणमें सजातीय [1]परिणाम होता रहता है, यह विषय सिद्धान्तसे सिद्ध है, उसमें [2]ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षासे वर्त्तमान क्षणमें रहनेवाला जो घटका पर्याय है वह घटका निजरूप है तथा भूत और भविष्य अर्थात् जो होगये और होंगे वे सब पर्याय घटके पररूप हैं। इसलिये उसी घटपर्यायदशाके वर्त्तमान क्षणमें रहनेवाला जो घटका स्वभाव है उस स्वभावसे घट है॥ और वर्त्तमान क्षणसे भिन्न भूत वा [3]भविष्य क्षणवृत्ति जो स्वभाव है उस रूपसे घट नहीं है, क्योंकि अपने स्वभावसे सत्त्व और अन्यके स्वभावसे असत्त्व ही वस्तुका स्वरूप अनुभवमें आता है। और वर्तमान क्षणमें रहनेवाले स्वभावसे जैसे घटका अस्तित्व माना जाता है ऐसे ही यदि अन्य क्षणमें रहनेवाले स्वभावसे भी अस्तित्व मानो तो सब स्वभाव एक क्षणवृत्ति हो जायगा। क्योंकि सब क्षणमें रहनेवाले स्वभावसे जो अस्तित्व है वही अस्तित्व एक क्षणमें है तो कुछ भेद वह है, इसलिये सब स्वभाव एक क्षणमें रहनेवाले हो जायेंगे। तथा वर्त्तमान क्षणसे भिन्न अन्य क्षणमें रहनेवाले स्वभावरूपसे जैसे वर्त्तमान अस्तित्वका अभाव माना जाता है ऐसे ही

---

१ पदार्थके स्वरूपका वदलना, प्रत्येक पदार्थका निजस्वरूप प्रतिक्षण कुछ न कुछ रूपान्तर होता रहता है वही दूसरे रूपकी प्राप्तिका परिणाम है. २ केवल वर्त्तमान क्षणमें रहनेवाले पर्यायका ग्राही नय. ३ घटकी आगामी दशामें रहनेवाले.

यदि घटरूप पर्यायके वर्तमान क्षणमें रहनेवाले स्वभावसे भी अस्तित्वका अभाव मानो तो घटके आश्रयसे जो जलानयन तथा जलधारण आदि व्यवहार है उसका सर्वथा लोप हो जायगा, क्योंकि जो घट उत्पन्न होकर [1]नष्ट हो गये अथवा अभी जो उत्पन्न ही नहीं हुये उनके साथ घटका जलानयन तथा जल धारण आदि व्यवहारका अभाव है।

अथवा—तस्मिन्नेव तत्क्षणवर्तिनि रूपादिसमुदायात्मके घटे पृथुबुध्नोदराद्याकारः स्वरूपम्, इतराकारः पररूपम्। तेन पृथुबुध्नोदराद्याकारेण घटोऽस्ति, इतराकारेण नास्ति; पृथुबुध्नोदराद्याकारसत्त्वे घटव्यवहारसत्त्वं तदभावे तदभाव इति तादृशाकारनियतत्वात्तद्व्यवहारस्य पृथुबुध्नोदराकारेणाप्यस्तित्वाभावे घटस्यासत्त्वापत्तिः, इतराकारेणाप्यस्तित्वे तादृशाकारशून्ये घटादावपि घटव्यवहारप्रसंगः॥

अथवा उसी घटपर्यायमें उसी क्षणमें रहनेवाले रूप आदिके समूह–स्वरूप घटमें जो [2]विशालवृक्षके मूलके समान उदर आदि आकार है वह घटका स्वरूप है, और उस विशाल गोल उदराकारसे भिन्न परका रूप है। इसलिये उस विशाल तथा गोल उदर आदि अपने आकारसे घट है, और अन्य आकारसे नहीं है, विशाल तथा गोल उदर आकारकी सत्ताहीमें घटके व्यवहारकी भी सत्ता है, और उस आकारके न होनेमें घटका व्यवहार भी नहीं होता, क्योंकि उसी प्रकारके विशाल गोल आकारके साथ ही घटका व्यवहार नियत है, न कि उसके अभावमें। और उस [3]पृथुबुध्न उदर आकारसे भी यदि अस्तित्वका अभाव मानो तो घटका ही असत्त्व हो जायगा. और उस घटके विशाल गोल उदर आदि आकारसे भिन्न आकारसे भी यदि घटका सत्त्व मानोगे तो घटके पूर्वोक्त आकारसे शून्य पट आदिमें भी घटके व्यवहारका प्रसङ्ग होगा, क्योंकि घटके वास्तविक आकार न होनेपर भी जब घटकी सत्ता मानी गई तब घटका व्यवहार भी होना उचित ही है।

अथवा—रूपादिविशिष्टो घटश्चक्षुषा गृह्यते इत्यस्मिन्व्यवहारे रूपमुखेन घटो गृह्यत इति रूपं स्वरूपं रसादिपररूपम्। तत्र रूपात्मनास्ति, चक्षुरिन्द्रियमात्रग्राह्यत्वात्। यदि चक्षुर्जन्यज्ञानविषयत्वं रसस्याप्यंगीक्रियते, तदा रसनादीन्द्रियकल्पना व्यर्था। यदि च रसादेरिव रूपस्यापि चक्षुरिन्द्रियजन्यज्ञान-विषयता न स्यात्तदा घटस्यैवाग्रहणप्रसंगः, रूपादिज्ञाननियतत्वात् घटादिज्ञानस्य।

अथवा रूप आदि गुणसहित घट नेत्र इन्द्रियसे जाना जाता है इस घटके ग्रहण देखने वा जाननेरूप व्यवहारमें रूपके द्वारा नेत्र इन्द्रियोंसे घट देखा जाता है तो वह घटका श्याम अथवा रक्त जो रूप है वही घटका निजस्वरूप है और उस रूपसे भिन्न जो रस आदि गुण है वह पररूप, है इनमेंसे अपने रूपमय स्वरूपसे तो घट है, क्योंकि रूप-सहित घटका ग्रहण केवल नेत्र इन्द्रियसे होता है। और नेत्र इन्द्रियसे उत्पन्न ज्ञानका

१ नाशको प्राप्त जैसे नष्ट घटमें अस्तिताका अभाव है ऐसे ही घटके वर्तमान स्वभावसे भी माननेमें दोष आवेगा. २ घटका तथा गोलाई लिये उदररूप आकार, यही यथार्थ घटका स्वरूप है. ३ विशाल तथा वृक्षके मूलके तुल्य आकार.

विषय [1]रसको भी स्वीकार करो, अर्थात् नेत्र इन्द्रियके ज्ञानसे रसका भी ज्ञान हो जाय तो [2]रसना इन्द्रियकी कल्पना ही निष्फल होगी। और जैसे नेत्र इन्द्रियके ज्ञानसे रसका ज्ञान नहीं होता ऐसे ही नेत्र इन्द्रियके ज्ञानसे रूप भी न जाना जाय तो रूपसहित घटका ज्ञानही न होगा, क्योंकि घट आदि पदार्थका नेत्र इन्द्रियसे जो ज्ञान होता है वह रूप आदि ज्ञानके साथ नियत है, अर्थात् नेत्र इन्द्रियद्वारा घटका ज्ञान उसके रूपके ज्ञानके साथ ही होता है न कि रूपके बिना।

अथवा-शब्दभेदे ध्रुवोऽर्थभेद इति घटकुटादिशब्दानामप्यर्थभेदस्समभिरूढनयार्पणात्। घटनात् घटः-कौटिल्यात्कुट इति तत्क्रियापरिणतिक्षण एवशब्दस्य वृत्तिर्युक्ता। तत्र घटनक्रियाविषयकर्तृत्वं स्वरूपम्, इतरत्पररूपम्। तत्राद्येनास्ति इतरेण नास्ति। इत्यादिरीत्या स्वरूपपररूपभेदा ऊह्याः॥

अथवा शब्दके भेद होनेपर अवश्य ही अर्थका भेद होता है, नाना अर्थग्राही [3]समभिरूढनयकी अपेक्षासे घट कुट आदि पर्य्यायवाचक शब्दोंका भी अर्थ-भेद माना गया है, जैसे इन्द्र, शक्र आदि शब्द एक व्यक्तिके वाचक होनेपर भी "इन्दनात् इन्द्रः, शकनात् शक्रः" ऐश्वर्यसहित होनेसे इन्द्र और शत्रुओंके पराजय आदिमें समर्थ होनेसे शक्र कहे जाते हैं ऐसे ही यहांपर भी "घटनात् घटः" और "कौटिल्यात् कुटः" जलधारण आदि क्रियामें समर्थ होनेसे घट तथा कौटिल्य वक्रता आदि गुणके सम्बन्धसे कुट कहा जाता है, इस प्रकार जिस क्रियाका [4]परिणाम जिस क्षणमें हो रहा है उसी क्षणमें उस क्रियाके अनुकूल अर्थवाचक हो शब्दकी प्रवृत्ति भी योग्य है न कि अन्य शब्दकी। इसमें घटत्व अर्थात् जलादि धारणरूप जो क्रिया है उस क्रियाके विषयमें जो कर्त्तापन "कर्तृता" है वह घटका निजस्वरूप है। और उससे भिन्न परका रूप है। इनमेंसे प्रथम अर्थात् घटन क्रियाके कर्तृतारूपसे घट है, और अन्यरूपसे नहीं। इस प्रकार पूर्वकथित रीतिके अनुसार और भी स्वरूप तथा पररूपके भेदोंकी कल्पना स्वयं करलेना।

एवं घटस्य स्वद्रव्यं मृद्द्रव्यं, परद्रव्यं सुवर्णादि। घटो मृदात्मनास्ति, सुवर्णाद्यात्मना नास्ति। घटस्य स्वद्रव्यात्मनेव परद्रव्यात्मनापि सत्त्वे घटो मृदात्मको न सुवर्णात्मक इति नियमो न स्यात्। तथा च द्रव्यप्रतिनियमविरोधः।

इसी प्रकार मृत्तिकारूप द्रव्य घटका [5]स्वद्रव्य अर्थात् निज अपना द्रव्य है, और सुवर्ण

---

१ जो रसना (जिह्वा) इन्द्रियसे जानाजाय जैसे मीठा तीखा कटु आदि. २ जिससे मिष्ट तिक्त आम्ल तथा कटु आदि रसका स्वाद जानाजाता है, ३ नाना अर्थोंको कहके किसी विशेष अर्थका रूढिसे ग्रहण करनेवाला नय, जैसे गो शब्द इन्द्रिय पृथिवी किरण आदि अनेक अर्थोंके कहनेपर भी पशुमें रूढ है, अथवा शब्दके भेदमें अवश्य अर्थभेद ग्राहक. जैसे ऐश्वर्यसे इन्द्र शकनसे शक्र पुरके विदारणसे पुरन्दर, ऐसे ही यहां भी घटन क्रियासे घट, कुटन (कौटिल्य) से कुट. जो क्रिया जिस समयमें होरही वही उसका परिणाम है, ५ जो पदार्थ जिस द्रव्यसे बना है वह उसका स्वरूपवन्त द्रव्य है. जब मिट्टीका घट है तब उसका द्रव्य मिट्टी है और सुवर्ण आदि परद्रव्य हैं, और जब वह सुवर्ण वा पीतल आदिसे बना है तब सुवर्ण ही वा पीतल आदि ही उसके स्वद्रव्य हैं.

आदि पर द्रव्य हैं उनमें मृत्तिकारूप द्रव्यत्वरूपसे तो घट है, और सुवर्णरूप द्रव्यसे नहीं है। और अपने मृत्तिकारूप द्रव्यसे जैसे घटका सत्त्व है ऐसे ही पर सुवर्ण आदि द्रव्यरूपसे भी यदि उसका सत्त्व ही मानो तो घट [1]मृत्तिकामय है, [2]सुवर्णमय नहीं है, ऐसे जो नियम होता है वह नहीं होगा। और ऐसे नहीं माननेसे, अर्थात् पर द्रव्यसे उससे भिन्न द्रव्यका सत्त्व माननेसे प्रत्येक द्रव्यका जो नियम लोकमें है कि यह अमुक द्रव्य है, यह अमुक है इसका विरोध होगा, क्योंकि जब सभी द्रव्य स्वद्रव्यसे तथा परद्रव्यसे भी हैं तब भेद क्या है और भेद अभावसे प्रत्येक द्रव्यका नियम नहीं हो सकता।

ननु संयोगविभागादेरनेकद्रव्याश्रयत्वेपि न द्रव्यप्रतिनियमो विरुद्धयत इति चेन्न। तस्यानेकद्रव्यगुणत्वेनानेकद्रव्यस्यैव स्वद्रव्यत्वात्, स्वानाश्रयद्रव्यान्तरस्यैव परद्रव्यत्वात्। स्वानाश्रयद्रव्यात्मनापि संयोगादेस्सत्त्वे स्वाश्रयद्रव्यप्रतिनियमव्याघातस्य तदवस्थत्वात्। यथा परद्रव्यात्मनेव स्वद्रव्यात्मनापि घटस्यासत्त्वे सकलद्रव्यानाश्रयत्वप्रसंगेन निराश्रयत्वापत्तिः।

कदाचित् यह कहो कि संयोग विभाग आदि अनेक द्रव्यके आश्रय रहनेपर भी द्रव्योंके नियमका विरोध नहीं है, यह शंका अयुक्त है। क्योंकि संयोग विभाग आदि अनेक द्रव्यके गुण हैं इसलिये अनेक द्रव्य ही उनका स्वद्रव्य है, इसलिये अनेक द्रव्य उनका आधार होनेसे अनेक स्वद्रव्यरूपसे उनकी सत्ता युक्त है। और आधार वा आश्रय जो अन्य द्रव्य नहीं है वही पर द्रव्य है, यदि जो द्रव्य संयोग आदिका आश्रय नहीं है उस अपने अनाश्रय वा अनाधार द्रव्यरूपसे संयोग आदिकी सत्ता मानो तो अमुक द्रव्य संयोग आदिका आश्रय है अमुक द्रव्य नहीं है इस नियमका भङ्ग अवश्य होगा, क्योंकि जब अपने आश्रय द्रव्य स्वरूपसे तथा अनाश्रय द्रव्य स्वरूपसे भी संयोग आदिका अस्तित्व है तव घट संयुक्त है पट संयुक्त नहीं है, यह नियम कैसे हो सकता है? और जैसे पर द्रव्य रूपसे घटकी असत्ता मानी जाती है ऐसे ही स्वद्रव्यसे असत्ता ही मानी जाय तो सम्पूर्ण वस्तु स्वद्रव्य और परद्रव्यके आश्रय न होनेसे घट निराधार हो जायगा, क्योंकि जब कोई उसका आधार न रहा तव वह कहाँ रहेगा?

एवं घटस्य स्वक्षेत्रं भूतलादि, परक्षेत्रं कुड्यादि। घटः स्वक्षेत्रेस्ति, परक्षेत्रे नास्ति। घटस्य स्वक्षेत्र इव परक्षेऽपि सत्त्वे प्रतिनियतक्षेत्रत्वानुपपत्तिः। परक्षेत्र इव स्वक्षेत्रेप्यसत्त्वे च निराधारत्वापत्तिः।

इसी प्रकार जिस स्थानमें घट हो वह भूतल वा काष्ठ आदि घटका [3]स्वक्षेत्र है, और अन्य भित्ति आदि जहाँ घट नहीं है वह उसका [4]परक्षेत्र है। उनमेंसे अपने क्षेत्रमें घट है और परक्षेत्रमें नहीं है, घटकी जैसे स्वक्षेत्रमें सत्ता है ऐसे ही यदि परक्षेत्रमें भी मानी जाय

---

१ मृत्तिकासे बना हुआ २ सोनेसे बना हुआ. ३ अपने रहनेका नियत स्थान सब पदार्थकी सत्ता अपने द्रव्य क्षेत्र काल तथा भावसे मानी गई है और अन्य द्रव्य क्षेत्रादिसे असत्ता. ४ अपने रहनेके स्थानसे भिन्न स्थान.

तो घट अमुक स्थानमें है अमुक स्थानमें नहीं है यह विभाग नहीं बनेगा, क्योंकि अपने तथा अन्यके क्षेत्रमें भी घटका सत्व है तब घटादि पदार्थ कहां हैं और कहां नहीं हैं यह विभाग कैसे हो सकता है ? और परक्षेत्रमें जैसे घटादिका असत्व माना है ऐसे ही अपने क्षेत्रमें भी असत्व मानो तो घट आदि निराधार ही हो जाएंगे, क्योंकि अपने तथा अन्यके क्षेत्रमें जब असत्ता ही है तब उनकी सत्ताका आधार कौन हो सकता है ?

तथा घटस्य स्वकालो वर्तमानकालः, परकालोऽतीतादिः तत्र स्वकालेस्ति, परकाले नास्ति। घटस्य स्वकाल इव परकालेपि सत्त्वे प्रतिनियतकालत्वाभावेन नित्यत्वमेव स्यात्। परकाल इव स्वकालेप्यसत्त्वे सकलकालासम्बन्धित्वप्रसंगेनावस्तुत्वापत्तिः कालसम्बन्धित्वमेव हि वस्तुत्वम्। एवञ्च घटो घटत्वेनास्ति, पटत्वेन नास्ति, मृद्रव्येणास्ति, सुवर्णद्रव्येण नास्ति, स्वक्षेत्रादस्ति, परक्षेत्रान्नास्ति, स्वकालादस्ति, परकालान्नास्तीति पर्यवसन्नम्।

तथा घटका स्वकाल क्या है ? कि वर्तमान काल, अर्थात् जिस कालमें घटपर्याय वर्तता है वही उसका निज काल है, और भूत भविष्यत् उसके पर काल हैं। क्योंकि वर्तमान कालसहित भूत भविष्य कालमें यह घट नहीं है। इनमेंसे अपने कालमें तो घट है और पर कालमें नहीं है। और जैसे निज कालमें घटकी सत्ता है ऐसे ही यदि पर कालमें भी मानी जाय तो अमुक कालमें घट है और अमुक कालमें नहीं है, इस प्रकार नियत कालके अभावसे घट नित्य हो जायगा, क्योंकि निज तथा पर कालमें भी जब उसकी सत्ता मानी गई तो [1]कहां नहीं है ?। और पर कालमें जैसे असत्ता है ऐसे ही स्वकालमें भी यदि असत्ता ही मानो तो किसी कालमें घटकी सत्ताका सम्बन्ध न होने से शशशृङ्गवत् घट अवस्तु हो जायगा। क्योंकि किसी न किसी कालके साथ वस्तुकी सत्ताका संबन्ध होने ही से उसका वस्तुत्व सिद्ध होता है। अब इस प्रकार पूर्व कथित रीतिसे घटत्व धर्मसे घट है, पटत्व धर्मसे नहीं है, घट मृत्तिका रूप स्वद्रव्य स्वरूपसे है, पर सुवर्ण द्रव्यसे नहीं है, घट अपने क्षेत्रसे है, पर क्षेत्र से नहीं है, और घट अपने कालसे है, पर कालसे नहीं है, यह तात्पर्य सिद्ध हुआ।

अत्रायं बोधप्रकारः—घटत्वेनेति तृतीयार्थोऽवच्छिन्नत्वं, धात्वर्थेन्वेति। असधात्वर्थोऽस्तित्वं सत्त्वपर्यवसन्नम्। आख्यातार्थ आश्रयत्वम् तथा च घटत्वावच्छिन्नास्तित्वाश्रयो घट इति प्रथमवाक्याद्बोधः। अभावानामधिकरणात्मकतया पटत्वावच्छिन्नाभावस्य घटस्वरूपत्वात्, तत्र नञ्समभिव्याहृतासधातोरभावोर्थः, आश्रयत्वमाख्यातार्थः इति रीत्या तादृशाभावाश्रयो घट इति बोधेपि तादृशाभावात्मकत्वमेव घटस्य सिद्ध्यति, अभावानामधिकरणात्मकत्वात्। तृतीयवाक्ये मृद्रव्यपदोत्तरतृतीयाया अवच्छिन्नत्वमर्थः एवमग्रेपि बोधा ऊह्याः।

अब यहां वाक्यार्थके बोधकी रीति यह है। 'घटः घटत्वेन अस्ति" घट घटत्व स्वरूपसे है, इस वाक्यमें जो 'घटत्वेन' यहां तृतीया विभक्तिका अर्थ [2]अवच्छिन्नत्व अर्थात् घटत्व

---

१ किस कालमे स्वकीय तथा परकीय कालमें भी घटकी सत्ता माननेसे सर्व कालमें घट सिद्ध होगया. २ अन्य पदार्थसे पृथक् करनेवाले अवच्छेदकरूप घटत्व धर्मसे सहितत्व.

इस अवच्छेदक धर्मका वैशिष्ट्य है और उस अवच्छिन्नत्वका [1]अन्वय धातुके अर्थ सत्तामें होता है। अस धातुका अर्थ जो अस्तित्व है उसका भी सत्ता रूप अर्थसे तात्पर्य्य है, 'अस्ति' में जो आख्यात[2] 'ति' है उसका आश्रय अर्थ है, तो अब इस प्रकारसे-घटत्व धर्म्मसे अवच्छिन्न जो अस्तित्व अर्थात् सत्ता उस सत्ताका आश्रय घट, यह प्रथम वाक्यका वाक्यार्थ "घटः घटत्वेन अस्ति" इन तीनों पदोंको मिलाकर हुआ और सब अभाव जैन मतमें [3]अधिकरणरूप मानेगये हैं। इस प्रकारसे घट अभावका अधिकरण होनेसे पटत्व धर्म्मसे अवच्छिन्न जो अभाव अर्थात् पटका अभाव घटरूप है, क्योंकि यहां पटाऽभावका आधार घट माना है। उसी अपने अधिकरणभूत घटरूप वह होगा, और 'न अस्ति' यहाँपर नञ् अर्थात् निषेध-रूप अर्थवाचक 'न' इस अव्यय पदकी समीपता से अस् धातुका अभाव अर्थ है, अर्थात् 'न [4]अस्' इन दोनोंको मिलाकर अभावरूप अर्थ हुआ, और आख्यात 'ति' विभक्तिका आश्रय अर्थ है यह पूर्वमें कह आये हैं, तो इसी रीतिसे पटत्व धर्मसे अवच्छिन्न जो पट उस पटत्वावच्छिन्न अभावका आश्रय घट इस प्रकारका, "घटः पटत्वेन नास्ति" इस द्वितीय वाक्यका अर्थ करनेपर पटत्वावच्छिन्न अभावरूपता ही घटकी सिद्ध होती है, क्योंकि अभाव जब अपने आधार-स्वरूप है, तब पटत्वरूप धर्म्मसे अवच्छिन्न पटके अभावका आधार घट है 'इसलिये पटत्व धर्म्मसे अवच्छिन्न अभाव-स्वरूप घट है यह स्पष्ट रीतिसे अर्थ होगया, और' "घटः मृद्द्रव्येण अस्ति" (घट अपने मृतिकारूप द्रव्यसे है) इस तृतीय वाक्यमें भी मृद्द्रव्य इस पदके आगे जो तृतीया विभक्ति है उसका भी अवच्छिन्नत्व अर्थ है, और अस् तथा तिका अर्थ पूर्ववत् सत्ता तथा आश्रय है, अवच्छिन्नत्वका अन्वय आश्रयरूप तिके अर्थमें पूर्ववत् है मिलाकर मृद्द्रव्यत्वसे अवच्छिन्न जो अस्तिता उसका आश्रय घट यह वाक्यार्थ हुआ, इसी प्रकारसे आगेके चतुर्थ आदि वाक्योंका अर्थ भी समझलेना।

ननु-सर्वपदार्थानामपि स्वरूपादिचतुष्टयपररूपादिचतुष्टयाभ्यां व्यवस्थायामंगीक्रियमा-णाया स्वरूपदीनां स्वरूपाद्यन्तरस्याभावात्कथं व्यवस्था स्यात्? तेषामपि स्वरूपाद्यन्तरस-द्भावेऽनवस्था प्रसंगात्, सुदूरमपि गत्वा स्वरूपाद्यन्तराभावेपि कस्यचिद्व्यवस्थायां किं स्वर रूपाद्यपेक्षया सत्त्वासत्त्वसमर्थनरूपया स्वगृहमान्यया प्रक्रियया? यथाप्रतीति वस्तुव्यव-स्थोपपत्तेः, इतिचेत्-अनभिज्ञो भवान् वस्तुस्वरूपपरीक्षायाः। वस्तुस्वरूप-प्रतीतिरेव स्वपररू-

---

१ सम्बन्ध. २ धातुओंके आगे लगनेवाली विभक्ति ति तस् अन्ति आदि भी विभक्ति धातुओंके आगे जोड़ी जाती हैं उनको आख्यात कहते हैं. ३ अपने आधाररूपता, अभावको आधाररूपता जैन मत तथा अन्य कई मतमें भी माना है, उसकी उपपत्ति इस प्रकार है जैसे '**भूतले घटाभावः**' भूतलमें घटका अभाव है। यहांपर घटके अभावका अधिकरण भूतल है तो उस अभावका स्वरूप भूतल ही है, क्योंकि भूतलके स्वरूपके सिवाय और कुछ वस्तु उपलब्ध नहीं होती, जिस वस्तुमें जिसका अभाव कहोगे वही वस्तु उस अभावका अधिकरण होगी, और उस अभावका स्वरूप वही अधिकरण होगा जैसे घटके स्वरूपके प्रदर्शनमें पट आदिका अभाव कहा जाता है, तो अधिकरण होनेसे घट ही पट आदिके अभावरूप होगा. ४ नयका अर्थ नहीं असका अर्थ होना, दो मिलकर नहीं होना। और नहीं होना अभावरूप ही है.

पाद्यवच्छिन्नसत्वासत्वादिकं विषयीकरोतीति निरूपयितुमुपक्रान्तत्वात् । अन्यथा नानानिरंकुशविप्रतिपत्तीनां निवारयितुमशक्तेः । वस्तुनो हि यथैवाबाधितप्रतीतिस्तथैव स्वरूपव्यवस्था, 'मानाधीना मेयसिद्धिः' इति वचनात् । एवञ्च–स्वरूपादीनां स्वरूपाद्यन्तरं प्रतीयते वा न वा ? अन्त्येस्वरूपाद्यन्तरं नांगीक्रियत एव । एवमपि तेषामस्तित्वेनास्तित्वव्यवस्थाऽग्रे प्रपञ्चयिष्यते । आद्ये स्वरूपादीनामपि स्वरूपाद्यन्तरमंगीक्रियते, प्रतीत्यनुरोधात् । न चैवमनवस्था, यत्र स्वरूपाद्यन्तरस्य प्रतीतिस्तत्र व्यवस्थोपपत्तेः तत्र । जीवस्य तावदुपयोगसामान्यं स्वरूपं, तस्य तल्लक्षणत्वात् । उपयोगो लक्षणमिति वचनात् । ततोऽन्योऽनुपयोगः पररूपम् । ताभ्यां सदसत्वे प्रतीयेते । उपयोगसामान्यस्य च ज्ञानदर्शनान्यतरत्वं स्वरूपम्, इतरत्पररूपम् । उपयोगविशेषस्य ज्ञानस्य स्वार्थाकारनिश्चयात्मकत्वं स्वरूपम् दर्शनस्य किंस्विदित्यादिरूपेणाकारग्रहणम् स्वरूपम् । ज्ञानस्यापि परोक्षस्यावैशद्यं स्वरूपम् । प्रत्यक्षस्य वैशद्यं स्वरूपम् । दर्शनस्यापि चक्षुरचक्षुर्निमित्तस्य चक्षुरादिजन्यार्थग्रहणं स्वरूपम् । अवधिदर्शनस्यावधिविषयीभूतार्थग्रहणं स्वरूपम् । परोक्षस्यापि मतिज्ञानस्येन्द्रियानिन्द्रियजन्यत्वे सति स्वार्थाकारव्यवसायात्मकत्वं स्वरूपम् । अनिन्द्रियमात्रजन्यत्वं श्रुतस्य स्वरूपम् । प्रत्यक्षस्यापि विकलस्यावधिमनःपर्ययलक्षणस्येन्द्रियानिन्द्रियानपेक्षत्वे सति स्पष्टतया स्वार्थव्यवसायात्मकत्वं स्वरूपम् । सकलप्रत्यक्षस्य केवलज्ञानलक्षणस्य सकलद्रव्यपर्यायसाक्षात्करणं स्वरूपम् । ततोन्यत्सत्वं तु पररूपम् । ताभ्यां सदसत्वे प्रतिपत्तव्ये । एवमुत्तरोत्तरविशेषाणामपि स्वरूपपररूपे बुद्धिमद्भिरूह्ये । तद्विशेषप्रतिविशेषाणामनन्तत्वात् ।

शङ्का–सम्पूर्ण पदार्थोंकी व्यवस्था स्वरूप अर्थात् निजरूप द्रव्य क्षेत्र काल, तथा परके रूप द्रव्य, क्षेत्र तथा काल इन चारोंके समुदायसे स्वीकार करनेपर रूप द्रव्य क्षेत्र तथा काल ये भी पदार्थ हैं, इनका भी स्वरूप द्रव्यादि होना चाहिये, सो तो मानना नहीं । सब स्वरूप चतुष्टयके अन्य स्वरूप आदि चतुष्टयके अभावसे कैसे इनकी व्यवस्था हो सकती है, और यदि स्वरूप, द्रव्य क्षेत्र तथा काल इन चारोंके भी अन्य स्वरूप द्रव्य क्षेत्र कालकी सत्ता मानोगे तो उनके भी अन्य स्वरूप द्रव्य आदि तथा पररूप द्रव्यादि चारों मानने पडेंगे, तथा इनके भी अन्य स्वरूप द्रव्य आदि चारों होंगे, इस प्रकार अनवस्था दोष होगा, कहीं विश्राम न मिलेगा, क्योंकि जो २ स्वरूप द्रव्य आदि मानोगे उन सभोंको अपने स्वरूपका बोध करानेके लिये दूसरे स्वरूप पररूप द्रव्य आदिकी आवश्यकता पड़ती बराबर लगातार चली जायगी कहीं भी व्यवस्था नहीं हो सकती, इसलिये अति दूर जाकर भी किसी पदार्थकी व्यवस्था करनेमें उसके जब स्वरूप द्रव्य आदि चतुष्टयके दूसरे स्वरूप आदि चतुष्टयके न होनेपर भी वस्तुकी व्यवस्था तो अवश्य करनी है, तो पदार्थोंके सत्व असत्वको प्रमाणित करनेवाली तथा अपने ही घर अर्थात् जैन मतमें माननीय, इस स्वरूप तथा पररूप आदि चतुष्टयकी अपेक्षा रखनेवाली प्रक्रियासे क्या प्रयोजन है ? क्योंकि वस्तुका स्वरूप जैसे भासता है वैसी ही व्यवस्था करनी योग्य है । यदि ऐसा कहो तो–आप वस्तुके स्वरूपकी परीक्षासे अज्ञात हो । क्योंकि वस्तुके

स्वरूपका भान होना ही [1]स्वकीय रूप द्रव्य आदि चतुष्टय, तथा [2]परकीय रूप द्रव्य आदि चतुष्टय सहित सत्व तथा असत्व आदिको [3]विषय करता है। इस बातके ही निरूपण करनेको हमारे प्रयत्नका आरम्भ है। और यदि प्रमाणोंसे वस्तुके स्वरूपका भासना सिद्ध न कियाजाय तो प्रमाणरूप अंकुशके बिना वादियोंकी अनेक प्रकारकी जो [4]विप्रतिपत्ति अर्थात् विरुद्ध युक्ति हैं उनका निवारण करनेमें सर्वथा असमर्थ हैं, क्योंकि वस्तुके स्वरूपकी व्यवस्था उसी प्रकारसे करनी चाहिये कि जिसमें [5]उसका भान बिना किसी प्रमाणके [6]बाधसे निर्विवाद हो, प्रमाणके आधीन प्रमेय पदार्थोंकी सिद्धि होती है ऐसा अन्य ग्रन्थमें आचार्यका वचन है। सो इस रीतिसे अब विचारना है कि स्व तथा पररूप द्रव्य आदि चतुष्टयके अन्य स्वरूप द्रव्यादि चतुष्टयकी [7]प्रतीति होती है या नहीं ? यदि अन्त्यपक्ष है अर्थात् नहीं हो, तो स्वरूप आदिके अन्य स्वरूप आदिका तो स्वीकार ही नहीं है, प्रतीति कैसे होती है ? ऐसा माननेपर भी उनके अस्तित्व तथा नास्तित्व आदिकी व्यवस्थाका वर्णन आगे चलके करेंगे। और यदि प्रथम पक्ष है, अर्थात् स्वरूप आदि चतुष्टयके भी अन्य स्वरूप आदिका भान होता है तो [8]बोधके अनुसार स्वरूप आदि चतुष्टयको भी अन्य स्वरूप आदि चतुष्टयका अङ्गीकार करते हैं। अब कदाचित् कहो कि स्वरूप आदि चतुष्टयके अन्य स्वरूप आदि चतुष्टय जैसे स्वीकार किया है ऐसे ही इस अन्य स्वरूप आदिके भी और अन्य स्वरूप आदि चतुष्टय होंगे। तथा उनके भी अन्य स्वरूप आदि चतुष्टय होंगे, तो इस प्रकार अनवस्था दोष आवेगा। जहांपर अन्य स्वरूप आदि चतुष्टयका भान होता है वहाँ ही पर व्यवस्थाकी उपपत्ति भी हो जायगी। अब जीवके स्वरूपके विषयमें स्वरूप द्रव्यादिका विचार करते हैं–उनमें प्रथम "उपयोगसामान्य" यह जीवका स्वरूप है, क्योंकि उपयोगसामान्यरूप ही जीवका लक्षण है, **"उपयोगो लक्षणम्"** उपयोग ही जीवका लक्षण है। ऐसा महाशास्त्रका वचन है। और उस उपयोगसे अन्य जो अनुपयोग है वही जीवका पररूप है। इन दोनोंमेंसे उपयोगसे तो जीवका सत्व, और अनुपयोगसे असत्वका भान होता है, और उपयोग सामान्यका स्वरूप ज्ञान दर्शन इन दोनोंमेंसे अन्यतर अर्थात् ज्ञान दर्शनमेंसे कोई भी एक है, और ज्ञान दर्शनसे भिन्न उपयोगका पररूप है। और इनमेंसे भी उपयोग विशेष जो ज्ञान है उस ज्ञानका स्वरूप अपनेसे [9]प्रकाशनीय जो पदार्थ, उस पदार्थका निश्चय है। और इन्द्रिय तथा

---

१ अपना रूप, द्रव्य, क्षेत्र, काल. २ अन्यके रूप द्रव्य क्षेत्र काल. ३ ज्ञानमें प्रकट करना, वस्तुके स्वरूपका भास नहीं हमको यह ऐसा बोध कराता है कि वस्तु अपने रूप द्रव्यादि चारोंकी अपेक्षासे है, अन्यके रूप द्रव्यादि चारोंकी अपेक्षा से नहीं है. ४ सत्व वा असत्व आदि एकान्तरूपसे वादियोंके अनेक प्रकारके विरुद्ध कथन. ५ वस्तुके स्वरूपका. ६ प्रमाणका विरोध वस्तुके स्वरूपका निर्णय ऐसे करना चाहिये जो किसी प्रमाणसे कट न सके, जैसे किसीने कहा कि पदार्थ होनेसे अग्नि शीतल है, परन्तु जब हाथ रखके देखोगे तो वह उष्ण भासेगा इसलिये प्रत्यक्ष प्रमाणके होनेसे यह निर्णय ठीक नहीं है. ७ वस्तुके स्वरूपका ज्ञान अर्थात् जहांपर वस्तुके स्वरूप आदिके अन्य स्वरूप आदि चतुष्टयका ज्ञान होता है वहांपर वह माना गया है. ८ स्वरूप आदि चतुष्टयके ज्ञानकी तरह. ९ जो वस्तु ज्ञानके द्वारा प्रकाश होती है.

पदार्थके सन्निधान होते ही विशेष्यविशेषणभावसे शून्य कुछ है इत्यादिरूपसे आकारका ग्रहण करना दर्शनका स्वरूप है, तथा पदार्थोंका [1]अवैशद्य रूपसे, अर्थात् स्वच्छता तथा निर्मलतापूर्वक स्पष्टरीति न भासना परोक्षज्ञानका स्वरूप है, तथा वैशद्य अर्थात् निर्मलता वा स्वच्छता पूर्वक स्पष्टरीतिसे भासना [2]प्रत्यक्ष ज्ञानका स्वरूप है और [3]चार प्रकारके दर्शनोंमेंसे चक्षु तथा [4]अचक्षुको निमित्त मानके जो दर्शन होता है, उसका नेत्र आदियोंसे उत्पन्न पदार्थकी सत्तामात्रका ग्रहण ही स्वरूप है, इसी प्रकार अवधिदर्शनका अवधिदर्शनके विषय भूत पदार्थकी सत्ताका ग्रहण करना स्वरूप है और [5]परोक्ष ज्ञानमें भी [6]मतिज्ञानरूप परोक्षज्ञानका इन्द्रिय तथा मनसे जन्य, अर्थात् उत्पन्न होकर अपनेसे प्रकाशनीय पदार्थका निश्चय होजाना ही स्वरूप है। तथा अनिन्द्रिय जो मन है, उस मनमात्रसे उत्पन्न होना परोक्ष ज्ञानका स्वरूप है। और इन्द्रिय तथा अनिन्द्रिय मनकी कुछ भी अपेक्षा न रखकर, केवल आत्मामात्रकी अपेक्षासे निर्मलता पूर्व स्पष्टरीति अपने विषयभूत पदार्थोंका निश्चय करना यह [7]विकल प्रत्यक्षरूप अवधि तथा मनःपर्य्ययज्ञानका स्वरूप है, और सम्पूर्ण द्रव्य, तथा सम्पूर्ण पर्य्यायोंको साक्षात्कार करना, यह सकल प्रत्यक्षरूप केवल ज्ञानका स्वरूप है। इस अपने २ स्वरूपसे भिन्न भिन्न सत्त्व सबका पररूप है। इन्हीं अपने स्वरूप तथा पररूपसे सत्त्व तथा असत्त्व जानेजाते हैं। इस प्रकार यहांतक तो स्वरूप पररूप आदिके अन्यस्वरूप पररूपादि हमने कहे, इस प्रकार उत्तरोत्तर ज्ञानोंके जो विशेष हैं उनके भी स्वरूप पररूपादिकी कल्पना बुद्धिमानोंको स्वयं करलेनी चाहिये। क्योंकि ज्ञानोंके भेद अवान्तर भेद पुनः उनके प्रभेद अनन्त हैं सबका निरूपण असंभव है।

ननु—प्रमेयस्य किं स्वरूपं किंवा पररूपम् ? याभ्यां प्रमेयं स्यादस्तिस्यान्नास्तीति व्यपदिश्येतेति चेत् ? उच्यते। प्रमेयस्य प्रमेयत्वं स्वरूपं, घटत्वादिकं पररूपम्। प्रमेयं प्रमेयत्वेनास्ति, घटत्वादिना नास्ति ॥

शङ्का—प्रमेयका क्या तो स्वरूप है और क्या पररूप है ? जिन स्वरूप तथा पररूपसे **'प्रमेयः स्यादस्ति तथा स्यान्नास्ति'** कथंचित् प्रमेय है और कथंचित् नहीं है, ऐसा

---

१ अस्पष्ट जो स्वच्छ वा साफ २ न भासे अवैशद्य अर्थात् साफ न भासना यह परोक्ष प्रमाणका जैन मतमें लक्षण है. २ विशद अर्थात् स्पष्ट साफ प्रतिभास होना यह प्रत्यक्षका लक्षण है. ३ चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन ये चार प्रकारके दर्शन हैं. ४ नेत्रसे भिन्न कर्णआदि इन्द्रियोंको मानकर. ५ मति तथा श्रुत इन दोनों ज्ञानोंको परोक्ष प्रमाण माना है. ६ नेत्र आदि इन्द्रिय तथा मन जिसको जिन मतमें अनिन्द्रिय भी कहते हैं इन दोनोंके निमित्तसे मतिज्ञान होता है. ७ अवधिज्ञान तथा मनःपर्यय्ज्ञानको विकल प्रत्यक्ष और केवलज्ञानको सकलप्रत्यक्ष कहते हैं क्योंकि वह सम्पूर्ण द्रव्य तथा पर्याओंको साक्षात् करता है. ८ अनेक भेद मति श्रुत अवधि मनःपर्य्यय तथा केवल ये पांच ज्ञान जो प्रमाणरूप हैं इनमें प्रथम मतिज्ञानके ही अवग्रह ईहा अवाय धारणा ये चार भेद हैं, पुनः इन अवग्रहादिक एकके बहु बहुविधि अल्प एकविध तथा क्षिप्रादि बारह २ भेद हैं, ऐसे ही श्रुतज्ञानके २४८ भेद होते हैं। इनमें भी उत्तर पुरुषादिकी अपेक्षा ली जाय तो पार नहीं मिलेगा, इस हेतुसे अनन्त विशेष भेद हैं.

उसके विषयमें कहा जाय ? इस प्रश्नका उत्तर कहते हैं:—[1]प्रमेयका प्रमेयत्व जो अवच्छेदक धर्म है वही उसका स्वरूप है और घटत्व आदि पररूप हैं। इस हेतुसे प्रमेय प्रमेयत्व स्वरूपसे है और घटत्व रूपसे नहीं है।

अन्ये तु—"प्रमेयस्य स्वरूपं प्रमेयत्वं, अप्रमेयत्वं पररूपम्। न च—अप्रमेयत्वं प्रमेयत्वाभावस्तच्चाप्रसिद्ध इति वाच्यम्; प्रमेयत्वाभावस्य शशविषाणादौ प्रसिद्धत्वात्। न च—शशविषाणादीनां प्रमेयत्वाभावस्य च व्यवहारविषयत्वेन प्रमेयत्वापत्तिरिति वाच्यम्; तत्साधकप्रमाणाभावेन प्रमेयत्वासिद्धेः। प्रमेयत्वं हि प्रमाणजन्यप्रमितिविषयत्वम्, तच्च प्रमाणाभावे नोपपद्यते। एवञ्च निरुक्तस्वरूपपररूपाभ्यां प्रमेयस्यास्तित्वनास्तित्वोपपत्तिः।" इत्याहुः॥

और अन्यवादी तो—प्रमेयत्वको प्रमेयका स्वरूप और अप्रमेयत्वको पररूप कहते हैं। अब कदाचित् ऐसी शङ्का करो कि अप्रमेयत्व तो प्रमेयत्वका अभाव स्वरूप है और प्रमेयत्वका अभाव तो अप्रसिद्ध है, क्योंकि प्रमेयका अर्थ है कि प्रत्यक्ष प्रमाणआदिसे जाना जाय सो ऐसा कौन पदार्थ है जो प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे नहीं जानाजाता। इस कारणसे प्रमेयत्वका अभाव अप्रसिद्ध है, सो ऐसी शंका नहीं कर सकते क्योंकि प्रमेयत्वका अभाव भी शश वा अश्व शृंग आदिमें प्रसिद्ध है। कदाचित् यह कहो कि शशशृंगआदिकमें भी प्रमेयत्वके अभाव रूपसे लोकमें व्यवहार है इसलिये शशशृंग आदिमें जो प्रमेयत्वका अभाव है उसको भी प्रमेयत्व होजायगा क्योंकि शशशृंग आदिमें प्रमेयत्वके अभावरूपसे प्रमेयत्वका अभाव जानाजाता है। यह कथन नहीं कर सकते क्योंकि प्रमेयत्वाभावके जाननेमें साधक कोई प्रमाण नहीं है इस कारण प्रमेयत्वके अभावमें प्रमेयत्वकी सिद्धि नहीं हो सकती इसका हेतु यह है कि प्रमाणसे उत्पन्न जो प्रमितिरूप फल उस प्रमितिका जो विषय है उसको प्रमेयत्व कहते हैं, अतः प्रमेयत्वके अभावको [2]प्रमाणजन्य प्रमितिका विषय होना बिना किसी प्रमाणके युक्तिसे नहीं सिद्ध हो सकता। इस प्रकार पूर्वकथित रीतिसे स्वरूप प्रमेयत्वसे और अप्रमेयत्व पररूपसे प्रमेयका अस्तित्व तथा नास्तित्व युक्तिपूर्वक सिद्ध है॥ ऐसा अन्यवादी कहते हैं।

ननु—जीवादिद्रव्याणां षण्णां किं स्वद्रव्यं किं वा परद्रव्यम्? याभ्यामस्तित्वानास्तित्वे व्यवतिष्ठेते, द्रव्यान्तरस्यासम्भवात्, इति चेदुच्यते। तेषामपि शुद्धं सद्द्रव्यमपेक्ष्यास्तित्वम् तत्प्रतिपक्षं सद्भावम् शुद्धद्रव्यमपेक्ष्य नास्तित्वञ्चोपपद्यते॥

शङ्का—जीव अजीव [3]षट् द्रव्योंका क्या तो स्वद्रव्य है और क्या पर द्रव्य है जिससे

---

२ जो प्रमाणसे जाना जाय उसका अवच्छेदक पृथक् करनेवाला प्रमेयत्व धर्म ही स्वरूप है. २ प्रमाण (ज्ञान) रूप कारणसे उत्पन्न प्रमितिरूप फलका विषय अर्थात् घट आदिके सदृश जो ज्ञानके फलका विषय है वही प्रमेय है. ३ जीव अजीव आस्रव बंध संवर तथा निर्जरा ये षट् (छः) ही द्रव्य जिनमतमें हैं इनसे भिन्न द्रव्य न होनेसे इनके स्वद्रव्य तथा परद्रव्यकी व्यवस्था नहीं बन सकती इस आशयसे प्रश्न है.

कि षट् द्रव्योंके स्वद्रव्यसे अस्तित्व और परद्रव्यसे नास्तित्व उनमें [1]व्यवस्थित हो क्योंकि छः द्रव्योंसे भिन्न तो कोई द्रव्य ही नहीं है तब इनके स्वद्रव्य तथा परद्रव्यसे अस्तित्वआदि धर्म षट् द्रव्योंमें कैसे रह सकते हैं ? ॥ यदि ऐसा प्रश्न करो तो इसका उत्तर कहते हैं— इन षट् द्रव्योंका भी शुद्ध सत् द्रव्यकी अपेक्षासे तो अस्तित्व, और उससे विरुद्ध अशुद्ध असत् द्रव्यकी अपेक्षासे नास्तित्व भी सिद्ध होता है, अर्थात् षट् (छः) द्रव्योंका शुद्ध सत् द्रव्य तो स्वरूप है उसकी अपेक्षासे और अशुद्ध असत् द्रव्य इनका परद्रव्य है; उसकी अपेक्षा छः द्रव्योंका नास्तित्व भी युक्तिपूर्वक सिद्ध है ।

ननु—महासत्त्वरूपस्य शुद्धद्रव्यस्य स्वपरद्रव्यादिव्यवस्था कथं ? तस्य सकलद्रव्यक्षेत्रकालभावात्मकत्वात्, तद्व्यतिरेकेणान्यद्रव्याद्यभावात्; इति चेन्न;–शुद्धद्रव्यस्यापि सकलद्रव्यक्षेत्रकालाद्यपेक्षया सत्त्वस्य, विकलद्रव्याद्यपेक्षयाऽसत्त्वस्य च, व्यवस्थितेः । 'सत्ता सप्रतिपक्षैका' इति वचनात् ।

प्रश्नः—[2]महासत्त्वरूप जो शुद्ध द्रव्य है उसकी स्वकीय तथा परकीय द्रव्यकी व्यवस्था कैसे हो सकती है ? क्योंकि महासत्त्वरूप शुद्ध द्रव्य तो संपूर्ण द्रव्य क्षेत्र काल तथा भाव स्वरूप ही है, उससे भिन्न जब दूसरा द्रव्य नहीं है तब महासत्त्वरूप शुद्ध द्रव्यका क्या स्वद्रव्य होसकता है और क्या परद्रव्य होसकता है और स्व-पर द्रव्यके बिना महासत्त्वरूप शुद्ध द्रव्यका सत्त्व असत्त्वकी व्यवस्था कैसे होसकती है ? ऐसी शंका कभी नहीं कर सकते । क्योंकि महासत्त्वरूप शुद्धद्रव्यके भी [3]सकल द्रव्य क्षेत्र तथा कालादिकी अपेक्षासे सत्त्वकी और विकल द्रव्य क्षेत्र कालादिकी अपेक्षासे असत्त्वकी व्यवस्था पूर्ण रीतिसे है अर्थात् महासत्त्व शुद्ध द्रव्यका सकल द्रव्य क्षेत्र काल तथा भाव तो स्वकीय द्रव्य हैं उनकी अपेक्षासे सत्त्व और [4]विकल द्रव्य क्षेत्र काल भाव पररूप हैं उनकी अपेक्षासे असत्त्व भी युक्तिसे सिद्ध है ॥ संपूर्ण द्रव्य क्षेत्र कालादिरूप जो एक महासत्ता है वही विकल द्रव्य क्षेत्र आदिसे प्रतिपक्ष सहित है ॥ ऐसा अन्यत्र आचार्यका वचन है ।

एतेन सकलक्षेत्रकालव्यापिनो गगनस्य सकलकालक्षेत्रापेक्षया सत्त्वं यत्किञ्चित्क्षेत्रकालपेक्षयाऽसत्त्वं च निरूपितं प्रतिपत्तव्यम् ।

इस महासत्त्वरूप शुद्ध द्रव्यके स्वकीय तथा परकीय द्रव्य क्षेत्र आदिके निरूपणसे ही संपूर्ण क्षेत्र काल व्यापी आकाशका भी सम्पूर्ण काल क्षेत्रकी अपेक्षासे तो सत्त्व और यत्-[5]किंचित् क्षेत्र कालकी अपेक्षासे असत्त्व भी पूर्ण रीतिसे प्रतिपादित होगया यह समझ लेना ।

---

१ स्थित, अपना और द्रव्य नहीं है तब इनमें सत्त्व असत्त्व कैसे. २ सम्पूर्ण द्रव्य क्षेत्रादिकी सत्ता महासत्त्व है. ३ सम्पूर्ण. ४ न्यून वा अपूर्ण. ५ किंचित् अल्प, तात्पर्य यह है कि आकाश सम्पूर्ण द्रव्य देश-कालव्यापी है ऐसा कोई देश काल नहीं है जहां आकाश न हो इसलिये सम्पूर्ण द्रव्य क्षेत्र (देश) कालकी अपेक्षासे तो आकाशका सत्त्व और अल्प द्रव्य क्षेत्र काल आदिकी अपेक्षासे असत्त्व है क्योंकि वह अल्प द्रव्य क्षेत्र कालादिमें नहीं है किन्तु सबमें है.

ननु—अस्तित्वमेव वस्तुनस्स्वरूपं, न पुनर्नास्तित्वं, तस्य पररूपाश्रयत्वात् । यदि च पररूपाश्रितमपि नास्तित्व वस्तुनः स्वरूपं, तदा पटगतरूपादिकमपि घटस्य स्वरूपं स्यात्; इति चेन्न, उभयस्यापि स्वरूपत्वे प्रमाणसद्भावात् । तथाहि—घटस्य स्वरूपाद्यवच्छिन्नास्तित्वं पररूपाद्यवच्छिन्नानस्तित्वं च प्रत्यक्षेणैव गृह्यते । घटो घटत्वेनास्तीत्यबाधितप्रतीतेः । अनुमानप्रयोगश्च–अस्तित्वं स्वभावेनाविनाभूतं–विशेषणत्वात्, साधर्म्यवत् । यथा साधर्मे वैधर्म्येणाविनाभूतं-यथारितत्वं स्वभावेन नास्तित्वेनाविनाभूतम् । अविनाभूतत्वं च नियमेनैकाधिकरणवृत्तित्वम् ॥

प्रश्न-—अस्तित्व ही अर्थात् सत्ता ही वस्तुका स्वरूप है न कि नास्तित्व वा असत्ता, क्योंकि अस्तित्व वा सत्व तो घट आदि वस्तुके आश्रय है और नास्तित्व वा असत्ता पररूप आदिके आश्रयसे रहती है। और यदि पररूपके आश्रित होकर भी नास्तित्व घट वस्तुका स्परूप हो, तो पटमें जो रूप आदि हैं वे भी घटके स्वरूप हो जायेंगे ? ऐसी शंका नहीं कर सकते क्योंकि प्रमाण होनेसे अस्तित्व तथा नास्तित्व दोनों वस्तुके स्वरूप हैं, जैसे घटके स्वरूप द्रव्यत्व आदिसे अवच्छिन्न तो अस्तित्व और पररूप द्रव्यत्व आदिसे अवच्छिन्न नास्तित्व दोनों स्वरूप प्रत्यक्षसे अनुभूत होते हैं। घट अपने घटत्वरूप धर्मसे है और पररूप पटत्व धर्मसे नहीं है, यह प्रतीति अर्थात् अनुभव विना किसी प्रमाणकी बाधाके होता है। इस अनुभवको दृढ़ करनेके लिये अनुमानका भी प्रयोग है,—जैसे अस्तित्व घटके स्वभावसे [१]अविनाभूत है, क्योंकि वह विशेषणीभूत धर्म है, जैसे साधर्म्य। तात्पर्य यह है कि जैसे धूम अग्निके बिना नहीं रह सकता, अतः जहाँ धूम है वहाँ अग्नि अवश्य है, इसलिये धूम अग्निका अविनाभूत है, ऐसे ही अस्तित्व भी अपने स्वभाव घटादिका अविनाभून अर्थात् अपने स्वभावसे साधर्म्य वैधर्म्यके तुल्य व्याप्त है। जैसे जब किसी अपेक्षासे किसी पदार्थके साथ किसी पदार्थका साधर्म्य है तो वह धर्म भी किसीकी अपेक्षासे उसीमें विद्यमान है, जैसे घटमें मृत्तिका द्रव्यसे साधर्म्य है तो उसी घट में सुवर्ण द्रव्यसे वैधर्म्य भी है, ऐसे ही अस्तित्व भी अपने स्वभाव नास्तित्वसे व्याप्त अर्थात् अविनाभूत है। तात्पर्य यह है कि जब घटमें स्वरूप द्रव्यादिकी अपेक्षासे अस्तित्व है तब उसी घटमें अन्य पर द्रव्यादिककी अपेक्षासे नास्तित्व भी है, क्योंकि अस्तित्व नास्तित्व इन दोनोंमें अविनाभूत व्याप्ति है और अविनाभूत जो हैं वे धूम और अग्निके समान एक अधिकरणमें नियमसे रहते हैं, इस हेतु साधर्म्य वैधर्म्यके समान जहां अस्तित्व स्वरूप द्रव्यादिकी अपेक्षासे है वहां पररूप द्रव्यादिकी अपेक्षासे नास्तित्व भी है, इस प्रकार अस्तित्व तथा नास्तित्व दोनों वस्तुका स्वरूप सिद्ध हो गया ॥

---

१ व्यापककी सत्ताके विना जो न रहसके उसको न्यायशास्त्रमें अविनाभूत कहते हैं, जैसे अग्निके विना धूम नहीं रह सकता। इस हेतुसे धूम अग्निका अविनाभूत है अर्थात् धूम अग्निका आपसमें व्याप्य व्यापक भाव है। इससे यह सिद्ध हुआ कि धूमके रहते अग्नि अवश्य है, ऐसे ही अस्तित्व तथा नास्तित्वका भी है.

ननु—घटोऽभिधेयः प्रमेयत्वादित्यादिहेतौ वैधर्म्यविरहेपि साधर्म्यं दृश्यत इति साधर्म्यस्य वैधर्म्याविनाभूतत्वाभावान्न दृष्टान्तसंगतिः, इति चेदुच्यते। साधर्म्यन्नाम साध्याधिकरणवृत्तित्वेन निश्चितत्वम्। वैधर्म्यं च साध्याभावाधिकरणावृत्तित्वेन निश्चितत्वम्। एवं चाभिधेयत्वाभावाधिकरणे शशशृङ्गादाववृत्तित्वेन निश्चितत्वं प्रमेयत्वस्य वर्तत इति तादृशहेतोर्वैधर्म्यमक्षतमिति।

प्रश्नः—"घटः अभिधेयः प्रमेयत्वात्" घट अभिधेय अर्थात् कथनके योग्य है। क्योंकि उसमें [1]प्रमेयत्व धर्म है, इत्यादि अनुमानमें जहाँ प्रमेयत्व आदि हेतु हैं, वहाँ वैधर्म्यके अभावमें साधर्म्य है तो साधर्म्य वैधर्म्यका [2]साहचर्य्य न रहा तब साधर्म्य वैधर्म्यके सदृश अस्तित्व नास्तित्वसे [3]व्याप्त है यह दृष्टांत अयोग्य है। कारण यह है कि प्रमेय सब पदार्थ हैं तो जहाँ प्रमेयत्व है वहां प्रमेयत्वका अभाव न होनेसे वैधर्म्यके बिना भी साधर्म्य है ?। यदि ऐसी शंका करो तो इसका उत्तर देते हैं,-साध्यके अधिकरण आधारोंमें जिसकी [4]वृत्तिता निश्चित हो उसको साधर्म्य कहते हैं, और साध्यके अभावके अधिकरणमें जिसका अवृत्तित्व अर्थात् न रहना निश्चित हो उसको वैधर्म्य कहते हैं इसलिये पूर्व कथित अनुमानमें साध्य अभिधेयत्व है उसके अभावके अधिकरण शशश्रृङ्ग आदिमें अवृत्तिता प्रमेयत्वकी निश्चित है क्योंकि शशश्रृङ्ग आदि कुछ न होनेसे न उसमें अभिधेयत्व साध्य है और न प्रमेयत्व हेतु ही है इसलिये साध्याभावके अधिकरणमें [5]अवृत्तित्वरूपसे निश्चितत्व धर्म प्रमेयत्वमें है इसलिये पूर्णरूपसे इस हेतुमें वैधर्म्य भी है।

एवं-नास्तित्वं स्वभावेनास्तित्वेनाविनाभूतम्, विशेषणत्वात्। वैधर्म्यवत्, इत्यनुमानेनापि तयोरविनाभावसिद्धिः।

और जैसे अस्तित्व नास्तित्वस्वभावसे व्याप्त है यह अनुमान पूर्व सिद्ध करचुके हैं ऐसे यह भी अनुमान है कि नास्तित्व अस्तित्वस्वभासे अविनाभूत अर्थात् व्याप्त है क्योंकि वह विशेषण है जैसे वैधर्म्य इस अनुमानसे नास्तित्व अस्तित्वका [6]अविनाभाव सिद्ध है।

ननु-पृथिवीतरेभ्यो भिद्यते, गन्धवत्त्वादित्यादिकेवलव्यतिरेकिहेतौ वैधर्म्यं साधर्म्येण विनापि वर्तत इति निरुक्तानुमाने दृष्टान्तासंगतिरिति चेन्न। केवलव्यतिरेकिहेतावपि साधर्म्यस्य घटादावेव सम्भवात्। इतरभेदाधिकरणे घटे गन्धवत्त्वरूपहेतोर्निश्चितत्वेन साधर्म्यस्याक्षतत्वात्। पक्षभिन्न एव साधर्म्यं न पक्ष इति नियमाभावात्।

---

१ जो प्रमाणसे जानाजाय तो प्रमाणसे सब कुछ जाना जाता है इसलिये प्रमेयत्व हेतु विना वैधर्म्यके साधर्म्य रूपसे ही है. २ साथ रहनेका नियम (व्याप्ति) अर्थात् व्याप्यके रहनेसे व्यापक अवश्य रहे जैसे धूमके रहनेपर अग्नि आम्रत्वके रहनेपर वृक्षत्व. ३ अविनाभूत जैसे व्याप्ति वा अविनाभावके नियमसे जहां धूम है वहां अग्नि अवश्य है ऐसे ही जहां अस्तित्व है वहाँ किसी न किसी अपेक्षासे नास्तित्व भी है. ४ रहना व सत्ता. ५ न रहना अथवा असत्ता साध्य अभिधेयके अभावके अधिकरण शशशृङ्ग आदि में प्रमेयत्वकी अवृत्तिता (न होना वा रहना) निश्चित है. ६ व्याप्तिरूप संबंध व्यापककी सत्ता विना व्याप्यकी सत्ताका न होना इसीका नाम अविनाभाव है तो इस अनुमानसे नास्तित्व अस्तित्वके विना नहीं रहता और अस्तित्व भी नास्तित्वके विना नहीं रहता है। इसलिये दोनोंका परस्पर अविनाभाव अर्थात् व्याप्ति है.

प्रश्नः—'पृथिवी इतरेभ्यः भिद्यते गन्धवत्त्वात्' पृथिवी जल आदिसे भिन्न है क्योंकि उसमें गन्धवत्त्व है इत्यादि केवलव्यतिरेकी हेतुवाले अनुमानमें गन्धवत्त्वरूप [1]केवलव्यतिरेकी हेतु अर्थात् जव अपनेसे साध्य पदार्थमें ही रहनेवाले हेतुमें [2]वैधर्म्य साधर्म्यके विनाही है। इस हेतुसे नास्तित्व अस्तित्वस्वभावसे विशेषता होनेसे व्याप्त है, वैधर्म्यके तुल्य यह जो दृष्टान्त दिया है सो असंगत है ? ऐसी शंका नहीं कर सकते। क्योंकि पृथिवीमात्रमें रहनेवाले गन्धवत्त्वरूप केवलव्यतिरेकी हेतुमें भी साधर्म्यका संभव घटआदिरूप पृथिवीमें ही है। साध्यके अधिकरणमें [3]वृत्तित्वरूपसे निश्चितत्व यह हम साधर्म्यका स्वरूप पूर्व कह आये हैं सो यहाँ पृथिवीसे इतर जलादिका भेद साध्य है इसलिये पृथिवीसे अन्य प्रतियोगिक भेदके अधिकरणरूप घटमें गन्धवत्त्वरूप हेतुका होना निश्चित है। इस कारण गन्धवत्त्वरूप हेतुमें साध्यके अधिकरणमें वृत्तित्वसे निश्चितत्वरूप साधर्म्य पूर्ण रूपसे है। और पक्षसे भिन्नमें ही साधर्म्य चाहिये न कि पक्षमें, ऐसा नियम तो नहीं है। इसलिये पृथिवीसे अभिन्न, [4]घटरूप पक्षमें भी साधर्म्य जानेसे कोई हानि नहीं है।

अथ—शशविषाणादौ नास्तित्वमस्तित्वेन विनापि दृश्यते, इति चेत् ? अत्र वदामः। गोमस्तकसमवायित्वेन यदस्तीति प्रसिद्धं विषाणं, तच्छशादिमस्तकसमवायित्वेन नास्तीति निश्चीयते। मेषादिसमवायित्वेन यानि रोमाणि सन्तीति प्रसिद्धानि तान्येव कूर्मादिसमवायित्वेन न सन्तीति निश्चीयन्ते। वनस्पतिसम्बन्धित्वेन यदस्तीति प्रसिद्धं कुसुमं—तदेव गगनसम्बन्धित्वेन नास्तीति निश्चीयते। तथा चास्तित्वं नास्तित्वं च परस्परमविनाभूतमेव वर्तते।

अब कदाचित् ऐसी शंका करो कि [5]शशशृंग आदिमें नास्तित्व अस्तित्वके बिना ही देख पड़ता है क्योंकि शशके शृंग तथा आकाशके पुष्प आदिका सर्वथा अभाव ही है इसका कारण उनकी असत्ता मात्र भान होनेसे अस्तित्वके बिना ही उनमें केवल नास्तित्व है तो नास्तित्व अस्तित्वसे व्याप्त है यह जो पूर्व प्रसंगमें अनुमान किया है वह असंगत हुआ ? यदि ऐसी शंका करो तो उत्तरमें यह कहते हैं,—गौ और हरिण आदिके मस्तकपर जो समवाय संबन्धसे सींग प्रसिद्ध है वह सींग शश तथा अश्व आदिके मस्तकपर नहीं है ऐसा निश्चय किया जाता है। ऐसे ही भेड़ बकरी आदिके शरीरमें जो रोम प्रसिद्ध है वही कछुवेके शरीरमें नहीं है। इसी प्रकार वनस्पति या गुलाब आदिमें

---

१ केवल साध्यके अधिकरणमें रहनेवाला, अन्यत्र जिसका व्यतिरेक हो अर्थात् अभाव हो। केवलान्वयी, केवलव्यतिरेकी, तथा अन्वयव्यतिरेकी, ये तीन प्रकारके हेतु न्यायशास्त्रमें माने हैं इनमेंसे केवलान्वयी वह हेतु है जिसकी सब जगह अन्वयसत्ता है, जैसे प्रमेयत्व अभिधेयत्व इत्यादि। केवल व्यतिरेकी वह है जिसकी सत्ता केवल साधर्म्यके अधिकरणमें हो अन्य सब जगह जिसका व्यतिरेक (अभाव) हो। अन्वयव्यतिरेकी वह है जिसकी पक्ष तथा सपक्षमें सत्ता हो अन्यत्र अभाव हो जैसे धूमवत्त्व. २ साधर्म्यके बिना जो रहे. ३ सत्ता. ४ जैसे पृथिवीको पक्ष होनेसे जल आदिके भेदका अधिकरण है ऐसे ही घट भी पृथिवी होनेसे जलादिके भेदका अधिकरण है इसलिये वह भी पक्ष है. ५ शश (खरगोश)का सींग आकाशका पुष्प इत्यादिका अभाव ही है इसलिये केवल नास्तित्व है अस्तित्व नहीं है.

जो पुष्प प्रसिद्ध है वही आकाशमें नहीं है तो इसी रीतिसे यह वार्ता सिद्ध हुई कि जिन शृङ्ग रोम तथा पुष्प आदि वस्तुओंकी गौ मेष तथा चंपा आदिमें अस्तित्व अर्थात् सत्ता है। उन्हीं पदार्थोंकी नास्तित्व अर्थात् असत्ता न होना शश [1]कूर्म तथा आकाश आदिमें कहते हैं। तो नास्तित्व और अस्तित्व परस्पर अविनाभूत अर्थात् व्याप्त सिद्ध हो गये।

अपरेतु—"यथा देवदत्तादिशब्दानां देवदत्तशरीरावच्छिन्नात्मन्येव शक्तिः, (१) देवदत्तो जानाति सुखमनुभवतीत्यादिप्रयोगानुरोधात्, तथा मण्डूकादिशब्दानामपि मण्डूकादिशरीरावच्छिन्नात्मन्येव शक्तिरंगीकरणीया। एवं च कर्मादेशवशान्नानाजातिसम्बन्धमापन्नस्य जीवस्य (१) मण्डूकभावावाप्तौ तत्पदवाच्यतामास्कन्दतः पुनर्युवतिजन्मन्यवाप्ते यश्शिखण्डकस्य एवायमिति प्रत्यभिज्ञानविषयैकजीवसम्बन्धित्वात्स एव मण्डूकशिखण्ड इति तस्य प्रसिद्धत्वान्मण्डूकशिखण्डस्यास्तित्वम्; मण्डूकशरीरावच्छिन्नात्मसम्बन्धिनो मण्डूकशरीरसमानकालीनशिखण्डस्याभावाच्च नास्तित्वम्। यदि च देवदत्तादिशब्दो मण्डूकादिशब्दश्च तत्तच्छरीरवाचक एव, देवदत्त उत्पन्नो विनष्ट इत्यादि व्यवहारात्, स च बन्धम्प्रत्येकत्वेन वर्तमानस्य जीवस्यापि बोधको भवतीति मतम्। तदा मण्डूकशरीराकारेण परिणतपुद्गल (२) द्रव्यस्याप्यनाद्यन्तपरिणामस्य क्रमेण युवतिमुक्ताहारादिकेशभावान्तपरिणामाच्छिखण्डकनिष्पत्तेर्मण्डूकशिखण्डस्यास्तित्वम्, मण्डूकशरीररूपेण परिणतपुद्गलद्रव्यस्य तत्काले केशपरिणामाभावाच्च नास्तित्वं सिद्धचति"। एवं वन्ध्यापुत्रशशनरखरविषाण-कूर्मरोमादिष्वपि योज्यम्। आकाशकुसुमे तु—अस्तित्वनास्तित्वोपपत्तिरित्थम्। यथावनस्पतिनाम कर्मोदया-पादितविशेषस्य वृक्षस्य पुष्पमिति व्यपदिश्यते, पुष्पभावेन परिणतपुद्गलद्रव्यस्य तादृशवृक्षापेक्षया भिन्नत्वेपि तेन व्याप्तत्वात्; तथाऽऽकेशेनापि पुष्पस्य व्याप्तत्वं समानमित्याकाशकुसुममिति व्यपदेशो युक्तः॥ अथ मल्लिकाकृतोपकारापेक्षया मल्लिकाकुसुममिति व्यपदिश्यते, नत्वाकाशकुसुममिति; कुसुमस्याकाशेनोपकारा-भावात्, इति चेन्न;—आकाशकृतावगाहनरूपोपकारमादायाकाशकुसुममिति व्यपदेशस्य दुर्वारत्वात्॥ किंच—वृक्षात्प्रच्युतमपि कुसुममाकाशान्नप्रच्यवत इति नित्यमेवाकाशसम्बन्धो वर्तते॥

और अन्य वादीगणका विचार इसी विषयमें ऐसा है॥ जैसे देवदत्त आदि शब्दोंकी [2]शक्ति देवदत्त शरीरसहित आत्मामें अर्थात् यह देवदत्त शब्द देवदत्तके शरीरमें जो आत्मा उस अर्थको कहता है। देवदत्त जानता है, देवदत्त सुखका अनुभव करता है। इत्यादि प्रयोगके अनुरोधसे देवदत्तके शरीरसंम्बन्धी आत्माहीका वोध होता है, क्योंकि जानना तथा सुख आदिका अनुभव करना यह [3]आत्माहीका धर्म है न कि शरीरका। इसी प्रकार [4]मण्डूक

---

१ कछुवा वा कच्छव. २ शब्दोंमें अर्थ प्रगट करनेका सामर्थ्य। जैसे घटशब्द कम्बुग्रीवरूप व्यक्तिको कहता है. ३ यद्यपि सुख दुःख आदिका अनुभव शरीर तथा मनके सम्बन्धसे आत्मा को होता है तथापि जिस आत्माकी सत्तासे सुख आदिका अनुभव तथा अन्य ज्ञान शरीरमें होते हैं उसीका धर्म्म मानके ऐसा कथन है और ज्ञान तथा सुख दुःख आदिका अवच्छेदक शरीर है इस हेतुसे देवदत्त आदि शब्दोंकी शक्ति शरीरमात्रमें ही है इस भ्रमको दूर करनेको शरीरसम्बन्धी आत्मामें शक्ति है यह कथन है. ४ मेंढक जो वर्षामें अधिक होते हैं.

आदि शब्दोंकी भी शक्ति मण्डूक शरीरसंबन्धी आत्माहीमें अंगीकार करनी चाहिये इस प्रकारके सिद्धान्तसे कर्म्मके वशसे नाना प्रकारकी जाति संबन्ध रखनेवाले जीवका जब कर्मके ही वशसे मण्डूकका जन्म प्राप्त होता है अर्थात् जब आत्मा अपने कर्मोंके अधीनसे मोर आदि अनेक योनियोंमें भ्रमते २ मण्डूकका शरीर धारण करते हुए मण्डूक शब्दसे कहा जाता है और युवतिमें पुनः जन्म मिलनेपर प्रत्यभिज्ञान[1] होनेसे जो यह शिखण्डक था मोर शिखाधारी जीव था वही यह मण्डूक शरीरधारी जीव है। क्योंकि एक ही जीव नाना शरीर धारण करता है तो इस प्रकार [2]मयूरदशामें [3]शिखण्डके प्रसिद्ध होनेसे मेंढक दशामें मण्डूक शिखण्डके अस्तित्वका बोध होता है, और मण्डूक शरीरके साथ संबन्ध रखनेवाला जो आत्मा है, उसको मण्डूकका शरीर धारण करनेके समयमें केशका अभाव होनेसे मण्डूक शिखण्डका नास्तित्व भी प्रसिद्ध हो गया। और यदि देवदत्त उत्पन्न हुआ देवदत्त नष्ट होगया इत्यादि व्यवहारको देखकर देवदत्त आदि शब्द तथा मण्डूक आदि शब्द भी केवल देवदत्त आदि तथा मण्डूक आदि शरीरमात्रके ही वाचक हैं ऐसा मत है, तब भी अनादि कालसे बन्धुके प्रतिशरीरके साथ एकता अर्थात् अभेदरूपताको प्राप्त जो जीव है उसीके बोधक देवदत्त आदि शब्द है, यही तात्पर्य शरीरवाचक दशामें भी है, तब उस दशामें भी मण्डूकशरीरके आकारमें [4]परिणत जो पुद्गल द्रव्य है, उस पुद्गल द्रव्यके अनादि अनन्त कालसे अनेक आकारमें [5]परिणाम होते रहते हैं। तो इस परिणामके चक्रमें कदाचित् मण्डूकका शरीर नष्ट होकर खेतमें मृत्तिका वा खात होकर पुनः वही खात धान्य वा किसी शाकरूपमें परिणत होके वा स्त्री पुरुषका भोजन होके क्रमसे पुरुषके वीर्य तथा स्त्रीके [6]शोणित रूपताको प्राप्त होता हुआकेश दशातक परिणत होके शिखण्डकी सिद्धि होनेसे मण्डूक शिखण्डकी अस्तिता, तथा जब मण्डूक शरीररूपमें परिणत जो पुद्गल द्रव्य है उस दशामें केशका अभाव होनेसे मण्डूक शिखण्डकी नास्तिता भी सिद्ध होगई। इसी रीतिके अनुसार वन्ध्यापुत्र, शश मनुष्य वा गर्दभ अश्व आदिके शृङ्ग तथा कर्मके आदिमें अस्तित्व नास्तित्वकी योजना करनी चाहिये। तात्पर्य्य यह कि वन्ध्याशरीरधारी जीवके यद्यपि इस जन्ममें पुत्र नहीं है तथापि उसके शरीरके पुद्गल अवश्य ऐसे अनेक शरीररूपमें परिणत हुए थे जब उसके पुत्र हुये थे उस दशाको लेके वन्ध्यापुत्रमें अस्तित्व और वन्ध्या दशामें पुत्र न होनेसे नास्तित्व दोनों सिद्ध हैं, ऐसे ही शश मनुष्य तथा कूर्म आदि देहके साथ संबन्ध रखनेवाले जो जीव हैं उनका उन्ही शश आदि शरीरोंके पुद्गलोंसे रचित जो हरिण

---

१ यह वह देवदत्त है जिसको हमने कहीं अन्य स्थानमें देखा था. इस प्रकारका अनुभव तथा स्मरणसे उत्पन्न वा सादृश्यको बतलानेवाला ज्ञान अथवा प्रमाण. २ मोरजन्मके शरीरमें. ३ चोटी अथवा चूडा. ४ परिवर्तित अथवा बदलता हुआ अर्थात् एक आकारसे दूसरे आकारमें बदलता हुआ. ५ वस्तुका रूपान्तर होना, जैसे भुक्त पदार्थका रस रुधिर तथा मेदा आदि परिणाम अथवा दुग्धका दधिरूप परिणाम. ६ लोहू.

तथा मेष आदि शरीरके साथ जब संबन्ध था तब शृङ्ग तथा रोमकी अस्तिता और शश मनुष्य तथा कूर्म आदि शरीरके साथ संबन्ध होनेसे शृङ्ग तथा रोमका अभाव होनेसे नास्तिता भी सिद्ध है। इस प्रकार नास्तित्व अस्तित्व व्याप्त है। यह अनुमान योग्य ही है। और आकाशके पुष्पमें तो अस्तित्व नास्तित्व इस प्रकारसे हैं,-जैसे वनस्पति नाम कर्मके उदयसे प्राप्त जो विशेष वृक्षरूपता है, उस वृक्षका पुष्प ऐसा कथन होता है, क्योंकि पुष्परूपमें परिणत जो पुद्गल द्रव्य है वह कथंचित् उस वृक्षसे भिन्न है, इसलिये वृक्ष तथा पुष्पकी भेदविवक्षा मानकर तथा पुष्पसे वृक्ष व्याप्त होनेसे वृक्षका पुष्प यह व्यव-हार होता है, ऐसे ही आकाशके साथ भी वृक्षवत् पुष्प व्याप्त है, क्योंकि जब वृक्ष आदि सब कुछ आकाशमें हैं तो क्यों पुष्पकी [2]व्याप्ति आकाशमें नहीं है ? किन्तु पुष्पका सम्बन्ध आकाशके साथ अवश्य है इसलिये आकाशका पुष्प यह कथन युक्तिसे युक्त ही है। अब कदाचित् ऐसा कहो कि [3]मल्लिका वृक्षका तो उपकार पुष्पमें निज शाखा आदिमें धारण आदिसे है इसलिये मल्लिका वा मालतीका पुष्प ऐसा कथन होता है और आकाशका उपकार पुष्पके ऊपर कुछ नहीं है इसलिये आकाशका पुष्प ऐसा कथन योग्य नहीं है। ऐसी शंका नहीं करसकते, क्योंकि आकाशमें भी पुष्प तथा वृक्ष है इसलिये आकाशका पुष्प ऐसा व्यवहार होता है, क्योंकि जैसे वृक्ष अपने शाखा आदि देशमें रहनेको स्थान देता है ऐसे ही आकाश भी देता है। वही आकाशका उपकार है। उस उपकारसे आकाशका पुष्प यह कथन किसी प्रकारसे नहीं रुक सकता। किन्तु इसके विषयमें यह विशेषता है कि वृक्षसे तो पुष्प गिरके उससे पृथक् भी हो सकता है, परन्तु आकाशसे गिरकर कहां जायगा ? जहां वह पुष्प गिरेगा वहां ही आकाश विद्यमान है, इस कारण आकाशके साथ पुष्पका नित्य संबन्ध है, इसलिये आकाशका पुष्प यह कथन योग्य ही है।

यदि च—मल्लिकालताजन्यत्वान्मल्लिकाकुसुममित्युच्यते, तदाऽऽकाशस्यापि सर्वकार्येष्ववकाशप्रदत्वेन कारणत्वादाकाशकुसुममिति व्यवहारो दुर्वारः। अथाकाशापेक्षया पुष्पस्य भिन्नत्वान्नाकाशकुसुममिति व्यवहार इति चेत्—भिन्नत्वं किं कथंचित् सर्वथा वा ? आद्ये मल्लिकाकुसुममित्यपि व्यवहारो माभूत्, मल्लिका-पेक्षया कथञ्चिद्भिन्नत्वात्पुष्पस्य। अन्त्येत्वाकाशापेक्षया पुष्पस्य सर्वथाभिन्नत्वमसिद्धम्। द्रव्यत्वादिना कथंचिदभेदस्यापि सद्भावात्। तस्मान्मल्लिकाकुसुममाकाशकुसुममित्यनयोर्न कोपि विशेष इति सिद्धान्तस्या-स्तिनास्त्यात्मकत्वम्। इत्याहुः।

और यदि ऐसा कहो कि मल्लिकाकी लतासे उत्पन्न होनेसे मल्लिकाका पुष्प ऐसा कहा जाता है, क्योंकि मल्लिका लता मूल भागसे जल आदि आहारका आकर्षण करके वृद्धिको प्राप्त होकर अपनी शाखादिसे पुष्पको भी आहार आदि संप्रदानरूप उपकार करके उसको

१ भेड़ जिसके शरीरके रोमके कम्बल, दुशाले आदि बनते हैं. २ एक प्रकारका संबन्ध रहना अथवा स्थिति. ३ एक प्रकारका वृक्ष.

उत्पन्न करती है, यह कथन भी युक्त नहीं है, क्योंकि मल्लिका जब आहार आदि दानरूप उपकारसे पुष्पको उत्पन्न करती है तब आकाश भी सब कार्योंमें अवकाश संप्रदानरूप उपकारसे सब कार्योंका कारण है, इसलिये पुष्पको भी अपनेमें उत्पन्न तथा वृद्धिके लिये स्थान देनेसे आकाशका पुष्प यह व्यवहार भी [1]अनिवारणीय है। कदाचित् यह कहो कि आकाशकी अपेक्षासे पुष्प भिन्न पदार्थ है इसलिये आकाशका पुष्प यह व्यवहार नहीं हो सकता, तो इसका उत्तर यह है:-आकाशकी अपेक्षा पुष्पको कथंचित् भिन्न कहते हो अथवा सर्वथा भिन्न ? यदि प्रथम पक्ष है अर्थात् आकाशसे पुष्प कथंचित् भिन्न है, तो कथंचित् भिन्न होनेसे जैसे आकाशका पुष्प यह व्यवहार नहीं मानते हो, ऐसे ही मल्लिकाका पुष्प यह व्यवहार भी नहीं होगा, क्योंकि मल्लिकाकी अपेक्षासे भी पुष्प कथंचित् [2]भिन्न है और अन्तका पक्ष मानो, अर्थात् सर्वथा पुष्पको आकाशसे भिन्न मानो तो सर्वथा आकाशसे भिन्न नहीं हो सकता, क्योंकि [3]द्रव्यत्वआदिरूपसे कथंचित् आकाश और पुष्पका अभेद भी है, इस कारणसे मल्लिकाका पुष्प और आकाशका पुष्प इन दोनों व्यवहारोंमें कोई विशेष नहीं है अर्थात् अपेक्षामें दोनोंका कथन हो सकता है। इसलिये इस स्याद्वादसिद्धान्तमें सब पदार्थ अस्ति तथा नास्ति स्वरूप हैं ऐसा अन्यवादी कहते हैं।

अथ-अस्त्येव जीव इत्यत्रास्तिशब्दवाच्यादर्थाद्भिन्नस्वभावो जीवशब्दवाच्योऽर्थस्स्यात् अभिन्नस्वभावो वा ? यद्यभिन्नस्वभावस्तदा जीवशब्दार्थोऽस्तिशब्दार्थश्चैक एवेति सामानाधिकरण्यविशेषणविशेष्यभावादिकं न स्यात्। घटः कलश इत्यादि सामानाधिकरण्याद्यभाववत्। तदन्यतरपदाप्रयोगप्रसंगश्च। किं च-सत्वस्य सर्वद्रव्यपर्यायविषयत्वात्तदभिन्नस्वभावस्यापि जीवस्य तथात्वं प्राप्तमिति सर्वस्य तत्वस्य जीवत्वप्रसंगः। यदि पुनरस्तिशब्दवाच्यादर्थाद्भिन्नएव जीवशब्दवाच्योऽर्थः कल्प्यते, तदा जीवस्यासद्रूपत्वप्रसंगः। अस्तिशब्दवाच्यादर्थाद्भिन्नत्वात्। प्रयोगश्च नास्ति जीवः, अस्तिशब्दवाच्यापेक्षया भिन्नत्वात्, शशविषाणवत्। अस्तित्वस्य जीवाद्भिन्नत्ववत्सकलार्थेभ्योपि भिन्नत्वान्निराश्रयत्वादभावप्रसंगः। न च-जीवादिभ्यो भिन्नमप्यस्तित्वं समवायेन जीवादिषु वर्तत इति वाच्यं, तस्यान्यत्र निराकरणात्। इति चेत्, अत्रोच्यते। अस्तिशब्दवाच्यजीवशब्द-वाच्यार्थयोर्द्रव्यार्थादेशादभिन्नत्वम्, तयोः पर्यायार्थादेशाद्भिन्नत्वमित्यनेकान्तवादिनां न कोपि दोषः, तथा प्रतीतेः। इत्यग्रे व्यक्ती भविष्यति।

अब '**अस्ति एव जीवः**' कथंचित् जीव है इस वाक्यमें अस्ति शब्दके वाच्य[4] सत्त्वरूप अर्थसे जीव शब्दका वाच्य अर्थ भिन्न[5] स्वभाव है, अथवा अभिन्न स्वभाव है ? यदि द्वितीय पक्ष मानते हो अर्थात् अस्ति शब्दका वाच्यार्थ और जीव शब्दका वाच्य अर्थ अभिन्न

---

१ कठिनतासे निवारण करनेके योग्य. २ मल्लिकाके पुद्गल अन्य हैं और पुष्पके अन्य इसलिये दोनों भिन्न २ परमाणुओंसे बननेसे भिन्न हैं. ३ जैसे आकाश द्रव्य है ऐसे ही पुष्प भी पुद्गल द्रव्य है, इस प्रकार द्रव्यत्वरूप धर्मसे आकाश और पुष्प अभिन्न हैं. ४ जो शब्दसे कहा जाय। शब्द वाचक होता है और अर्थ उस शब्दसे कहा जाता है इससे वह वाच्य है, जैसे अस्ति शब्दसे सत्व. ५ अन्य स्वभाव सत्वसे अन्य स्वभाव असत्व (न होना) है. ६ एक स्वभाव.

स्वभाव है। ऐसा स्वीकार करते हो। तब तो जीव शब्दका अर्थ और अस्ति शब्दका अर्थ एक ही हुआ, यह वार्ता सिद्ध हुई तो इस रीतिसे जीव और अस्तिका समानाधिकरण्य[1] और [2]विशेष्यविशेषणभाव आदि संबन्ध नहीं होगा। जैसे घट कलश इत्यादि एक अर्थके वाचक[3] शब्दोंको सामानाधिकरण्य अथवा विशेष्यविशेषणभाव नहीं होता ऐसे ही जीव और अस्ति शब्दका भी नहीं होगा। और अस्ति तथा जीवका जब एक ही अर्थ है तब दोनोंमेंसे एक शब्दका प्रयोग नहीं करना चाहिये। क्योंकि एकमें ही दूसरेका अर्थ गतार्थ है। और दूसरी वात यह भी है कि संपूर्ण द्रव्य तथा पर्य्याय सत्वके विषय हैं अर्थात् सब सत्वरूप हैं। तब सत्वसे अभिन्न स्वभाव जो जीव है वह भी सब द्रव्य तथा सब पर्यायरूप प्राप्त हुआ तो इस रीतिसे सब पदार्थोंको जीव-रूपता प्राप्त हुई। और यदि इस दोषके निराकरणके लिये अस्ति शब्दके वाच्यार्थ सत्वसे भिन्न जीव शब्दका वाच्यार्थ मानते हो, तो सत्वसे भिन्न असत्वरूपता जीवकी प्राप्त हुई। क्योंकि अस्तिके वाच्यार्थ सत्वरूपसे भिन्न तो असत्व ही है और इस विषयमें ऐसा अनुमानका भी प्रयोग हो सकता है, कि जीव नहीं है। क्योंकि वह अस्ति शब्दके वाच्यार्थ सत्वसे भिन्न स्वरूप है जैसे शशका शृङ्ग, तथा अस्तिता जैसे जीवसे भिन्न है ऐसे ही संपूर्ण पदार्थोंसे भी भिन्न होनेसे अस्तितका[4] कोई आश्रय न होनेके कारण अभाव-बादकी प्राप्ति होगी। कदाचित् यह कहो कि यद्यपि अस्तित्व जीव आदिसे भिन्न स्वभाव है तथापि [5]वह समवाय सम्बन्धसे जीव आदिमें रहता है। तो यह भी नहीं कह सकते, क्योंकि समवाय संबन्धका इसी ग्रन्थके अन्य स्थानमें खंडन किया गया है। यदि ऐसी शंका जीव तथा अस्ति शब्दके वाच्यार्थ विषयमें की जाय, तो इसी विषयमें उत्तर कहते हैं;—कि अस्ति शब्द तथा [6]जीवशब्दके वाच्य अर्थ दोनों द्रव्यत्वरूप अर्थादेशसे अर्थात् द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे तो अभिन्नरूप हैं, और पर्य्यायरूप अर्थादेश अर्थात् पर्य्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे दोनोंके वाच्यार्थ भिन्नरूप हैं, इसलिये अनेकान्तवादी जैनोंके मतमें कोई दोष नहीं है। क्योंकि द्रव्यत्वरूपसे सब पदार्थ अभिन्न और पर्य्यायरूपसे भिन्न हैं। यही अनुभवसिद्ध है। यह विषय आगे चलकर स्पष्टरूपसे निरूपण किया जायगा।

इति प्रथमद्वितीयभंगद्वयं निरूपितम्।

इति द्विवेद्युपनामकाचार्योपाधिधारिठाकुरप्रसादशर्मविरचिता सप्तभङ्गितरंगिण्याः मङ्गद्वयव्याख्या समाप्ता.

---

१ एक आधारमें रहनेवाला धर्म्म जैसे अस्तित्व और जीवत्व ये दोनों एक आधार जीवमें रहते है. २ एक प्रकारका संबन्ध जैसे सत्व विशेषण जीवरूप विशेष्यमें रहता है सो नहीं बन सकता, क्योंकि ये दोनों एक ही हो गये. ३ अर्थको कहनेवाला. ४ सत्ता, जैसे अस्ति स्वभावसे जीव भिन्न है ऐसे अन्य पदार्थ भी हो सकते हैं तो सत्ताके आश्रय कैसे हो जाएंगे. ५ अस्तित्व वा सत्ता. ६ जीवके.

अथ तृतीयभंगस्तु निरूप्यते ।

घटस्स्यादस्ति च नास्ति चेति तृतीयः। घटादिरूपैकधर्मिविशेष्यकक्रमार्पितविधिप्रतिषेधप्रकारकबोध-जनकवाक्यत्वं तल्लक्षणम् । क्रमार्पितस्वरूपपररूपाद्यपेक्षयाऽस्तिनास्त्यात्मको घट इति निरूपितप्रायम् ।

अथ तृतीयभङ्गव्याख्या निरूप्यते.

"घटः स्यादस्ति च स्यान्नास्ति च" किसी अपेक्षासे घट है किसी अपेक्षासे नहीं है, यह तीसरा भङ्ग है। घटआदिरूप एक धर्म्मी विशेष्यवाला तथा क्रमसे योजित विधि प्रतिषेध विशेषणवाला जो बोध तादृश बोधका जनक वाक्यत्व यह तृतीय भङ्गका लक्षण है अर्थात् जिस ज्ञानमें घटआदिरूप एक पदार्थ विशेष्य हो और क्रमसे योजना किये हुए सत्व असत्व स्वरूप विशेषण हो ऐसा जो ज्ञान उस ज्ञानवाला जो वाक्य यह ही तृतीय भङ्गका लक्षण है। अब क्रमसे अर्पित अर्थात् योजितस्वरूप द्रव्य आदिकी अपेक्षासे अस्तित्वका आश्रय, और पररूप द्रव्य आदिकी अपेक्षासे नास्तित्वका आश्रय घट, यह तृतीय वाक्यार्थ होनेसे लक्षणसमन्वय होगया। प्रथम द्वितीय भङ्गकी व्याख्यामें भी प्रायः यह विषय निरूपित है ।

सहार्पितस्वरूपपररूपादिविवक्षायां स्यादवाच्यो घट इति चतुर्थः । घटादिविशेष्यका वक्तव्यत्वप्रकार-कबोधजनकवाक्यत्वं तल्लक्षणम् ।

इसी प्रकार सह अर्पित अर्थात् साथ ही [1]योजितस्वरूप द्रव्य आदि चतुष्टय तथा पररूप द्रव्य आदि चतुष्टयकी [2]विवक्षा करनेपर **'स्यादवक्तव्य एव घटः'** किसी अपेक्षासे घट [3]अवाच्य है यह चतुर्थ भङ्ग प्रवृत्त होता है। घट आदि पदार्थरूप विशेष्यवाला, और अवक्तव्यत्व विशेषणवाला जो बोध तादृश बोधका जनक वाक्यत्व, इस चतुर्थ भङ्गका लक्षण है, अर्थात् जिस ज्ञानमें घट आदिमेंसे कोई एक पदार्थ तो विशेष्य हो और अवक्तव्यत्व विशेषण हो उस ज्ञानको उत्पन्न करानेवाला जो वाक्य तादृश वाक्यता ही इस भङ्गका लक्षण है । इस रीतिसे कथंचित् अवक्तव्यत्वका आश्रयीभूत घट, ऐसा इस वाक्यसे अर्थज्ञान होता है ।

ननु—कथमवक्तव्यो घटः, इति चेदत्र ब्रूमः । सर्वोपि शब्दः प्रधानतया न सत्वासत्वे युग-पत्प्रतिपादयति, तथा प्रतिपादने शब्दस्य शक्त्यभावात्, सर्वस्य पदस्यैकपदार्थविषयत्वसिद्धेः । अस्तीतिपदं हि सत्तावाचकं नासत्वं प्रतिपादयति, तथा नास्तीतिपदमसत्ववाचकं न सत्तां बोधयति। अस्त्यादिपदस्या-स्तित्वनास्तित्वोभयधर्मवाचकत्वे च तदन्यतरपदाप्रयोगप्रसंगः ।

प्रश्नः—अवक्तव्य अर्थात् कहनेको अशक्य कैसे घट हो सकता है ? किसी न किसी रीतिसे सभी पदार्थ कहे जाते हैं। यदि ऐसी शंका की जाय तो यहांपर कहते हैं;—सब शब्द एक कालमें ही प्रधानतासे सत्व तथा असत्वको नहीं प्रतिपादन कर सकते, क्योंकि एक कालमें ही प्रधानतासे सत्व तथा असत्व दोनोंको [4]प्रतिपादन करनेकी शब्दमें [5]शक्ति ही

---

१ मिला हुआ. २ कहनेकी इच्छा ३ जो कहा नहीं जाय. ४ प्रगट करनेमें. ५ सामर्थ्य.

नहीं है। संपूर्ण शब्द एक कालमें प्रधानतासे एक ही पदार्थको अपना [1]विषय करके कहते हैं इसलिये एक पदार्थकी शक्ति एक ही पदार्थ विषय करनेवाली सिद्ध होती है। जैसे अस्ति यह पद सत्तारूप अर्थको ही कहता है, न कि असत्वरूप अर्थको, ऐसे ही नास्ति यह पद भी असत्वरूप अर्थको ही बोधित करता है न कि सत्तारूप अर्थको। यदि अस्ति आदिमेंसे एक ही पद सत्ता तथा असत्ता दोनों अर्थोंका वाचक हो तो इन अस्ति और नास्ति दोनों पदोंमेंसे एकका प्रयोग न करना चाहिये, क्योंकि जब एक ही पदसे सत्व और असत्व दोनों अर्थ कहेजाते हैं तब दोनों पदकी क्या आवश्यकता है? इससे यह वार्ता सिद्ध होगई कि एक शब्द वा पद एक कालमें प्रधानतासे एक ही अर्थको कह सकता है, न कि दो वा उससे अधिक।

ननु—सर्वेषां पदानामेकार्थत्वनियमे नानार्थकपदोच्छेदापत्तिः, इति चेन्न,—गवादिपदस्यापि स्वर्गाद्यनेकार्थविषयतया प्रसिद्धस्य तत्वतोऽनेकत्वात्, सादृश्योपचारादेव तस्यैकत्वेन व्यवहरणात्। अन्यथा-सकलार्थस्याप्येकशब्दवाच्यत्वापत्तेरर्थभेदेनानेकशब्दप्रयोगवैफल्यात्। यथैव हि समभिरूढनयापेक्षया शब्दभेदाद्ध्रुवोऽर्थभेदस्तथाऽर्थभेदादपि शब्दभेदस्सिद्ध एव। अन्यथा वाच्यवाचकनियमव्यवहारविलोपात्।

प्रश्नः—संपूर्ण पद एक ही अर्थके वाचक होते हैं, न कि अनेक अर्थके। यदि ऐसा नियम मानोगे तो नाना अर्थके वाचक जो शब्द हैं उनका उच्छेद ही हो जायगा। ऐसी शङ्का नहीं कर सकते हैं। क्योंकि गो आदि शब्द जो पशु पृथिवी किरण तथा स्वर्ग आदि अर्थके वाचकरूपसे प्रसिद्ध हैं, वे भी यथार्थमें अनेक ही हैं, किन्तु एक प्रकारके उच्चारण आदि धर्मोंकी समानतासे उनमें [2]एकत्वका व्यवहार लोकमें है, यदि ऐसा न मानो तो संपूर्ण एक ही शब्दके [3]वाच्य होनेसे अर्थभेद मानकर जो अनेक शब्दका प्रयोग किया जाता है वह व्यर्थ हो जायगा। क्योंकि समभिरूढ नयकी अपेक्षा जैसे शक्र इन्द्र पुरन्दर आदि शब्दभेदसे अर्थका भी भेद अवश्य माना गया है। ऐसे ही अर्थके भेदसे शब्दभेद भी सिद्ध ही है। ऐसा न माननेसे अर्थात् अर्थके भेद होनेपर भी शब्दका भेद न माननेसे वाच्य [4]वाचक जो नियम है उसका लोप हो जायगा।

---

१ भावार्थ यह है कि (सैन्धवमानय) नमक वा घोड़ा ला। यहां सैन्धव शब्द एक ही लवण वा घोड़ेरूप अर्थका वाचक है। भोजन समयमें लवण और गमन समयमें अश्वका वाचक है। न कि लवण और घोड़े दोनोंका। यदि वक्ताको दोनोंकी जरूरत होती तो (सैन्धवलवणे आनय) लवण तथा अश्व दोनों ला ऐसा कहता। इसलिये (सकृदुच्चरितः शब्द एकमेवार्थं गमयति) इस न्यायसे (सैन्धवमानय) इत्यादिमें सैन्धवादि शब्द एक ही अर्थके वाचक होते हैं. २ यद्यपि गो शब्द एक ही है तथापि "प्रत्युच्चारणं शब्दा भिद्यन्ते"। प्रतिवारके उच्चारणमें शब्दका भेद होता है, इस पक्षको लेकर शब्दका भेद माना है और वही गकार तथा ओकार पुनः उच्चारण किया है, इस उच्चारण—सादृश्यको लेकर एकता अथवा अभेद है. ३ अभिधेय अर्थात् प्रतिपाद्य पदार्थ. ४ शब्द तथा अर्थमें वाच्यवाचकभाव संबन्ध है, उसमें शब्द तो वाचक (कहनेवाला) और वाच्य (जो कहा जाय) अर्थ होता है। जैसे गो=ग्+ओ=गो, यह ग् तथा ओ वाचक है

एतेन—एकस्य वाक्यस्य युगपदनेकार्थविषयत्वं प्रत्याख्यातम्, स्यादस्तिनास्त्येव घटः—स्वरूपपररूपादिचतुष्टयाभ्यामिति वाक्यस्यापि क्रमार्पितोभयविषयधर्मतयोररीकृतस्य उपचारादेवैकत्वांगीकारात्। अथवा—तत्र क्रमशो विवक्षितं यदुभयप्राधान्यमेकं, तदेवास्तिनास्तिशब्दाभ्याममिहितमिति तादृशवाक्यस्यैकार्थाभिधायित्वादेवैकवाक्यत्वमिति न दोषः सर्वस्य वाक्यस्यैकक्रियाप्रधानतयैकार्थविषयत्वप्रसिद्धेरेकार्थबोधनशक्तिश्शब्दस्य सिद्धा। न हि शब्दानां वचनसामर्थ्यं सूचनसामर्थ्यं वाऽतिक्रम्यार्थबोधने प्रवृत्तिस्सम्भवति। अस्तिशब्दस्य हि सत्त्वमात्रवचने सामर्थ्यविशेषो नासत्त्वाद्यनेकधर्मवचने। निपातानां वाचकत्वपक्षे स्यादिति शब्दस्यानेकान्तसामान्यवचने सामर्थ्यविशेषो न पुनरेकान्तवचने, नाप्यनेकान्तविशेषवचने, तेषां द्योतकत्वपक्षे चानेकान्तसूचने सामर्थ्यविशेषो नान्यत्रेति वचनसूचनसामर्थ्यमतिक्रम्य शब्दप्रयोगो वृद्धव्यवहारेषु क्वापि न दृष्टचर इति॥

इस पूर्वोक्त कथनसे एक ही वाक्य समान कालमें अनेक पदार्थोंको कहता है यह कथन भी खण्डित हो गया। और **"स्यादस्ति नास्ति एव घटः"** किसी अपेक्षासे घट है और किसी अपेक्षासे नहीं है, इत्यादि वाक्य में भी क्रमसे योजित स्वरूप आदि चतुष्टय तथा पररूपादि चतुष्टय उपचारसे ही एक वाक्य और दूसरे अर्थके लिये दूसरा वाचक चाहिये इसलिये एक ही शब्द दूसरा अर्थ कहनेको दूसरा होजाता है। अथवा **"स्यादस्ति नास्ति एव"** इस वाक्यमें क्रमसे कथन करनेको अभीष्ट जो सत्त्व असत्त्व एतदुभयरूप एक प्राधान्य है, वही अस्ति तथा नास्ति शब्दसे कहागया है, इस रीतिसे उस वाक्यको एक अर्थ [1]वाचकता होनेसे एक वाक्यरूपता ही है, इसलिये कोई दोष नहीं है, क्योंकि सब वाक्योंकी एक क्रियाकी प्रधानतासे एक अर्थ विषयता सिद्ध होनेसे ही एक अर्थको बोध करानेकी शक्ति शब्दकी सिद्ध होती है। शब्दोंकी [2]कथनरूप शक्ति तथा [3]ज्ञापनरूप शक्तिको उल्लंघन करके अर्थ-बोध करानेमें प्रवृत्तिका संभव नहीं होसकता, अर्थात् वाचकरूप शक्ति तथा द्योतनरूप शक्तिके द्वारा ही संपूर्ण शब्द अर्थ-बोध करानेमें प्रवृत्त होते हैं। अस्ति इस शब्दकी सत्त्वमात्ररूप अर्थके कथनमें विशेष शक्ति है न कि असत्त्व आदिरूप अनेक अर्थोंके कथनमें। और इसी रीतिसे जब निपातोंका [4]वाचकत्व पक्ष है तब 'स्यात्' इस शब्दकी अनेकान्त सामान्यरूप अर्थके कथनमें [5]शक्ति विशेष है, न कि एकान्तरूप अर्थके अथवा अनेकान्त विशेषरूप अर्थके कहनेमें शक्ति है। और निपातोंके द्योतकत्व पक्षमें स्यात् शब्दकी अनेकान्तरूप अर्थके ज्ञापन करनेमें शक्ति विशेष है, न कि अन्य किसी अर्थके द्योतित करनेमें। इस रीतिसे कथन और सूचनरूप सामर्थ्यके सिवाय

और गौ पशुका मांस पिंडरूप अर्थ वाच्य है, दूसरे पृथिवी आदि अर्थरूप वाच्यका वाचक दूसरा ही गो शब्द समझा जाता है अत एव वाच्य वाचक नियमका निर्वाह होता है.

१ सत्त्व असत्त्व एतदुभयरूप अर्थ कहनेकी शक्ति. २ अभिधा अथवा वाचकता शक्ति. ३ लक्षण वा द्योतकतारूपसे पदार्थके सूचनकी शक्ति. ४ निपातोंकी वाचकता तथा द्योतकता दोनों पक्ष सिद्ध कर चुके हैं. ५ एक प्रकारका सामर्थ्य.

शब्दोंका उपयोग कहीं भी शब्दोंके व्यवहारमें दृष्टिगोचर नहीं होता, अर्थात् वाचकतारूप शक्ति अथवा द्योतकतारूप शक्तिको ही स्वीकार करके विद्वान् शब्दोंका प्रयोग करते हैं, अन्यथा नहीं।

ननु—यथासङ्केतं शब्दप्रवृत्तिदर्शनाद्युगपत्सदसत्त्वयोस्सङ्केतितश्शब्दस्तद्वाचकोऽस्तु, शतृशानचोर्द्वयोरसंकेतितसनितिसंज्ञाशब्दवत्; युगपच्चन्द्रसूर्ययोरसंकेतितपुष्पवन्तादिपदवद्वा। इति चेन्न;–संकेतस्यापि वाच्यवाचकशक्त्यनुरोधेनैव प्रवृत्तेः। न हि वाच्यवाचकशक्त्यतिलंघनेन संकेतप्रवृत्तिर्दृष्टचरी। यथा–कर्तुरयसो दारूलेखने शक्तिर्न तथा वज्रलेखनेस्ति, यथा वा वज्रलेखने तस्याशक्तिर्न तथा दारूलेखने, यथा च दारुणः कर्मणोऽयसा लेख्यत्वे शक्तिर्न तथा वज्रस्यास्ति, यथा वा वज्रस्य तत्राशक्तिर्न तथा दारुणोपीति, निश्चयः। एवं शब्दस्यापि सकृदेकस्मिन्नेवार्थे प्रतिपादनशक्तिरनेकस्मिन्नर्थे पुनः प्रतिपादनाशक्तिः, तथा–एकस्यैवार्थस्यैकपदवाच्यता शक्तिर्न पुनरनेकस्यापीति निश्चयः। पुष्पवन्तादिशब्दानामपि क्रमेणार्थद्वयप्रतिपादन एव सामर्थ्यमिति न दोषः॥

प्रश्नः—[1]संकेतके अनुसार ही शब्दोंकी प्रवृत्ति देखनेसे एक कालमें ही सत्त्व तथा असत्त्व इन दोनों अर्थोंमें अस्ति आदि शब्दका संकेत करनेसे दोनों ही अर्थोंका वाचक क्यों न अस्ति आदि शब्द हो? जैसे व्याकरण शास्त्रमें 'सन्' यह संज्ञा शतृ तथा शानच् इन दोनों प्रत्ययरूप अर्थमें संकेतित है, इसलिये धातुसे सन् संज्ञक प्रत्यय हो ऐसा कहनेसे शतृ और शानच् दोनों प्रत्ययोंके होनेसे "भवन्" तथा एधमानः, इत्यादि प्रयोग सिद्ध होते हैं और एक कालमें ही पुष्पवत् शब्दसे सूर्य तथा चन्द्रमाका बोध होता है। यदि ऐसा न हो तो पुष्पवन्तौ ऐसा कहनेसे एक कालमें ही सूर्य्य चन्द्रमाका ज्ञान कैसे हो? ऐसी शंका नहीं कर सकते, क्योंकि संकेत किये हुये शब्दोंको भी वाच्य [2]वाचक शक्तिके अनुसार ही प्रवृत्ति होती है, कहीं भी वाच्य वाचक शक्तिका उल्लंघन करके संकेतकी प्रवृत्ति दृष्टिगोचर नहीं होती। जैसे लोहरूप कर्ताकी काष्ठके छेदन भेदन आदि कार्य्यमें शक्ति है ऐसी वज्रके छेदन भेदन आदिमें नहीं है, और जैसे वज्रके छेदन भेदन तथा लेखनमें शक्तिका अभाव है ऐसे ही काष्ठके छेदन भेदनादिमें शक्तिका अभाव नहीं है, और जैसे काष्ठरूप कर्ममें यह शक्ति है कि लोहेसे खुदजाना वा छेदित होना ऐसी वज्ररूप कर्म्ममें नहीं है कि लोहेसे छिन्न भिन्न वा [3]लिखित हो, यह निश्चय है। इसी प्रकार शब्दमें भी एक कालमें एक ही अर्थकी कथनकी शक्ति है

---

१ इस शब्दसे यह अर्थ बोधित करना चाहिये इस प्रकारका अनादि कालका ईश्वरीय अथवा मानवीय संकेत (इसारा). २ जो शब्द जिस अर्थमें जिन जिन शास्त्रकी परिभाषाके अनुसार संकेतित है, उस संकेत किये हुये अर्थमे ही (उस संकेत किये अर्थको ही कहनेमें) उस शब्दकी वाचकता शक्ति है न कि अन्य अर्थमें ३ लिखाजाय, संसारके पदार्थोंमें भी जहां जैसी शक्ति प्रकृतिके नियमसे स्थिर है उसीके अनुसार व्यवहार होता है.

न कि एक कालमें अनेक अर्थोंकी कथनकी शक्ति। और जैसे शब्दमें यह शक्ति है कि वह एक कालमें एक ही अर्थको कहे। ऐसे ही अर्थमें भी यह शक्ति है कि [1]वह एक ही शब्दका वाच्य हो अर्थात् एक ही शब्दसे कहाजाय। शब्द तथा अर्थकी शक्तिसे यही निश्चय होता है। और 'पुष्पवन्तौ' इत्यादि शब्दोंमें जो सूर्य चन्द्र आदि दो अर्थके बोधन करनेकी शक्ति है वह भी क्रमसे अथवा शब्दकी आवृत्तिसे है, इसलिये कोई दोष नहीं है।

ननु—सेनावनयुद्धपंक्तिमालापानकग्रामनगरादिशब्दानामनेकार्थप्रतिपादकत्वं दृष्टमिति चेन्न;—करितुरगरथपदातिसमूहस्यैवैकस्य सेनाशब्देनाभिधानात्, वृक्षसमूहस्य वनशब्देन, पुष्पसमूहस्य मालाशब्देन, गुडादिद्रव्यसमूहस्य पानकशब्देन, प्रासादादिसमूहस्य नगरशब्देन, चाभिधानान्नैकशब्देनानेकार्थप्रतिपादनं दृश्यते।

प्रश्नः—सेना, वन, युद्ध, पंक्ति, माला, तथा पानक, इत्यादि शब्दोंकी अनेक अर्थ कहनेकी शक्ति दृष्ट है, क्योंकि सेनासे अश्व हस्ति आदि, वनसे अनेक प्रकारके वृक्ष आदि, युद्धसे अनेक प्रकार शस्त्र अस्त्रका चलना, प्राणका वियोग, जय पराजय आदि अनेक व्यापाररूप, पंक्तिसे अनेक पदार्थोंकी श्रेणि, मालासे अनेक प्रकारके मणि आदि, और पानकसे अनेक प्रकारके विलक्षण रसके स्वाद तथा नाम, नगर आदिसे अनेक प्रकारके मनुष्य आदि अर्थोंका बोध होता है, इसलिये यह शब्द एक कालमें ही अनेक अर्थोंको कहते हैं, तो एक शब्द एक ही अर्थको कहता है यह सिद्धान्त नहीं बन सकता। सो ऐसी शंका भी नहीं कर सकते;—क्योंकि हस्ती, अश्व, रथ, तथा पैदल मनुष्य आदिका समूहरूप, एक ही अर्थ सेना शब्दसे कहा जाता है, ऐसे ही वन शब्दसे अनेक प्रकारके वृक्षोंका समूह, माला शब्दसे पुष्प अथवा मणि आदिका समूह, युद्ध शब्दसे शस्त्र अस्त्रादिकका व्यापार, पंक्ति शब्दसे श्रेणीबद्ध पदार्थ, पानक शब्दसे गुड़ आदि द्रव्योंसे विलक्षण रसका समूह, तथा नगर ग्राम आदि शब्दसे गृह अट्टालिका आदिका समूहरूप, एक ही अर्थ कहा जाता है, इसलिये सेना आदि शब्दोंको भी अनेक अर्थोंकी [2]प्रतिपादनशक्ति नहीं देख पड़ती।

नन्वेवं—वृक्षाविति॰दं वृक्षद्वयबोधकं वृक्षा इति च बहुवृक्षबोधकं कथमुपपद्यत इति चेत्? पाणिन्यादीनामेकशेषारम्भाज्जैनेन्द्राणामभिधानस्य स्वाभाविकत्वादिति ब्रूमहे। तत्रैकशेषपक्षे द्वाभ्यामेव वृक्षशब्दाभ्यां वृक्षद्वयस्य बहुभिरेव वृक्षशब्दैर्बहूनां वृक्षाणामभिधानान्नैकशब्दस्य सकृदनेकार्थबोधकत्वम्। लुप्तावशिष्टशब्दयोः साम्याद्वृक्षरूपार्थस्य समानत्वाच्चैकत्वोपचारात्तत्रैकशब्दप्रयोगोपपत्तिः। अभिधानस्य स्वाभाविकत्वपक्षे च वृक्षशब्दो द्विबहुवचनान्तः स्वभावत एव द्वित्वबहुत्वविशिष्टं वृक्षरूपार्थमभिदधाति। वृक्षावित्यत्र हि वृक्षत्वावच्छिन्नो वृक्षशब्दार्थः, द्वित्वं च द्विवचनार्थः, प्रत्ययार्थस्य प्रकृत्यर्थेऽन्वयात् द्वित्वविशिष्टौ वृक्षाविति बोधः। वृक्षा इत्यत्र च बहुवचनार्थो बहुत्वमिति बहुत्वविशिष्टा वृक्षा इति बोधः।

---

१ अर्थ, जैसे शब्द किसी विशेष अर्थके कहनेमे नियत है ऐसे ही अर्थ भी खास अपने वाचक शब्दसे ही कहाजाता है. २ शब्दोंमें अर्थ कहनेकी सामर्थ्य.

प्रश्नः—पूर्वोक्त रीति स्वीकार करने पर भी । [1]वृक्षौ इस पदके कहनेसे दो वृक्षका तथा [2]वृक्षाः, ऐसा पद कहनेसे बहुत वृक्षोंका ज्ञान कैसे होता है ? यह शंका भी निष्फल है। क्योंकि व्याकरण शास्त्रके आचार्य्य श्री पाणिनि आदि ऋषियोंके मतसे तो यहां [3]एकशेष आरम्भ किया है, अर्थात् जब वृक्ष आदि शब्दके आगे द्विवचन 'औ' आदि विभक्ति लगाई जाती हैं तब 'वृक्ष वृक्ष' ऐसे दो वृक्ष शब्द आते हैं और बहुवचन 'जस्' आदि विभक्ति जब लगाई जाती हैं तब 'वृक्ष वृक्ष वृक्ष वृक्ष' ऐसे बहुत शब्द आते हैं उनमेंसे द्विवचनमें तो एक वृक्ष शब्दका लोप हो जाता है और एक वृक्ष रह जाता है तथा बहु वचनमें भी जो बहुत शब्द लिये जाते हैं उन सब शब्दोंका लोप होजाता है, इस प्रकारसे उन सब शब्दोंका लोप करके एक शेष रहता है इसे दो वृक्ष वा अनेक वृक्षका बोध होता है और जैनेन्द्र व्याकरणके मतमें तो जस् आदि विभक्तिके सन्निधानमें दो अथवा अनेक वृक्ष आदिरूप अर्थके कहनेकी शब्दमें ही शक्ति मानी है ऐसा कहते हैं । इन [4]दोनोंमेंसे एक शेष पक्षमें दो वृक्ष शब्दोंसे ही दो वृक्षरूप अर्थका तथा बहुत वृक्ष शब्दोंसे अनेक वृक्षरूप अर्थका कथन होनेसे एक शब्दको एक कालमें अनेक अर्थ बोधकता नहीं है, क्योंकि जिस शब्दका लोप होगया है उस शब्द तथा जो शेष है उनकी समानता है । वृक्षरूप अर्थके समान होनेसे वहांपर एकत्वका उपचार मानके एक ही वृक्ष शब्दका प्रयोग किया जाता है, तात्पर्य्य यह है कि एकशेष पक्षमें जो शब्द शेष रह जाता है वही [5]लुप्त हुये शब्दोंके अर्थको कहता है, अर्थात् एक ही शेष वृक्ष शब्द अनेक दो वृक्षोंके स्थानमें समझा जाता है, और जैन मतके अनुसार स्वाभाविक द्वित्व वा बहुत्वरूप अर्थके कथन पक्षमें भी द्विवचनान्त वृक्ष शब्द द्वित्व संख्या सहित वृक्ष तथा बहुवचनान्त वृक्ष शब्द बहुत्व संख्या सहित वृक्षरूप अर्थको स्वभावसे ही कहता है, "वृक्षौ" यहांपर वृक्षत्व धर्मसे अवच्छिन्न अर्थात् सहित वृक्ष यह तो वृक्ष शब्दका अर्थ है और द्वित्वरूप अर्थ "औ" द्विवचनकी विभक्तिका अर्थ है, [6]प्रत्ययके अर्थ द्वित्वका [7]प्रकृतिके अर्थ वृक्षमें अन्वय होता है, इसलिये द्वित्व सहित वृक्ष अर्थात् दो वृक्ष यह 'वृक्षौ' इस शब्दका अर्थ होता है, और इस रीतिसे "वृक्षाः" यहांपर बहुत्वरूप अर्थ बहुवचन प्रत्ययका है उसका भी प्रकृत्यर्थ वृक्षमें [8]अन्वय होता है इसलिये बहुत्व सहित वृक्ष, अर्थात् बहुत वृक्ष यह अर्थ वृक्षाः इस पदका होता है ।

---

१ शब्दोमेंसे अनेक अर्थ कहनेकी शक्ति नहीं है तो एक वृक्ष शब्द दो वृक्षरूप अर्थोंको कैसे कह सकता है इसी अभिप्रायसे शंका है वृक्ष शब्दके आगे द्वित्वरूप अर्थको प्रकट करनेवाली औ विभक्ति आती है वृक्ष० औ=वृद्धि होनेसे वृक्षौ. २ वृक्ष शब्दके आगे जस् विभक्ति लगानेसे वृक्ष+अस्=पुनः दीर्घ तथा सकारको विसर्ग होनेसे वृक्षाः होता है. ३ एक विभक्तिमें समान आकारवाले जितने शब्द आते हैं उनमेंसे एक शब्द शेष रहता है और सबका लोप होता है उसीमें अन्य अर्थका बोध होता है इसीको एकशेष कहते हैं. ४ एकशेष तथा स्वाभाविक द्वित्व बहुत्वरूप अर्थका कथन इन दोनों पक्षोंमें. ५ एकको शेष रखकर बाकी सब लोप दशाको प्राप्त शब्द, (यः शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायी) जो शब्द शेष रहता है वह

यद्यपि द्वितीयपक्ष एकस्यैव वृक्षपदस्यानेकवृक्षबोधकत्वं प्राप्तम् । तथाप्यनेकधर्मावच्छिन्नार्थबोधकत्वमेकपदस्य नास्तीति नियमः । एवं च वृक्षा इति बहुवचनान्तेनापि वृक्षपदेन वृक्षरूपैकधर्मावच्छिन्नस्यैव बोधो नान्यधर्मावच्छिन्नस्य । तथा चास्त्यादिपदेनाप्यस्तित्वादिरूपैकधर्मावच्छिन्नस्य बोधः सम्भवति, न तु नास्तित्वादिधर्मान्तरावच्छिन्नस्येति ॥

यद्यपि द्वितीय पक्षमें अर्थात् जैनेन्द्रके अनुसार द्विवचनान्त बहुवचनान्त वृक्षादि शब्द ही स्वभावसे द्वित्व और बहुत्व संख्या सहित वृक्ष आदिके बोधक हैं यह वार्ता प्राप्त है तथापि अनेक धर्म्मसे अवच्छिन्न अर्थबोधकता एक पदको नहीं है, इस रीतिसे 'वृक्षौ' तथा 'वृक्षाः' इत्यादि द्विवचनान्त तथा बहुवचनान्त वृक्षपदसे वृक्षत्वरूप जो एक धर्म्म उस धर्म्मसे [1]अवच्छिन्न एक वृक्षरूपका ही भान होता है, न कि किसी अन्य धर्म्मसे अवच्छिन्न पदार्थका । 'इसी प्रकारसे' अस्ति आदि पदसे भी अस्तित्वरूप एक धर्म्मसे अवच्छिन्न पदार्थका ही एक कालमें ज्ञान संभव है न कि नास्तित्व आदि अन्य धर्म्मसे अवच्छिन्न पदार्थका ।

ननु—वृक्षा इति प्रत्ययवती प्रकृतिः पदम्, "सुप्तिङन्तं पदम्" इति वचनात् । तथा च वृक्षा इति बहुवचनान्तेन बहुत्ववृक्षत्वरूपानेकधर्मावच्छिन्नस्य बोधादेकपदस्यानेकधर्मावच्छिन्नबोधकत्वं नास्तीति नियमस्य भंगप्रसंगः । तदुक्तम्—"अनेकमेकं च पदस्य वाच्यं वृक्षा इति प्रत्ययवत्प्रकृत्या ।" इति ।

प्रश्नः—'वृक्षाः' यहांपर 'जस्' प्रत्यय सहित जो प्रकृति वृक्ष है उसको पद कहते हैं, [2]सुवन्त तथा [3]तिन्ङन्तकी [4]पद संज्ञा होती है, ऐसा जैनेन्द्र तथा पाणिनि ऋषिका भी वचन है, तव "वृक्षाः" इस बहुवचनान्त पदसे बहुत्व तथा वृक्षत्वरूप जो अनेक धर्म्म, उस धर्म्मसे अवच्छिन्न वृक्ष अर्थका ज्ञान होनेसे एक पदको अनेक धर्म्म सहित अर्थबोधकता नहीं है इस नियमका भंग प्राप्त हुआ ।

ऐसा अन्यत्र कहा भी है;—

एक तथा अनेक अर्थ भी पदका वाच्य होता है, जैसे "वृक्षाः" यहां प्रत्यय सहित वृक्षरूप प्रकृतिसे बहुत संख्या युक्त वृक्षरूप अर्थ ?

इति चेत्सत्यम्,—एकपदस्य प्रधानतयाऽनेकधर्मावच्छिन्नबोधकत्वं नास्तीति नियमस्योक्तत्वात् । प्रकृते च प्रथमतो वृक्षशब्दो वृक्षत्वरूपजात्यवच्छिन्नं द्रव्यं बोधयति । ततो लिंगं संख्यां चेति शाब्दबोधः क्रमेणैव जायते ।

लोप हुये शब्दोंके अर्थको कहता है । ऐसा एकशेष माननेवाले वैयाकरणोंका सिद्धान्त है. ६ जो नाम अथवा धातुके आगे लगाया जाता है, जैसे सु औ जस् ति तः आदि. ७ जिसके आगे प्रत्यय आते हैं जैसे वृक्ष भू आदि मूल भाग. ८ सम्बन्ध.

१ वृक्षको अन्य पदार्थसे पृथक् करनेवाले वृक्षत्व धर्म्मसहित यही अर्थ जहां २ अवच्छिन्न शब्द आवे वा आया हो सर्वत्र समझ लेना. २ नामकी प्रत्यय सु औ जस् आदिसे सुप् तक । जिनके अन्तमें सुप् हो वह सुवन्त कहलाता है. ३ ति, तस् अन्ति आदिसे यहि वहिङ् तक धातुकी प्रत्यय जिसके अन्तमें हो वह तिङन्त कहाता है. ४ सुप्तिङन्तं पदम् ।१।४।१४। पाणिनीयके सूत्रसे पदसंज्ञा होती है.

यदि ऐसी शंका करो तो यथार्थ है, परन्तु एक पद प्रधानतासे एक ही कालमें अनेक धर्म्मसे अवच्छिन्न पदार्थका बोधक नहीं होता, ऐसा नियम हमने कहा है, तो इस प्रकृत प्रसंगमें देखिये कि प्रथम वृक्ष शब्द एक वृक्षत्वरूप जातिसे वा वृक्षत्वरूप एक धर्म्मसे अवच्छिन्न वृक्षरूप द्रव्यका ज्ञान कराता है, पश्चात् लिंग और संख्याका इस प्रकार शाब्द बोध अर्थात् शब्दजन्य ज्ञान क्रमसे ही होता है, वृक्षत्व धर्म्मयुक्त वृक्ष पुंलिंग तथा बहुत संख्या युक्त है ऐसा अर्थ "वृक्षाः" इस पदसे होता है।

तदुक्तम्—

यह विषय अन्यत्र भी कहा है—

"स्वार्थमभिधाय शब्दो निरपेक्षो द्रव्यमाह समवेतम्। समवेतस्य तु वचने लिंगं संख्यां विभक्तियुक्तस्सन्।" इति।

शब्द प्रथम जाति वा धर्म्मरूप अर्थको अर्थात् वृक्ष शब्द वृक्षत्व जीव शब्द जीवत्व घट शब्द घटत्वरूप अर्थको कहकर, लिंग संख्या आदिसे निरपेक्ष होकर उस जीवत्व वृक्षत्व तथा घटत्व धर्म्मसे युक्त द्रव्यरूप अर्थको कहता है, और पुनः उन २ वृक्षत्व आदि धर्म्मोंसे समवेत अर्थात् सहित पदार्थका कहना होता है तब विभक्तिसे युक्त होकर पुंलिंग आदि लिंग तथा एकत्व द्वित्व तथा बहुत्वरूप संख्यारूप अर्थको कहता है।

एवं च प्रधानभावेन वृक्षत्वावच्छिन्नस्य प्रतीतिर्गुणभावेन बहुत्वसंख्याया इति न कश्चिद्दोषः।

इस प्रकारका सिद्धान्त होनेसे 'वृक्षाः' इत्यादि पदसे वृक्षत्व धर्म्मसे अवच्छिन्न पदार्थका बोध तो प्रधानतासे होता है और लिंग तथा बहुत्व संख्याका गौणतासे, इसलिये एक पद एक कालमें प्रधानतासे एक ही धर्म्माऽवच्छिन्न पदार्थका ज्ञान सर्वत्र कराता है, इसलिये सिद्धान्त वा नियममें कोई दोष नहीं है।

अथैकस्य पदस्य वाक्यस्य वा प्रधानभावेनानेकधर्मावच्छिन्नवस्तुबोधकत्वानंगीकारे प्रधानभावेनाशेषधर्मात्मकस्य वस्तुनः प्रकाशकं प्रमाणवाक्यं कथमुपपद्यते ? इति चेत्—कालादिभिरभेदवृत्त्याऽभेदोपचारेण वा द्रव्यपर्यायनयार्पितेन सकलस्य वस्तुनः कथनात्। इति निरूपितं प्राक्।

यदि एक पद अथवा एक वाक्यसे प्रधानतासे अनेक धर्म्मसे अवच्छिन्न वस्तुकी बोधकता इस पक्षको नहीं स्वीकार करते हो, अर्थात् एक पद वाक्य एक ही धर्म्मसे अवच्छिन्न वस्तुका बोध कराता है, यही नियम है तब प्रमाण वाक्य अशेष सम्पूर्ण अथवा अनेक धर्म्मस्वरूप वस्तुका प्रकाशक कैसे हो सकता है। यदि ऐसा कहो तो—काल, आत्मस्वरूप तथा अर्थ आदिके द्वारा द्रव्यार्थ नयकी अपेक्षासे अभेद वृत्तिसे, और पर्य्यायार्थक नयकी अपेक्षासे प्रमाण वाक्यसे सम्पूर्ण वस्तुका कथन होता है यह विषय पूर्व प्रसंगमें पूर्ण रीतिसे निरूपित कर चुके हैं।

ननु 'सत्त्वासत्त्वे' इति द्वन्द्वसमासपदं सत्त्वासत्त्वयोः प्राधान्येन बोधकम् । "उभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः" इति वचनात्, एवं च कथमवाच्यत्वं सदसत्त्वात्मकवस्तुनः ? इतिचेन्न–द्वन्द्वस्यापि क्रमेणैवार्थद्वय-प्रत्यायनसमर्थत्वेन गुणप्रधानभावस्य तत्रापि सत्त्वात् । अत एव–"अभ्यर्हितं पूर्वम्" इति प्रधानभूतार्थस्य पूर्वनिपातानुशासनं संगच्छते । अस्तु वा द्वन्द्वे उभयस्यापि प्राधान्येन बोधः । अथापि प्रधानभावेनास्तित्व नास्तित्वोभयावच्छिन्नस्य धर्मिणः प्रतिपादकशब्दाभावादवाच्यत्वमक्षतम् ।

प्रश्न:—[१]"सत्त्वासत्त्वे" यह [२]द्वन्द्व समाससे सिद्ध पद प्रधानतासे सत्त्व तथा असत्त्वरूप अर्थका बोधक है । क्योंकि द्वन्द्व समासमें दोनों [३]पद अथवा अधिक पद प्रधान होते हैं ऐसा वचन है इस प्रकारसे तत्त्व तथा असत्त्व धर्म सहित वस्तुकी अवाच्यता कैसे होसकती है अर्थात् जब व्याकरण शास्त्रसे द्वन्द्व समास सिद्ध पद दो अर्थोंको प्रधानसे कह सकता है तब 'स्यात् अवक्तव्य एव' यह चतुर्थ भङ्ग नहीं बन सकता ? ऐसी शंका नहीं कर सकते क्योंकि द्वन्द्व समासको भी क्रमसे ही दो अथवा दोसे अधिक अर्थोंके बोध करानेमें सामर्थ्य है, मुख्यता तथा गौणताका भाव द्वन्द्व समासमें भी विवक्षित है । "इसी हेतुसे [४]"अभ्यर्हितम् पूर्वम्" पूजित अथवा श्रेष्ठ वा प्रधान जो होता है वह द्वन्द्व समासमें सबसे पूर्व रक्खा जाता है इस रीतिसे ही प्रधानभूत जो अर्थ है उसके पूर्व नियत करनेकी आज्ञा शास्त्रकारकी संगत होती है. यदि किसीकी एककी इस समासमें प्रधानता नहीं होती तो [५]प्रधानके पूर्व नियम रखनेका नियम व्याकरणमें कैसे किया जाता, अथवा द्वन्द समासमें उभय पदार्थकी प्रधानताहोसे बोध होता है, ऐसा माननेसे भी हमारी कोई हानि नहीं है । क्योंकि प्रधानतासे अस्तित्व तथा नास्तित्व इन [६]उभय धर्म सहित पदार्थ-का [७]प्रतिपादक धर्मी कोई शब्द नहीं है इसलिये अवाच्यस्वरूप पूर्ण रीतिसे है अर्थात् स्यात् अवक्तव्यः' इस हमारे चतुर्थ भङ्गकी सिद्धिमें कोई क्षति नहीं है ।

न च—'सदसत्त्वविशिष्टं वस्तु' इत्यनेन द्वन्द्वगर्भिततत्पुरुषेण सदसत्त्वविशिष्टपदेन तदुभयधर्मा-वच्छिन्नस्य वस्तुनो बोधसम्भवादिति वाच्यं, तत्र सदसत्त्ववैशिष्टचस्यैव प्रधानतया तयोरप्रधानत्वात् । "उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषः" इति वचनात् । तस्मात्सकलवाचकरहितत्वात्स्यादवक्तव्यो घट इति सिद्धम् ॥

सत्त्व असत्त्व [८]विशिष्ट वस्तु, द्वन्द्व समासको गर्भमें रखनेवाले तत्पुरुष समाससे सदसत्त्व

---

१ सत्त्व और असत्त्व, 'सत्त्वं च असत्त्वं च' इस प्रकार द्वन्द्व समास करनेसे 'सत्त्वासत्त्वे' यह पद बनता है. २ उभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः, इस वाक्यमें उभय पद अनेकका भी उपलक्षण है क्योंकि द्वन्द्व समास अनेक पदोंका भी होता है. ३ जहाँ दो ही पदका द्वन्द्व हो वहां दोको प्रधानता, अनेकमें सबको प्रधानता रहती है. ४ यह वचन (अल्पाच् तरम्) २।२।३४। पाणिनीयाष्टके अल्पाच्वाले शब्दका पूर्व निपात होता है इसका वार्तिक है अभ्यर्हितके पूर्व निपातका उदाहरण तापसपर्वतौ है ५ अभ्यर्हितके अर्थ प्रधान वा मुख्य मानके यह कथन किया है ६ अस्तित्व नास्तित्व दोनों. ७ कहनेवाला, वाचक. ८ सत्त्व असत्त्व दोनों धर्म्म सहित पदार्थ.

विशिष्ट इस पदसे सत्व तथा असत्व, इन दोनों धर्म्मोंसे सहित वस्तुका बोध संभव है, इस रीतिसे अवक्तव्यत्व भंग नहीं बन सकता। ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि सदसत्त्व विशिष्ट इस पदमें सत्त्व और असत्त्वके वैशिष्टयकी ही प्रधानता है, अर्थात् सत्त्व और असत्वसे सहित जो वस्तु है, उसीका प्रधानतासे बोध होता है, न कि सत्त्व और असत्त्व इन दोनों धर्म्मोंका, क्योंकि वे अप्रधान हैं, तत्पुरुष समासमें उत्तर पदार्थ प्रधान रहता है। ऐसा व्याकरण शास्त्रका वचन है। इस कारण सदसत्त्वका सर्वथा वाचक पद न होनेसे 'स्यात् अवक्तव्यश्च घटः" कथंचित् घट अवाच्य है, यह भङ्ग निर्विवाद सिद्ध है,

तच्च न सर्वथैवावक्तव्यम्, अवक्तव्यशब्देनास्य वक्तव्यत्वात्। अतस्स्यादवक्तव्यो घट इति चतुर्थभङ्गः। इति केचिद्व्याचक्षते। तत्रेदं चिन्त्यम् अवक्तव्यशब्दस्याभिधेयं किमिति।

वह अवक्तव्यरूप अर्थ भी सर्वथा ही अवाच्य नहीं है क्योंकि अवक्तव्य शब्दसे वह कहा जाता है, इसी कारणसे "स्याद् अवक्तव्यः घटः" यह चतुर्थ भङ्ग बनता है। ऐसा कोई कहते हैं, अब इस कथनके विषयमें यह विचारना चाहिये कि अवक्तव्य शब्दका वाच्यार्थ क्या है, अर्थात् इस अवक्तव्य शब्दसे क्या पदार्थ कहा जाता है।

न च–प्रधानभूतसदसत्त्वरूपधर्मावच्छिन्नं वस्तु अवक्तव्यशब्देनाभिधीयत इति वाच्यम्; तथा सति तस्य सकलवाचकरहितत्वक्षतेः, अवक्तव्यशब्दस्य तद्वाचकस्य सत्त्वात्, एकपदस्य प्रधानभूतानेकधर्मावच्छिन्न-वस्तुबोधकत्वं नास्तीति नियमस्य भंगप्रसंगाच्च।

कदाचित् यह कहो कि प्रधानता दशाको प्राप्त सत्व असत्व जो धर्म्म हैं। उन धर्म्मों करके सहित पदार्थ अवक्तव्य शब्दसे कहा जाता है, सो यह नहीं कह सकते, यदि ऐसा स्वीकार करोगे तो प्रधानभूत सदसत्त्वका एक कालमें कोई वाचक नहीं है किन्तु वह सकल वाचक शब्दसे रहित है, इसी नियमका भङ्ग होगा क्योंकि अवक्तव्य शब्द [1]उसका वाचक विद्यमान है, और एक पद एक ही कालमें प्रधानभूत अनेक धर्म्म सहित वस्तुका बोधक नहीं है, इस नियमका भी भंग होगा,

किञ्च–यथाऽवक्तव्यमिति पदं सांकेतिकं तादृशोभयधर्मावच्छिन्नस्य वाचकं, तथा सांकेतिकमन्यदपि तद्वाचकं कुतो न भवति?

और दूसरी एक बात यह भी है कि जैसे [2]संकेत सिद्ध होनेसे अवक्तव्य यह शब्द सत्त्व असत्त्व उभय धर्म्मोंसे अवच्छिन्न वस्तुका वाचक है ऐसे ही संकेतसे सिद्धि अन्य शब्द भी इस अर्थका वाचक क्यों नहीं होता?

ननु–अन्यस्य सांकेतिकपदस्य क्रमेणैतादृशधर्मावच्छिन्नवस्तुबोधकत्वमिति चेत्; अवक्तव्यपदस्यापि युगपत्तद्वाचकत्वं माभूत्। यथा–सांकेतिकपदान्तरेण सत्त्वासत्त्वादिधर्माव-च्छिन्नं वस्तु क्रमेण प्रतीयते, तथाऽवक्तव्यपदेनापि, उभयोर्विशेषाभावात्। अवक्तव्यपदेन हि

---

१ सत्व असत्व इस उभय धर्म्म सहित पदार्थका कहनेवाला शब्द. २ इस शब्दसे अमुक अर्थका ज्ञान हो ऐसे संकेतसे सिद्ध शब्द.

वक्तव्यत्वाभावरूपधर्मावच्छिन्नं वस्तु प्रतीयते, न तु सत्वासत्वादिरूपानेकधर्मावच्छिन्नं वस्त्विति सर्वानुभव-साक्षिकमेतत् ।

यदि ऐसा कहो कि अन्य जो संकेत सिद्ध पद है उसको क्रमसे ही सत्त्व असत्त्व धर्म्मसे अवच्छिन्न वस्तुकी बोधकता है, तो अन्य पदके समान अवक्तव्य इस पदको भी एक कालमें ही सत्व तथा असत्व धर्म्मसे अवच्छिन्न वस्तुकी [1]बोधकता नहीं हो सकती। जैसे अन्य सांकेतिक[2] पदसे सत्व तथा असत्व धर्म्म सहित पदार्थका ज्ञान क्रमसे ही होता है, ऐसे ही अवक्तव्य इस पदसे भी क्रमसे उसका ज्ञान होता है। क्योंकि जब दोनों संकेत सिद्ध हैं तब एकमें कोई विशेषता नहीं है, किन्तु अवक्तव्य इस पदसे वक्तव्यत्वका अभावरूप जो धर्म्म है उस वक्तव्यत्वाऽभावरूप धर्म्म सहित पदार्थ भासता है, न कि सत्व असत्व इन उभय धर्म्म सहित पदार्थ। इस विषयमें सब विद्वानोंका अनुभव ही साक्षी है।

अथैवम्—

अब इस विषयमें यदि यह कहो—

" उक्तिश्चावाच्यतैकान्तेनावाच्यमिति युज्यते । "

"अवाच्यताका जो कथन है वह एकान्तरूपसे अकथनीय है, ऐसा माननेसे अवाच्यता युक्त न होगी।

इति स्वामिसमन्तभद्राचार्यवचनं कथं संघटते ? सत्वासत्वविशिष्टस्य वस्तुनस्सर्वथाऽवाच्यत्वे तस्या वाच्यशब्देनापि वाच्यत्वं न स्यादिति तत्र प्रतिपादनात्, इति चेन्न; तदर्थापरिज्ञानात् । अयं खलु तदर्थः, सत्वाद्येकैकधर्ममुखेन वाच्यमेव वस्तु युगपत्प्रधानभूतसत्वासत्वोभयधर्मावच्छिन्नत्वेनावाच्यम्, तादृशवस्तुनः सत्वाद्येकधर्ममुखेनाप्यवाच्यत्वे वाच्यत्वाभावधर्ममुखेनावाच्यशब्देनापि वाच्यत्वं न स्यादिति । एतादृशव्या-ख्यामपहाय सत्वासत्वोभयरूपेणावाच्यं वस्तु तादृशरूपेणैवावाच्यशब्देन वाच्यं भवतीति व्याख्याने येन रूपेणावाच्यं वस्तु तेनैव रूपेण वाच्यं प्राप्तमिति, येन रूपेण सत्वं तेनैव रूपेणासत्वमप्यंगीक्रियताम् । तथा च—

यह श्रीस्वामी समन्तभद्राचार्य्यका कथन कैसे संगत होगा ? क्योंकि आचार्य्यके इस वचन कहनेका तात्पर्य्य यही है, कि यदि सत्व असत्व धर्म्म सहित वस्तुको सर्वथा अवाच्य[3] मानोगे तो वह 'अवक्तव्य' इस पदसे भी नहीं कही जा सकती, क्योंकि जब सर्वथा अकथनीय है तब किसी पदसे भी नहीं कही जासकती। ऐसी शंका भी नहीं कर सकते, क्योंकि तुमने स्वामी समन्तभद्राचार्य्यजीके वचनका अर्थ नहीं समझा। उस वचनका निश्चयरूपसे अर्थ यह है कि सत्व आदि धर्म्मोंमेंसे किसी एक धर्म्मके द्वारा जो पदार्थ वाच्य है अर्थात् कहनेके योग्य है, वही पदार्थ प्रधानभूत सत्व असत्व

१ पदार्थके स्वरूपको जानने अथवा कहनेके लिये शब्दमें शक्ति अथवा वाचकता. २ संकेतसे सिद्ध. ३ जो कहा नहीं जाय.

इस उभय धर्म्म सहित रूपसे अवाच्य है। यदि सत्व असत्व धर्म्म सहित पदार्थको सत्व आदि एक धर्म्मके द्वारा भी अवाच्य मानो, तो वाच्यत्वका अभावरूप धर्म्म है। उस अभावरूप धर्म्मके द्वारा वस्तुको कहनेवाले 'अवाच्य' इस शब्दसे वह वस्तु वाच्य न होगा, बस यही अभिप्राय आचार्य्यके वचनका है। इस सत्यार्थ व्याख्यानको त्याग कर सत्व असत्व इस उभय धर्म्मसे अवाच्य जो पदार्थ है वही सत्व असत्व इस उभय धर्म्म सहित वस्तुको कहनेवाले अवाच्य शब्दसे भी वाच्य होता है; यदि ऐसा व्याख्यान करोगे तो जिस रूपसे पदार्थ अवाच्य है उसी रूपसे वह वाच्य भी होगया, यह वार्ता सिद्ध होगई। तब तो तुम जिस रूपसे वस्तुका सत्व है उसी रूपसे उसी वस्तुका असत्व भी स्वीकार करो। यह बात प्राप्त हुई। और इस प्रकार माननेसे—

"विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायवेदिनाम्।"

विरोध होनेसे सत्व असत्व इन उभय धर्म्ममेंसे किसी एक धर्म्मरूपसे अवाच्यत्व स्याद्वाद न्यायके मर्मवेत्ता जन नहीं स्वीकार करते।

इति तदीयवचनमेव विरुद्धयते।

स्वामी समन्तभद्राचार्य्यजीके इस वचनका ही विरोध तुमको प्राप्त होगा।

सिद्धान्तविदस्तु—अवक्तव्य एव घट इत्युक्ते सर्वथा घटस्यावक्तव्यत्वं स्यात्, तथा चास्तित्वादिधर्ममुखेनापि घटस्य प्रथमादिभंगैरभिधानं न स्यात्, अतः स्यादिति निपातप्रयोगः। तथा च सत्वादिरूपेण वक्तव्य एव घटो युगपत्प्रधानभूतसत्वासत्वोभयरूपेणावक्तव्य इति चतुर्थभंगार्थनिष्कर्ष इति प्राहुः।

सिद्धान्तवेत्ता जन तो—"अवक्तव्य एव घटः" घट अवक्तव्य है। ऐसा कहनेसे घटको अवक्तव्यता सर्वथा प्राप्त होगी, तो इस रीतिसे अस्तित्व आदि धर्म्मके द्वारा [1]प्रथम आदि भङ्गसे भी घटका कथन नहीं हो सकेगा। इसलिये अवक्तव्य शब्दके पूर्व स्यात्[2] इस निपातका प्रयोग किया है। इस प्रकार इस निपातके लगानेसे सत्व आदिरूपसे तो घट वक्तव्य है किन्तु एक कालमें ही प्रधानभूत सत्व असत्व इन उभय रूपसे अवक्तव्य है, यह इस "स्यादवक्तव्य एव घटः" चतुर्थ भङ्गके अर्थका सारांश है ऐसा कहते हैं।

व्यस्तसमस्तद्रव्यपर्यायावाश्रित्य चरमभंगत्रयमुपपादनीयम्। तथा—हि व्यस्तं द्रव्यं समस्तौ सहार्पितौ द्रव्यपर्यायावाश्रित्य स्यादस्ति चावक्तव्य एव घट इति पंचमभंगः। घटादिरूपैकधर्मिविशेष्यकसत्वविशिष्टावक्तव्यत्वप्रकारकबोधजनकवाक्यत्वं तल्लक्षणम्। तत्र द्रव्यार्पणादस्तित्वस्य युगपद्द्रव्यपर्यायार्पणादवक्तव्यत्वस्य च विवक्षितत्वात्।

---

१ 'स्यादस्ति घटः' इस पहिले भंगसे भी घट नहीं कहा जायगा, क्योंकि यदि सर्वथा अवाच्य है तो उसका कथन किसी धर्म्मसे नहीं हो सकता. २ स्यात् यह निपात अनेकान्त अर्थका वाचक या द्योतक है अर्थात् किसी अपेक्षासे घट अवक्तव्य है न कि सर्वथा.

पृथक् तथा मिलित द्रव्य और पर्य्यायका अवलम्बन करके अन्तिम तीन[1] भङ्गोंकी व्याख्या करनी चाहिये, तथा हि जैसे पृथक्भूत द्रव्य और मिलित द्रव्य पर्य्याय इनका आश्रय करके "स्यादस्ति च अवक्तव्यश्च घट:" इस पंचम भङ्गकी प्रवृत्ति होती है। घट आदिरूप धर्म्मी विशेष्यक और सत्व सहित अवक्तव्यत्व विशेषणवाले ज्ञानका जनक वाक्यत्व, यह इस भङ्गका लक्षण है, अर्थात् जिस ज्ञानमें घट आदि धर्मी पदार्थ विशेष्य हों, और सत्व सहित अवक्तव्यत्व विशेषणीभूत हो ऐसे ज्ञानको उत्पन्न करानेवाला वाक्यत्व, यही इस पंचम भङ्गका लक्षण है, क्योंकि इस भंगमें द्रव्यत्वकी योजनासे तो अस्तित्व और एक कालमें ही द्रव्य पर्य्याय दोनोंको मिलाके योजना करनेसे अवक्तव्यत्वरूप विवक्षित है। तात्पर्य्य यह है कि द्रव्यरूप से तो घटका सत्व अर्थात् द्रव्यरूपसे घट है और एक कालमें ही प्रधानभूत द्रव्य पर्य्यायरूपसे नहीं है।

तथा व्यस्तं पर्यायं समस्तौ द्रव्यपर्यायौ चाश्रित्य स्यान्नास्ति चावक्तव्य एव घट इति षष्ठः। तल्लक्षणं च घटादिरूपैकधर्मिविशेष्यकनास्तित्वविशिष्टावक्तव्यत्वप्रकारकबोधजनकवाक्यत्वम्।

और ऐसे ही पृथक्भूत पर्य्याय और मिलित द्रव्यपर्य्यायका आश्रय करके "स्यान्नास्ति च अवक्तव्यश्च घट:" किसी अपेक्षासे घट नहीं है तथा अवक्तव्य है, इस षष्ठ भङ्गकी प्रवृत्ति होती है, घट आदिरूप एक पदार्थ विशेष्यक और असत्व सहित अवक्तव्यत्व विशेषणवाले ज्ञानका जनक वाक्यत्व, यह इसका लक्षण है अर्थात् जिस ज्ञानमें घट आदि पदार्थ विशेष्य हों और असत्त्व अथवा नास्तित्व सहित अवक्तव्यत्व विशेषणीभूत हो ऐसे ज्ञानको उत्पन्न करनेवाला वाक्य, यही इस षष्ठ भङ्गका लक्षण है, पृथक्भूत पर्य्यायकी योजनासे नास्तित्व और मिलित द्रव्य पर्य्याय दोनोंकी योजनासे अवक्तव्यत्व इस षष्ठ भंगमें विवक्षित है। पर्य्यायकी अपेक्षा से नास्तित्व तथा प्रधानभूत द्रव्य पर्य्याय उभयकी अपेक्षासे अवक्तव्यत्वका आश्रय घट यह इस भंगका अर्थ है।

एवं व्यस्तौ क्रमार्पितौ समस्तौ सहार्पितौ च द्रव्यपर्यायावाश्रित्य स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्य एव घट इति सप्तमभंगः। घटादिरूपैकवस्तुविशेष्यकसत्त्वासत्त्वविशिष्टावक्तव्यत्वप्रकारकबोधजनकवाक्यत्वं तल्लक्षणम्। इति संक्षेपः।

इसी प्रकार अलग २ क्रमसे योजित, तथा मिलेहुये (साथ योजित) द्रव्य तथा पर्य्यायका आश्रय करके "स्यात् अस्ति नास्ति च अवक्तव्यश्च घट:" किसी अपेक्षासे सत्त्व असत्त्व सहित अवक्तव्यत्वका आश्रय घट, इस सप्तमभंगकी प्रवृत्ति होती है, घट आदिरूप एक पदार्थ विशेष्यक और सत्त्व असत्त्व सहित अवक्तव्यत्व विशेषणवाले ज्ञानका जनक

---

[1] स्यादस्ति च अवक्तव्यश्च घट:, स्यान्नास्ति च अवक्तव्यश्च घट:, स्यादस्ति च नास्ति च अवक्तव्यश्च घट:, द्रव्यको पृथक् मानके द्रव्यपर्यायको मिलाके पंचम भंगकी, पर्य्यायको पृथक्, द्रव्यपर्य्यायको मिलाके षष्ठ की, योजित द्रव्यपर्य्यायको मानके सप्तम भङ्गकी प्रवृत्ति होती है और पृथक्भूत क्रमसे योजित द्रव्यपर्य्यायको मिलाके षष्टकी। यही सप्तम तथा षष्ठमें भेद है.

वाक्य, यह इसका लक्षण है अर्थात् जिस ज्ञानमें घट आदि कोई एक पदार्थ तो विशेष्य हो, और सत्त्व असत्त्व सहित अवक्तव्यत्व विशेषण हो ऐसा जो ज्ञान उस ज्ञानका उत्पन्न करानेवाला वाक्य यह इस सप्तम भंगका लक्षण है। इस कारणसे अलग अलग क्रमसे योजित द्रव्य पर्य्यायकी अपेक्षासे सत्त्व असत्त्व सहित मिलित तथा साथ योजित द्रव्यपर्य्यायकी अपेक्षासे अवक्तव्यत्वका आश्रय घट यह इस भंगका अर्थ है। इस प्रकार संक्षेपसे सप्त भंगोंका निरूपण समाप्त हुआ।

अत्र—द्रव्यमेव तत्त्वं, अतस्स्यादस्तीति भंग एक एवेति सांख्यमतमयुक्तम्;—पर्यायस्यापि प्रतीतिसिद्धत्वात्। तथा-पर्याय एव तत्त्वम्, अतस्स्यान्नास्तीति भंग एवेति सौगतमतमपि युक्तिदुर्गतम्; द्रव्यस्यापि प्रतीतिसिद्धत्वात्। एवमवक्तव्यमेव वस्तुतत्त्वमित्यवक्तव्यत्वैकान्तोपि स्ववचनपराहतः, सदा मौनव्रतिकोहमितिवत्। एवमेवान्येषामेकान्तानां प्रतीतिपराहतत्वादनेकान्तवाद एवावतिष्ठते।

अब इस विषयमें द्रव्य ही तत्त्व है और पर्याय नहीं है इसलिये "स्यादस्ति" पदार्थ है यह एक ही भंग सत्य है, ऐसा सांख्य मत है वह अयुक्त है, क्योंकि घट कुशूल आदि पर्य्याय भी अनुभवसिद्ध हैं, तथा पर्य्याय ही तत्त्व है अर्थात् हरएक पदार्थ क्षण क्षण में बदलता रहता है, इसलिये क्षणिक पर्य्याय ही तत्त्व है, कोई मुख्य द्रव्य नित्य नहीं है, अत एव "स्यान्नास्ति" नित्य कोई द्रव्य नहीं है, यह एक ही भंग युक्तिसे युक्त है, यह [१]बौद्धका मत भी युक्तिशून्य है, क्योंकि घट आदि पर्य्यायोंमें मृत्तिकाका रूप द्रव्य कटक कुण्डल आदिमें सुवर्णरूप अनुगतरूप द्रव्य भी अनुभवसिद्ध है। इसी प्रकार जो यह कहते हैं कि सर्वथा अवक्तव्यरूप ही वस्तुस्वरूप है। उनको निज वचनता ही विरोध है क्योंकि अवक्तव्य इस शब्दसे वे वस्तुको कहते हैं तो सर्वथा अवक्तव्यता कहाँ रही? जैसे कोई कहे कि मैं सदा मौनव्रत धारण करता हूँ; यदि सदा मौन है तो सदा मैं मौन हूँ, यह शब्द भी कैसे बोल सकता है? इसी रीतिसे अन्य भी सर्वथा एकान्तवादियोंका कथन अनुभवविरुद्ध होनेसे अनेकान्तवाद ही युक्ति तथा अनुभवरूप कसौटी पर ठहरता है, अतः वही निर्विवादरूपसे स्थित है।

ननु च—अनेकान्तेपि विधिप्रतिषेधरूपा सप्तभंगी प्रवर्तते वा न वा? यदि प्रवर्तते—तदाऽनेकान्तस्य निषेधकल्पनायामेकान्त एव प्राप्त इति तत्पक्षोक्तदोषानुषंगः। अनवस्था न। तादृशैकान्तस्याप्यपराने कान्तकल्पनया विधिप्रतिषेधयोर्वक्तव्यत्वात्। यदि सा न प्रवर्तते तदा सर्वं वस्तुजातं सप्तभंगी संवलितमिति सिद्धान्तव्याघातः। इति चेन्न,—प्रमाणनयार्पणाभेदात्तत्रापि तदुपपत्तेः। तथा हि—एकान्तो द्विविधः—सम्यगेकान्तो मिथ्यैकान्त इति। अनेकान्तोपि द्विविधः, सम्यगनेकान्तो मिथ्यानेकान्त इति। तत्र सम्यगेकान्तस्तावत्प्रमाणविषयीभूतानेक-

---

१ बौद्धका यह मत है कि वह कोई पदार्थ नित्य नहीं मानता, किन्तु सब क्षणिक बुद्धिगत घट आदि पर्य्याय भासते हैं। और पदार्थ हैं वह क्षणिक अनित्य हैं, जैसे घट, क्योंकि सर्व सत्त्व है जैसे घट नाशके प्रति किसीकी अपेक्षा नहीं रखता, अतः क्षणिक है.

धर्मात्मकवस्तुनिष्ठैकधर्मगोचरो धर्मान्तराप्रतिषेधकः । मिथ्यैकान्तस्त्वेकधर्ममात्रावधारणेनान्याशेषधर्मनिराकरणप्रवणः । एवमेकत्रवस्तुन्यस्तित्वनास्तित्वादिनानाधर्मनिरूपणप्रवणः प्रत्यक्षानुमानागमाविरुद्धस्सम्यगनेकान्तः । प्रत्यक्षादिविरुद्धानेकधर्मपरिकल्पनं मिथ्यानेकान्तः । इति । तत्र सम्यगेकान्तो नयः, मिथ्यैकान्तो नयाभासः । सम्यगनेकान्तः प्रमाणं; मिथ्यानेकान्तः प्रमाणाभासः । इति व्यपदिश्यते ।

प्रश्नः—अनेकान्त इस शब्द तथा इसके अर्थमें भी विधि तथा निषेधरूप "स्यादस्ति स्यान्नास्ति" इत्यादि सप्तभंगी प्रवृत्त होती है कि नहीं ? यदि यह कहो कि प्रवृत्त होती है तव तो अनेकान्तके निषेधकी कल्पनासे एकान्त ही प्राप्त हुआ ! क्योंकि जैसे एकान्तका निषेध होनेसे अनेकान्त होता है ऐसे ही अनेकान्त जो नहीं अर्थात् एकान्तरूपता प्राप्त हुई, तब एकान्त पक्षमें जो दोष आपने दिया है वह आपको भी प्राप्त हुआ ! और अनवस्थारूप दोष भी आवेगा, क्योंकि इस प्रकार एकान्तकी अन्य अनेकान्तकी कल्पना करनेसे विधि तथा निषेध बराबर कहते हुये चले जाओ, जितने अनेकान्त कहोगे वहाँ सब जगह विधि-प्रतिषेधकी कल्पनासे कहीं विश्राम न मिलेगा । यह अनवस्था दोष तथा एकान्त पक्षके दोष भी तुम्हारे पक्षमें प्राप्त हुये ! और यदि यह कहो कि अनेकान्तमें विधिनिषेध आदिरूप सप्तभंगी नहीं प्रवृत्त होती तो सम्पूर्ण वस्तुमात्र सप्तभंगी न्यायसे व्याप्त है, इस सिद्धान्तका व्याघात हुआ ! ऐसी शङ्का नहीं कर सकते, क्योंकि प्रमाण तथा नयके भेदकी योजनासे अनेकान्तमें भी विधि-निषेध कल्पनासे सप्तभङ्गी न्यायकी [१]उपपत्ति है । जैसे [२]यह सिद्ध होता है वह दर्शाते हैं;—एकान्त दो प्रकारका है, एक सम्यक् एकान्त और दूसरा मिथ्या एकान्त । ऐसे ही अनेकान्त भी दो प्रकारका है, एक सम्यक् अनेकान्त और दूसरा मिथ्या अनेकान्त । उनमेंसे सम्यक् एकान्त वह है जो प्रमाणसिद्ध अनेक धर्मस्वरूप जो वस्तु है उस वस्तुमें जो रहनेवाला धर्म है, उस धर्मको अन्य धर्मोंका निषेध न करके विषय करनेवाला, अर्थात् अनेक धर्ममय पदार्थके एक किसी धर्मको कहे परन्तु अन्य धर्मोंका निषेध भी जो नहीं करता है वही सम्यक् एकान्त है । और पदार्थके एक ही धर्मका निश्चय करके अन्य सम्पूर्ण धर्मोंके निषेध करनेमें ज तत्पर है वह मिथ्या एकान्त है । इसी प्रकारके प्रत्यक्ष अनुमान तथा आगम प्रमाणसे अविरुद्ध एक वस्तुमें अनेक धर्मोंके निरूपण करनेमें तत्पर है वह सम्यक् अनेकान्त है । तथा प्रत्यक्ष आदि प्रमाणसे विरुद्ध जो एक वस्तुमें अनेक धर्मोंकी कल्पना करता है वह मिथ्या अनेकान्त है । उनमें सम्यक् एकान्त तो नय है और मिथ्या एकान्त नयाभास है । और ऐसे ही सम्यक् अनेकान्त प्रमाण और मिथ्या अनेकान्त प्रमाणाभास है ऐसा भी कहते हैं।

---

१ युक्तिपूर्वक सिद्धि, प्रमाण तथा नय इन दोनोंके भेदसे अनेकान्तमें विधिनिषेधकी कल्पनारूप सप्तभङ्गी न्यायकी योजना युक्तिसे सिद्ध है. २ सप्तभङ्गी न्यायकी अनेकान्तमें भी सिद्धि.

तथा च–सम्यगेकान्तसम्यगनेकान्तावाश्रित्य प्रमाणनयार्पणाभेदात्, स्यादेकान्तः, स्यादनेकान्तः, स्यादुभयः, स्यादवक्तव्यः, स्यादेकान्तश्चावक्तव्यश्च, स्यादनेकान्तश्चावक्तव्यश्च, स्यादेकान्तोनेकान्तश्चावक्तव्यश्चेति सप्तभंगी योज्या । तत्र नयार्पणादेकान्तो भवति, एकधर्मगोचरत्वान्नयस्य । प्रमाणादनेकान्तो भवति, अशेषधर्मनिश्चयात्मकत्वात्प्रमाणस्य । यद्यनेकान्तोऽनेकान्त एव नत्वेकान्त इति मतम् । तदा–एकान्ताभावे तत्समूहात्मकस्यानेकान्तस्याप्यभावप्रसंगः, शाखाद्यभावे वृक्षाद्यभाववत् । इत्येवं मूलभंगद्वये सिद्धे उत्तरे च भंगा एवमेव योजयितव्याः ॥

इसलिये सम्यक् एकान्त और सम्यक् अनेकान्तका आश्रय लेकर प्रमाण तथा नयके भेदकी योजनासे किसी अपेक्षासे एकान्त, किसी अपेक्षासे अनेकांत, किसी अपेक्षासे उभय, किसी अपेक्षासे अवक्तव्य है, कथंचित् एकांत अवक्तव्य, कथंचित् अनेकांत अवक्तव्य, और कथंचित् एकांत अनेकांत अवक्तव्य है । इस रीतिसे सप्तभङ्गीकी योजना करनी चाहिये । उसमें नयकी योजनासे एकांत पक्ष सिद्ध होता है, क्योंकि नय एक ही धर्मको विषय करता है । और प्रमाणकी योजनासे अनेकांत सिद्ध होता है, क्योंकि प्रमाण संपूर्ण धर्मोंको विषय करता है, अर्थात् प्रमाणसे वस्तुके संपूर्ण धर्मोंका निश्चय होता है । और यदि अनेकांत अनेकांत ही रहै किसी अपेक्षासे भी एकांत नहीं है ऐसा मत है तब तो एकांतके अभावसे उसके[1] समूहभूत अनेकांतका भी अभाव ही हो जायगा । जैसे शाखादिकके अभावसे शाखा समूहरूप वृक्ष आदिका भी अभाव होता है, ऐसे ही एकांतके अभावसे एकांत समूहरूप अनेकांतका भी अभाव हो जायगा । इस रीतिसे [2]मूलभूत दो भंगकी सिद्धि होनेसे उत्तर[3] भङ्गोंकी योजना करनी चाहिये ।

इयं च सप्तभंगी नित्यत्वानित्यत्वैकत्वानेकत्वादिधर्मेष्वपि निरूपयितव्या । यथा-स्यान्नित्यो घटः, स्यादनित्यो घट इति मूलभंगद्वयं, घटस्य द्रव्यरूपेण नित्यत्वात्पर्यायरूपेणानित्यत्वात् ।

इस सप्तभङ्गीका निरूपण नित्यत्व अनित्यत्व एकत्व तथा अनेकत्व आदि धर्मोंसे करना चाहिये । जैसे कथंचित् घट नित्य है और कथंचित् घट अनित्य है । यह दो मूल भङ्ग हैं, क्योंकि घट द्रव्यरूपसे नित्य है और पर्यायरूपसे अनित्य है ।

तदुक्तम् ।

यह विषय अन्यत्र भी कहा गया है:—

"समुदेति विलयमृच्छति भावो नियमेन पर्ययनयेन ।
नोदेति नो विनश्यति द्रव्यनयालिङ्गितो नित्यम् ॥" इति ।

"पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे नियमसे पदार्थ उत्पन्न होता है और नष्ट भी होता है. परन्तु द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे पदार्थ न उत्पन्न ही होता है और न नष्ट ही होता है ।"

---

१ एकान्तके समूहरूप, जैसे शाखा समूहरूप वृक्ष है, ऐसे ही एकान्त समूह ही अनेकान्त है. २ अस्ति, नास्ति वा एकान्त, अनेकान्त. ३ अस्ति नास्ति इस तृतीयभंगसे लेकर 'स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्यश्च' इस सप्तम भङ्गपर्यंन्त पांच उत्तरभङ्ग हैं । मूल भङ्ग अस्ति नास्ति ये दो ही हैं ।

ननु–स्यान्नित्यो घट इत्यत्र स्याच्छब्दः कथञ्चिदर्थकः, अवच्छिन्नत्वं संसर्गः, द्रव्यरूपावच्छिन्ननित्यत्ववान् घट इति बोधश्च प्रथमवाक्यस्य युक्तः। द्वितीयवाक्ये चानित्यपदस्य नित्यभेदोऽर्थः, एवं च पर्यायरूपावच्छिन्ननित्यभेदवान् घट इति बोधः प्राप्नोति। स चायुक्तः। द्रव्यरूपेण नित्ये घटे नित्यभेदस्य बाधितत्वात्; भेदस्य व्याप्यवृत्तित्वात्। इति चेदुच्यते;—मूले वृक्षस्संयोगी नेत्यबाधितप्रतीत्याभेदस्याव्याप्यवृत्तित्वमंगीक्रियत एव। अव्याप्यवृत्तित्वं च प्रकृते प्रतियोगिवृत्तित्वम्। संयोगिभेदस्य प्रतियोगी संयोगवान् वृक्षः; तद्वृत्तित्वं संयोगिभेदस्याक्षतम्; वृक्षे मूलावच्छेदेन संयोगिभेदस्य सत्त्वात्। तथा च घटेपि पर्यायावच्छेदेन नित्यभेदो वर्तत इति पर्यायरूपावच्छिन्ननित्यभेदवान् घट इति बोधे न कापि क्षतिरिति बोध्यम्।

प्रश्नः–'स्यान्नित्यो घटः' कथंचित् घट नित्य है। इस वाक्यमें स्यात् शब्दका अर्थ कथंचित् है, अवच्छिन्नत्व संसर्गतारूपसे भासता है। इसलिये द्रव्यरूपसे अवच्छिन्न जो नित्यत्व उस नित्यत्वयुक्त घट, यह बोध प्रथम वाक्यका होना युक्त है। और द्वितीय वाक्यमें तो अनित्य पदका नित्य भेद अर्थ है। इस प्रकारसे पर्यायरूपसे अवच्छिन्न नित्य भेदवान्[1] घट, ऐसा बोध होना द्वितीय वाक्यका प्राप्त होता है। और वह वाक्यार्थ होना अयोग्य है, क्योंकि जब द्रव्यरूपसे घट नित्य है तब उसमें नित्यका भेद बाधित है। और भेद [2]व्याप्य वृत्ति है इस हेतुसे भी नित्यमें नित्यका भेद नहीं रह सकता। यदि ऐसी शङ्का करो तो इसका उत्तर कहते हैं 'मूले वृक्षः संयोगी न' मूल देशमें वृक्ष मर्कट आदिके संयोगसे युक्त नहीं है, बिना किसी बाधाके यह [3]प्रतीति होनेसे भेदकी अव्याप्यवृत्तिता[4] अङ्गीकार करते हैं। और अव्याप्यवृत्तित्व इस प्रकृत प्रसंगमें [5]प्रतियोगि वृत्तिस्वरूप मानते हैं। और संयोगिभेदका प्रतियोगी संयोगवान् वृक्ष है, उसके किसी देशमें संयोगीका भेद भी पूर्णरूपसे है। क्योंकि शाखादि देशमें यद्यपि वृक्ष कपि संयोगी है तथापि मूल देशमें संयोग भेद भी उसमें विद्यमान है। इसी रीतिसे घटमें पर्याय अवच्छिन्नमें नित्यका भेद भी है। इस प्रकारसे पर्यायरूपसे अवच्छिन्न नित्यके भेदसे युक्त घट है, ऐसे ही द्वितीय वाक्यार्थ होनेमें कोई हानि नहीं है ऐसा समझना चाहिये।

एकत्वानेकत्वसप्तभंगी, यथा-स्यादेको घटः, स्यादनेको घट इति मूलभंगद्वयम्। द्रव्यरूपेणैको घटः, स्थासकोशकुसूलादिषु मृद्द्रव्यस्यैकस्यानुगतत्वात्, तस्योर्ध्वतासामान्यरूपत्वात्। पर्यायरूपेणानेको घटः, रूपरसाद्यनेकपर्यायात्मकत्वात् घटस्य।

एकत्व तथा अनेकत्व सप्तभङ्गी की योजना इस रीतिसे करनी चाहिये–"स्यादेको घटः स्यात् अनेकः घटः" कथंचित् घट एक है और कथंचित् अनेक है, ये दो मूल भंग हैं। यहाँ पर द्रव्यरूपसे तो एक ही घट है, क्योंकि एक मृत्तिकारूप द्रव्य पिण्ड

---

१ नित्यके भेदसे युक्त. २ जिसकी सत्ता पदार्थके सर्व देशमें रहे, जैसे तिलमें तेल. ३ ज्ञान अथवा बोध. ४ पदार्थके एक देशमें रहनेवाला. ५ जिसका अभाव कहा जाता है वह प्रतियोगी कहा जाता है जैसे नित्य भेदका प्रतियोगी नित्य है, संयोगिभेदका प्रतियोगी संयोगवान् वृक्ष है.

कोश तथा कुसूल आदि पर्यायोंमें अनुगत है, और वह मृत्तिकारूप ऊर्ध्वता सामान्यरूप है। और पर्यायरूपसे अनेक घट है, क्योंकि घट रूप रस तथा गन्ध आदि अनेक पर्यायरूप है।

नन्वेवमपि सर्वं वस्तु स्यादेकं स्यादनेकमिति कथं संगच्छते ? सर्वस्य वस्तुनः केनापि रूपेणैक्याभावात्। न च सत्त्वादिरूपेण सर्वस्यैक्यं सम्भवतीति वाच्यम्; सत्त्वस्यापि सकलवस्तुव्यापिन एकस्य सिद्धान्तविरुद्धत्वात्। सदृशपरिणामस्यैकैकव्यक्तिगतस्य तत्तद्व्यक्त्यात्मकस्य प्रतिव्यक्तिभिन्नस्यैव सिद्धान्तसिद्धत्वात्। तदुक्तम्—"उपयोगो लक्षणम्" इति सूत्रे तत्त्वार्थश्लोकवार्तिके।

प्रश्नः—द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिकनयका आश्रय करके एक तथा अनेकत्व आदि सप्तभङ्गी स्वीकार करने पर भी "सर्वं वस्तु स्यादेकं सर्वं वस्तु स्यादनेकम्" सब वस्तु कथंचित् एक है और कथंचित् अनेक है यह कैसे सगत हो सकता है ? क्योंकि किसी प्रकारसे सब वस्तुकी एकता नहीं हो सकती। सत्व आदिरूपसे भी सब वस्तुकी एकता नहीं कह सकते, क्योंकि संपूर्ण वस्तु व्यापी एक सत्वका अङ्गीकार जैन सिद्धान्तके विरुद्ध है। जैन सिद्धान्तके अनुसार सदृश परिणामरूप एक एक व्यक्तिगत तथा उस उस व्यक्तिरूप सत्व, प्रतिव्यक्ति भिन्न ही सिद्ध है। यह विषय अन्यत्र कहा भी है। "उपयोगो लक्षणम्" ज्ञान तथा दर्शनरूप उपयोग ही जीवका लक्षण है इस सूत्रके तत्वार्थ श्लोकवार्तिकमें;—

"न हि वयं सदृशपरिणाममनेकव्यक्तिव्यापिनं युगपदुपगच्छामोऽन्यत्रोपचारात्" इति।

"अन्य व्यक्तिमें उपचारसे एक कालमें ही सदृश परिणामरूप अनेक व्यक्ति व्यापी एक सत्व हम[1] नहीं मानते ऐसा कहा है।

सूत्रितं च माणिक्यनन्दिस्वामिभिः—

तथा माणिक्यनन्दिस्वामीने ऐसा सूत्रका भी उपन्यास किया है।

"सदृशपरिणामस्तिर्यक् खण्डमुण्डादिषु गोत्ववत्" इति।

"खण्ड मुण्ड आदिमें गोत्वके सदृश परिणामरूप प्रत्येक व्यक्तिमें भिन्न भिन्न जो सदृश परिणाम है उसीको तिर्यक् सामान्य कहते हैं।"

विवृतं चैतन्मार्तण्डे—

इसका विवरण प्रमेय कमलमार्तण्डमें कहा भी है।

"सदृशपरिणामात्मकमनेकं तिर्यक्सामान्यम्" इति।

"सदृश परिणामरूप प्रत्येकमें भिन्न भिन्न अनेक सत्व तिर्यक् सामान्य है"

तस्मात्सत्त्वस्यापि तिर्यक्सामान्यरूपस्य प्रतिव्यक्तिभिन्नत्वात् कथं सर्वस्य वस्तुनस्सत्त्वेन रूपेणैक्यम् ? इति चेत्;—अत्र ब्रूमः। सत्तासामान्यमेकानेकात्मकमेव सिद्धान्ते स्वीकृतम्। सत्त्वं हि व्यक्त्यात्मनाऽनेकमपि स्वात्मनैकं भवति। पूर्वोदाहृतपूर्वाचार्यवचनानां च सर्व-

---

१ जैनमतावलम्बी

थैक्यनिराकरणपरत्वात् । अन्यथा सत्तासामान्यस्य सर्वथानेकत्वे पृथक्त्वैकान्तपक्ष एवादृतस्स्यात् । तथा च "पृथक्त्वैकान्तपक्षेपि" इत्यादि स्वामिसमन्तभद्राचार्यवचनं तद्व्याख्यानभूतमकलंकादिवचनं च विरुद्ध्यते । अनेकव्यक्त्यनुगतस्यैकधर्मस्यानंगीकारे सादृश्यमेव दुर्वचनम्, यतस्तद्भिन्नत्वे सति तद्गतभूयोधर्मवत्त्वम् सादृश्यम् । यथा–चन्द्रभिन्नत्वे सति चन्द्रगताह्लादकरत्वादिमुखे चन्द्रसादृश्यम्, एवं घटयोरपि परस्परसाधर्म्यं घटत्वरूपैकधर्ममादायैवोपपद्यते । अन्यथा साधारणधर्मासाधारणधर्मव्यवस्थैव न घटते । अनेकव्यक्तिवृत्तित्वमेव हि साधारणत्वम् । तस्मात्सत्त्वादिना सर्वस्यैक्यम् जीवादिद्रव्यभेदेनानेकत्वम् चोपपन्नम् ।

इसलिये तिर्यक् सामान्यरूप सत्त्वके प्रत्येक व्यक्तिमें भिन्न भिन्न होनेसे सत्त्वरूपसे भी सब वस्तुकी एकता नहीं हो सकती ! ऐसी आशङ्का यदि की जाय तो उसके विषयमें कहते हैं—एक तथा अनेकरूप सत्ता सामान्य जिन सिद्धान्तमें स्वीकृत है, प्रतिव्यक्तिरूपसे सत्त्व अनेक होने पर भी स्वकीयरूपसे एक ही है । और पूर्व उदाहरणोंमें पूर्व आचार्योंके वचनोंसे जो सर्वथा एकत्व ही माना है उसीके निराकरणमें तात्पर्य्य है, न कि कथंचित् एकत्वके निराकरणमें । और ऐसा न माननेसे सर्वथा सत्ता सामान्यके अनेकत्व माननेसे पृथक्त्व एकान्त पक्षका ही आदर होगा । तब 'पृथक्त्व सामान्य पक्षमें भी' इत्यादि स्वामी समन्तभद्राचार्यका वचन तथा उसके व्याख्यानरूप अकलङ्क स्वामीके वचनका भी विरोध आता है । तथा अनेक व्यक्तिमें अनुगत एक धर्मके अनङ्गीकार करनेसे सादृश्य ही दुर्वच है । क्योंकि उससे भिन्न हो तथा उसमें रहनेवाले धर्म पदार्थमें हों यही सादृश्य है । जैसे चन्द्रमा से भिन्न रहते चन्द्रगत आल्हादकरत्व, वर्त्तुल[1] आकारयुक्तत्व यह चन्द्र सादृश्य मुद्रामें है । इसी प्रकार घटत्वरूप एक धर्मको लेकर दो घटोंमें परस्पर साधर्म्य भी युक्त होता है । यदि ऐसा न माना जाय तो यह इसका साधारण धर्म है, तथा यह इनमें असाधारण धर्म है, यह कथन नहीं बन सकता । क्योंकि अनेक व्यक्तिमें अनुगतरूपसे जो वृत्तित्व है वही साधारणत्व है । इस कारणसे सत्व आदि रूपसे सबकी एकता है और जीव आदि अनेक द्रव्योंके भेदसे अनेकता भी उपपन्न है ।

तदिदमाहुः स्वामिसमन्तभद्राचार्याः—

यही विषय स्वामी समन्तभद्राचार्यने कहा भी है;—

"सत्सामान्यात्तु सर्वैक्यं पृथग्द्रव्यादिभेदतः ।
भेदाभेदविवक्षायामसाधारणहेतुवत् ॥" इति ।

"भेदाभेदकी विवक्षामें असाधारण हेतुके तुल्य सत्सामान्यसे सबकी एकता है, और द्रव्य आदिके भेदसे पृथक्ता भी है ।"

यथा–हेतुः पक्षधर्मत्वादिभेदविवक्षायामनेकः, हेतुत्वेनैकश्च । तथा सर्वं सत्त्वादिभिरेकं जीवद्रव्यादिभेदेनानेकमिति तदर्थः । प्रपंचितश्चायमर्थो देवागमालंकार इति नेहोच्यते ।

---

१ गोलाकार

जैसे हेतु पक्षधर्मता आदिकी विवक्षासे अनेक है, और हेतुत्वरूपसे एक भी है, इस रीतिसे सत्त्व आदिकी विवक्षासे सब एक हैं, और जीव द्रव्य आदि भेदसे अनेक हैं ऐसा पूर्वोक्त कारिकाका अर्थ है । इस अर्थका विस्तार देवागम अलङ्कारमें है, इसलिये यहां अधिक नहीं कहते हैं ।

अत्राप्यनेकपदस्यैकमिन्नार्थकतया एकस्मिन् घटादावेकभेदः कथं वर्तत इति चोद्ये, पर्यावच्छेदेन वर्तते—यथा वृक्षे मूलावच्छेदेन संयोगिभेद इति, पूर्ववत्परिहारो बोध्यः ।

यहां भी अनेक पदकी एकसे भिन्नार्थकता होनेसे एक घट आदि पदार्थमें एकका भेद[1] कैसे रह सकता है ? ऐसा कुतर्क करने पर पर्याय अवच्छिन्नरूपसे भेद है ऐसा समाधान देना चाहिये । जैसे वृक्षमें मूलदेशमें संयोगिभेद है और शाखा आदि देशमें संयोगी भी । इस प्रकार पूर्वोक्त रीतिसे परिहार करना चाहिये ।

एवमयं स्याज्जीवः स्यादजीव इति मूलभंगद्वयम् । तत्रोपयोगात्मना जीवः, प्रमेयत्वाद्यात्मनाऽजीव इति तदर्थः ।

इस प्रकार यह कथंचित् जीव है, और कथंचित् अजीव भी है, ये मूल दो भङ्ग हैं । वहाँ पर उपयोगरूपसे तो जीव है और प्रमेयत्व आदिरूपसे अजीव भी है, यह मूल दो भंगोंका अर्थ है ।

तदुक्तं भट्टाकलंकदेवैः—

यही विषय अकलङ्कदेवने ऐसा कहा है–

"प्रमेयत्वादिभिर्धर्मैरचिदात्मा चिदात्मकः ।
ज्ञानदर्शनतस्तस्माच्चेतनाऽचेतनात्मकः ॥" इति ।

"प्रमेयत्व आदि धर्मोंसे जीव अचिद्रूप है, तथा ज्ञान दर्शन उपयोगसे चिद्रूप भी है, इस कारणसे जीव चेतन तथा अचेतनरूप भी है ।"

अजीवत्वं च प्रकृतेऽजीववृत्तिप्रमेयत्वादिधर्मवत्त्वम्, जीवत्वं च ज्ञानदर्शनादिमत्त्वमिति द्रष्टव्य ।

इस प्रसङ्गमें अजीव वृत्ति प्रमेयत्त्व आदि धर्मवत्ता तो अजीवत्व है, और ज्ञान दर्शन आदिमत्त्व जीवत्त्व है, ऐसा समझना चाहिये ।

नन्वयमनेकान्तवादश्छलमात्रमेव, तदेवास्ति तदेव नास्ति, तदेव नित्यं तदेवानित्यमिति प्ररूपणारूपत्वादनेकान्तवादस्य । इति चेन्न;—छललक्षणाभावात् । अभिप्रायान्तरेण प्रयुक्तस्य शब्दस्यार्थान्तरं परिकल्प्य दूषणाभिधानं छलमिति छलसामान्यलक्षणम् । यथा नवकम्बलोयं देवदत्त इति वाक्यस्य नूतनाभिप्रायेण प्रयुक्तस्यार्थान्तरमाशंक्य कश्चिद्दूषयति, नास्य नवकम्बलास्सन्ति दरिद्रत्वात्; नह्यस्य द्विकम्बलवत्त्वमपि सम्भाव्यते; कुतो नवेति । प्रकृते

---

१ जहां एकत्व प्रतियोगितावच्छेदक है वहां एकका भेद नहीं रह सकता । भेदकी व्याप्यवृत्तिता मानकर प्रश्न है.

चानेकान्तवादे ताहशछललक्षणस्य प्रसक्तिरेव नास्ति; अभिप्रायान्तरेण प्रयुक्तस्य शब्दस्यार्थान्तरपरिकल्पनाभावात्।

प्रश्नः—अनेकान्तवाद छलमात्र है। क्योंकि अनेकान्तवादमें वही पदार्थ है, वही नहीं है, वही नित्य है तथा वही अनित्य भी है, इत्यादि विषयका निरूपण है! यह शङ्का नहीं कर सकते। अनेकान्तवादमें छलका लक्षण नहीं घट सकता। अन्य अभिप्रायसे कहे हुये शब्दका अन्य अर्थ कल्पना करके दूषण देना छल है; यही छल सामान्यका लक्षण है। जैसे "नवकम्बलोऽयम् देवदत्तः" [1]नव अर्थात् नूतन कंबलयुक्त देवदत्त है। इस वाक्यमें नूतन कंबलयुक्त इस अभिप्रायसे कथित 'नव' शब्दको अन्य अर्थमें कल्पना करके कोई दूषण देता है कि इस पुरुषके नौ (९) कंबल कहां हैं, क्योंकि यह दरिद्री है, इसके तो दो २ कम्बलकी भी संभावना नहीं है. और नौ (९) कम्बल कहांसे हो सकते हैं? और इस अनेकान्तवादमें उस प्रकारके छलके लक्षणकी प्राप्ति भी नहीं है। क्योंकि अन्य अभिप्रायसे प्रयुक्त शब्दकी अन्य अर्थमें कल्पनाका अभाव है।

अथ संशयहेतुरनेकान्तवादः, एकस्मिन्वस्तुनि विरुद्धानामस्तित्वनास्तित्वादिधर्माणामसम्भवात्, एकवस्तुविशेष्यकविरुद्धनानाधर्मप्रकारकज्ञानं हि संशयः। यथा—स्थाणुर्वा न वेत्याकारकज्ञानम् एकधर्मिविशेष्यकस्थाणुत्वतदभावप्रकारकज्ञानत्वात्संशयः। तथा चास्तित्वनास्तित्वादिरूपविरुद्धनानाधर्मप्रकारकघटादिरूपैकवस्तुविशेष्यकज्ञानजनकत्वात्संशयहेतुरनेकान्तवादः। इति चेन्न;—विशेषलक्षणोपलब्धेः। संशयो हि सामान्यप्रत्यक्षाद्विशेषाप्रत्यक्षाद्विशेषस्मृतेश्च जायते, यथा स्थाणुपुरुषोचिते देशे नातिप्रकाशान्धकारकलुषायां वेलायामूर्ध्वमात्रं—सामान्यं पश्यतः, वक्रकोटरपक्षिनीडादीन् स्थाणुगतान्विशेषान्वस्त्रसंयमनशिरःकण्डूयनशिखाबन्धनादीन्पुरुषगतांश्चानुपलभमानस्य तेषां च स्मरतः पुरुषस्यायं स्थाणुर्वा पुरुषो वेति संशय उपपद्यते। अनेकान्तवादे च विशेषोपलब्धिरप्रतिहतैव, स्वरूपपररूपादिविशेषाणां प्रत्यर्थमुपलम्भात्। तस्माद्विशेषोपलब्धेरनेकान्तवादो न संशयहेतुः।

अब कदाचित् यह कहो कि, अनेकान्तवाद संशयका हेतु है। क्योंकि एक ही वस्तुमें विरुद्ध अस्तित्व तथा नास्तित्व आदि धर्म संभव नहीं हैं। जैसे यह सन्मुख स्थित पदार्थ स्थाणु है वा नहीं, यह ज्ञान एक पदार्थ विशेष्यक तथा स्थाणुत्व तथा उसके अभाव विशेषणक होनेसे संशय है। इसी रीतिसे अस्तित्व नास्तित्व आदिरूप विरुद्ध नाना धर्म विशेषणयुक्त घट आदि पदार्थ विशेष्यक ज्ञानका जनक होनेसे अनेकान्त-वाद संशयका हेतु है! यह शंका भी नहीं कर सकते। क्योंकि संशयके विशेष लक्षणकी उपलब्धि है। सामान्य अंशके प्रत्यक्ष, विशेष अंशके अप्रत्यक्ष और विशेषकी स्मृति होनेसे संशय होता है, जैसे स्थाणु तथा पुरुषकी स्थितिके योग्य देशमें और न अति प्रकाश न अति अन्धकारसहित बेला ऊर्ध्वता सामान्यके देखनेवाले और स्थाणुमें रहने-

[1] नव इस शब्दका अर्थ नूतन तथा ९ संख्या भी है.

वाले वक्रकोटर तथा पक्षियोंके खुन्थे आदि विशेषोंको तथा पुरुषनिष्ठ वस्त्रधारण शिखा-बन्धन तथा हस्त पाद आदि विशेषोंको न देखनेवाले मनुष्यको स्थाणु पुरुषके विशेषोंके स्मरणसे यह स्थाणु है वा पुरुष है ऐसा संशयात्मक ज्ञान उत्पन्न होता है। और अनेकान्तवादमें तो विशेष धर्मोंकी उपलब्धि निर्बाध ही है, क्योंकि स्वरूप पररूप विशेषोंकी उपलब्धि प्रत्येक पदार्थमें है। इसलिये विशेषकी उपलब्धिसे अनेकान्तवाद संशयका हेतु नहीं है।

अथैवमपि संशयो दुर्वारः, तथा हि—घटादावस्तित्वादिधर्माणां साधकाः प्रतिनियता हेतवस्सन्ति वा न वा ? न चेद्विप्रतिपन्नं प्रति प्रतिपादनासम्भवः। सन्ति चेदेकत्र वस्तुनि परस्परविरुद्धास्तित्व नास्तित्वादिसाधकहेतुसद्भावात्संशयो दुर्वारः। इति चेन्न; अस्तित्वनास्तित्वयोरवच्छेदकभेदेनार्थ्यमाणयोर्विरोधाभावात्। यथा—एकस्यैव देवदत्तस्यैकापेक्षया पितृत्वमन्यापेक्षया पुत्रत्वं च परस्परमविरुद्धम्, यथा चान्वयव्यतिरेकिधूमादिहेतौ सपक्षे महानसादौ सत्त्वं विपक्षे महाह्रदादावसत्त्वं च परस्परमविरुद्धम्। तथास्तित्वनास्तित्वयोरपि। तयोर्विरोधश्चानुपदमेव स्पष्टं परिहरिष्यते॥

शङ्का—ऐसा मानने पर भी संशयका निवारण दुःसाध्य है। जैसे घट आदि पदार्थोंमें अस्तित्व आदि धर्मोंके साधक हेतु प्रतिनियत हैं वा नहीं। यदि अस्तित्व आदिके साधक हेतु प्रतिनियत नहीं हैं तो यह विरुद्ध है, क्योंकि अस्तित्व आदि धर्मोंके प्रतिपादक हेतु नहीं हैं तो पदार्थोंका प्रतिपादन ही असंभव है। और यदि प्रतिपादक हेतु हैं तो एक वस्तुमें परस्पर विरुद्ध अस्तित्व तथा नास्तित्वके साधक हेतुके सद्भावसे संशय दुर्निवारणीय है। यह शङ्का अयुक्त है, क्योंकि अस्तित्व नास्तित्वके [1]अवच्छेदक भेदसे योजना करनेसे विरोधका अभाव है। जैसे एक ही देवदत्तमें एक (पुत्र) की अपेक्षासे पितृत्व और अन्य निज पिताकी अपेक्षासे पुत्रत्व भी परस्पर अविरुद्ध है, और जैसे [2]अन्वयव्यतिरेकी धूमादि हेतुका सपक्ष महानस आदिमें सत्त्व और विपक्ष महाह्रदादिमें असत्त्व भी परस्पर अविरुद्ध है, यही दशा अर्थात् अपेक्षासे सत्त्व तथा असत्त्व, अस्तित्व तथा नास्तित्वका भी एक ही वस्तुमें अविरुद्ध है। और उनके विरोधका परिहार आगे चलके शीघ्र ही करेंगे।

ननु—अनेकान्तवादे विरोधादयोऽष्टदोषास्सम्भवन्ति। तथा हि—एकत्रार्थे विधिप्रतिषेधरूपास्तित्वनास्तित्वधर्मौ न सम्भवतः, शीतोष्णयोरिव भावाभावयोः परस्परं विरोधात्। अस्तित्वं हि भावरूपं, विधिमुखप्रत्ययविषयत्वात्। नास्तित्वं च प्रतिषेधरूपं, ननुल्लिखितप्रतीतिविषयत्वात्। यत्रास्तित्वं तत्र नास्तित्वस्य विरोधः, यत्र च नास्तित्वं तत्रास्तित्वस्य विरोधः, इति

---

१ अन्यसे पृथक् करनेवाले स्वरूप पररूपादि धर्म. २ जिस हेतुका सपक्ष विपक्षमें सत्त्व असत्त्व दोनों पाया जाय उसको अन्वयव्यतिरेकी कहते हैं। पक्षके समानधर्मवाला धर्मी सपक्ष कहा जाता है, इसके विरुद्ध विपक्ष कहलाता है.

विरोधः ॥ अस्तित्वस्याधिकरणमन्यन्नास्तित्वस्याधिकरणमन्यदित्यस्तित्वनास्तित्वयोर्वैयधिकरण्यम् । तच्च विभिन्नाधिकरणवृत्तित्वम् ॥ येन रूपेणास्तित्वं येन च रूपेण नास्तित्वं तादृशरूपयोरपि प्रत्येकमस्तित्वनास्तित्वात्मकत्वं वक्तव्यम्, तच्च स्वरूपपररूपाभ्यां तयोरपि प्रत्येकमस्तित्वनास्तित्वात्मकत्वं स्वरूपपररूपाभ्यामित्यनवस्था । अप्रामाणिकपदार्थपरम्परापरिकल्पनाविश्रान्त्यभावश्चानवस्थेत्युच्यते ॥ येन रूपेण सत्त्वं तेन रूपेणासत्त्वस्यापि प्रसंगः, येन रूपेण चासत्त्वं तेन रूपेण सत्त्वस्यापि प्रसंगः, इति संकरः । "सर्वेषां युगपत्प्राप्तिस्संकरः ।" इत्यभिधानात् ॥ येन रूपेण सत्त्वं तेन रूपेणासत्त्वमेव स्यान्न तु सत्त्वं, येन रूपेण चासत्त्वं तेन सत्त्वमेव स्यान्नत्वसत्त्वम्, इति व्यतिकरः । "परस्परविषयगमनं व्यतिकरः" इति वचनात् ॥ सत्त्वासत्त्वात्मकत्वे च वस्तुन इदमित्थमेवेति निश्चेतुमशक्तेस्संशयः ॥ ततश्चानिश्चयरूपाऽप्रतिपत्तिः ॥ ततस्सत्त्वासत्त्वात्मनो वस्तुनोऽभावः ॥ इति ॥

कदाचित् यह कहो कि अनेकान्तवादमें विरोध आदि आठ दोषोंका संभव है, जैसे एक पदार्थमें विधि तथा निषेधरूप अस्तित्व तथा नास्तित्वरूप धर्म संभव नहीं हो सकते, क्योंकि शीत उष्णके समान भाव और अभावका परस्पर विरोध है, विधिमुखसे प्रतीति (बोध) का विषय होनेसे अस्तित्व तो भावरूप है और नञ्‌जनित निषेधमुखसे बोधका विषय होनेसे नास्तित्व अभावरूप है । जहां पर किसी पदार्थका अस्तित्व है वहां पर उसके नास्तित्वका विरोध है और जहां पर जिस पदार्थका नास्तित्व है वहां पर उसके अस्तित्वका विरोध है, इस रीतिसे जैन मतमें विरोध दोष है । अस्तित्वका अधिकरण अन्य होता है और नास्तित्वका अन्य होता है, इस रीतिसे अस्तित्व नास्तित्वका [1]वैयधिकरण्य है, और वैयधिकरण्य भिन्न भिन्न अधिकरणमें वृत्तित्वरूप है, और इस मतमें अस्तित्व तथा नास्तित्व दोनों एक ही अधिकरणमें हैं, इसलिये वैयधिकरण्य दोष है । तथा जिस रूपसे अस्तित्व तथा नास्तित्व रहते हैं उन दोनों रूपोंका प्रत्येकको अस्तित्व तथा नास्तित्वरूप कहना चाहिये, और वह अस्तित्व तथा नास्तित्व स्वरूप तथा पररूपसे होता है, और उन स्वरूप तथा पररूपमेंसे प्रत्येकको अस्तित्व तथा नास्तित्वरूप अन्य स्वरूप तथा पररूपसे हो सकता है उनका भी दूसरे स्वरूप तथा पररूपसे इस प्रकार अनवस्था दोष भी है, क्योंकि अप्रामाणिक पदार्थोकी परम्परासे जो कल्पना है उस कल्पनाके विश्रामके अभावको ही अनवस्था कहते हैं । और जिस रूपसे सत्ता है उसी रूपसे असत्ताकी भी प्राप्ति है । ऐसे ही जिस रूपसे असत्त्व है उसी रूपसे सत्त्वकी प्राप्ति है, क्योंकि सत्त्व असत्त्व स्थितिमें एक ही पदार्थका स्वरूप तथा पररूपसे स्वरूपका कुछ भी परिवर्तन नहीं होता । और एक कालमें ही एक वस्तुमें सब धर्मोकी प्राप्ति ही संकर दोष है" । ऐसा अन्यत्र कहा गया है । तथा जिस रूपसे सत्त्व है उस रूपसे असत्त्व भी रहेगा न कि सत्व, और जिस रूपसे असत्व

---

१ पृथक् पृथक् अधिकरणमें वृत्तिता अर्थात् रहनेको वैयधिकरण्य कहते हैं, जैसे घटमें घटत्वका अस्तित्व है और नास्तित्व घटमें.

है उसी रूपसे सत्व रहेगा नकि असत्व, इस प्रकार व्यतिकर दोष है। परस्पर विषय गमनको व्यतिकर कहते हैं" ऐसा अन्यत्र वाक्य है। तथा एक ही वस्तु सत्व असत्व उभयरूप होनेसे यह ऐसा ही अर्थात् सत्वका असत्वरूप है, यह निश्चय करनेको अशक्य है इसलिये संशय दोष भी है। और संशय होनेसे अनिश्चयरूप अप्रत्तिपत्ति अर्थात् बोधका अभाव है, अप्रतिपत्ति होनेसे सत्व असत्वरूप वस्तुका ही अभाव भान होता है। ये आठ दोष अनेकान्त मतमें हैं।

अत्र वदन्त्यभिज्ञाः। कथंचित्प्रतीयमाने स्वरूपाद्यपेक्षया विवक्षितयोस्सत्त्वासत्त्वयोः प्रतीयमानयोर्न विरोधः। अनुपलम्भसाध्यो हि विरोधः। न हि स्वरूपादिना वस्तुनस्सत्त्वे तदैव पररूपादिभिरसत्त्वस्यानुपलम्भोस्ति। स्वरूपादिभिस्सत्त्वस्येव पररूपादिभिरसत्त्वस्यापि प्रतीतिसिद्धत्वात्।

इस विषयमें शास्त्रोंमें प्रवीण जन कहते हैं;—किसी अपेक्षासे प्रतीयमान एक वस्तुमें स्वरूप आदिकी अपेक्षासे विवक्षित तथा भासमान सत्व और असत्वका विरोध नहीं है। क्योंकि विरोधका साधक [1]अभाव होता है, और स्वरूप आदिकी अपेक्षा वस्तुका सत्व होने पर उसी समय पररूप आदिसे असत्वका अनुपलम्भ अर्थात् अप्राप्ति नहीं है। जैसे एक घट वस्तुमें घटत्वका उपलम्भ होनेसे और पटत्वका अनुपलम्भ, इसवास्ते घटत्व पटत्वका विरोध है। परन्तु यहां तो जैसे स्वरूप आदिसे घटका सत्व है ऐसे ही पररूपादिसे असत्व भी अनुभवसिद्ध है।

न खलु वस्तुनस्सर्वथा भाव एव स्वरूपं, स्वरूपेणेव पररूपेणापि भावप्रसंगात्। नाप्यभाव एव, पररूपेणेव स्वरूपेणाप्यभावप्रसंगात्।

किस वस्तुका निश्चितरूपसे केवल भाव ही स्वरूप नहीं है, क्योंकि ऐसा माननेसे जैसे स्वरूपसे भावरूपताका भान होता है ऐसे ही पररूपसे भी भावरूपताका प्रसङ्ग हो जायगा। और केवल अभाव भी स्वरूप नहीं है। क्योंकि पररूपसे जैसे अभाव भासता है ऐसे ही स्वरूपसे भी अभावका प्रसङ्ग हो जायगा।

ननु—पररूपेणासत्त्वं नाम पररूपासत्त्वमेव। न हि घटे पटस्वरूपाभावे घटो नास्तीति वक्तुं शक्यम्। भूतले घटभावे भूतले घटो नास्तीति वाक्यप्रवृत्तिवत् घटे पटस्वरूपाभावे पटो-नास्तीत्येव वक्तुमुचितत्वात्। इति चेन्न;—विचारासहत्वात्। घटादिषु पररूपासत्त्वं पटादि-धर्मो घटधर्मो वा? नाद्यः, व्याघातात्। न हि पटरूपासत्त्वं पटेस्ति। पटस्य शून्यत्वापत्तेः। न च स्वधर्मः स्वस्मिन्नास्तीति वाच्यम्, तस्य स्वधर्मत्वविरोधात्। पटधर्मस्य घटाद्याधारक-त्वायोगाच्च। अन्यथा वितानविवितानाकारस्यापि तदाधारकत्वप्रसंगात्। अन्त्यपक्षस्वीकारे तु विवादो विश्रान्तः, भावधर्मयोगाद्भावात्मकत्ववदभावधर्मयोगादभावात्मकत्वस्यापि स्वीकरणी-

---

१ जब एक स्थानगत वस्तुमें दो धर्मका अभाव प्राप्त होता है तब उस अभावसे उनका विरोध है, जैसे एक स्थानमें प्रकाश और अन्धकार वा एक वस्तु में घटत्व पटत्वका।

यत्वात्, एवं च घटो नास्तीरिति प्रयोग उपपन्नः। अन्यथा यथैवाभावधर्मयोगेप्यसन्न स्यात्तथैव भावधर्मयोगेपि सन्न स्यात्।

शङ्का—पररूपसे असत्त्व नाम परकीय रूपका असत्त्व, अर्थात् दूसरे घट आदिका रूप घटमें नहीं है। क्योंकि घटमें पटस्वरूपका अभाव होनेसे घट नहीं है ऐसा नहीं कह सकते किन्तु भूतलमें घटका अभाव होने पर भूतलमें घट नहीं है, इस वाक्यकी प्रवृत्तिके समान घटमें पटके स्वरूपका अभाव होनेसे घटमें पट नहीं है यही कथन उचित है। यह शङ्का नहीं कर सकते। क्योंकि ऐसा कथन विचार पर नहीं ठहर सकता। घट आदि पदार्थोंमें जो पर पट आदिरूपका असत्त्व है वह पट आदिका धर्म है अथवा घटका धर्म है? प्रथम पक्ष नहीं है अर्थात् पररूपका असत्त्व पट आदिका धर्म नहीं है। ऐसे माननेसे पररूपका ही व्याघात होगा, क्योंकि पररूपका असत्त्वरूप पट नहीं है। ऐसा माननेसे तो पटकी शून्यरूपता होजायगी। और स्वकीय धर्म अपनेमें ही नहीं है ऐसा कह नहीं सकते, क्योंकि तब तो स्वधर्मत्व अर्थात् अपना धर्म इस कथनका ही विरोध हो जायगा। और पटके धर्मका आधार घट आदि पदार्थ हो नहीं सकते। क्योंकि ऐसा माननेसे तन्तुवाय (जुलाहा) भी तानावानाका आधार हो जायगा और अन्त्य पक्ष स्वीकार करने पर, अर्थात् पररूपका असत्त्व भी घटका धर्म है ऐसा मानने पर तो विवादहीका विश्राम (समाप्ति) होता है। क्योंकि भाव धर्मके सम्बन्धसे जैसे पदार्थ भावस्वरूप मानाजाता है ऐसे ही अभावरूप धर्मके सम्बन्धसे अभावरूप भी स्वीकार करना ही होगा। और ऐसा माननेसे घटकी सत्तामें भी घट नहीं है ऐसा प्रयोग हो जायगा। और इसके विरुद्ध माननेसे जैसे अभावरूप धर्मके सम्बन्धसे घट असत् नहीं होगा, ऐसे ही भावरूप धर्मके सम्बन्धसे सत् रूप भी नहीं होगा।

ननु—घटे पटरूपासत्त्वं नाम घटनिष्ठाभावप्रतियोगित्वम्। तच्च पटधर्मः। यथा भूतले घटो नास्तीत्यत्र भूतलनिष्ठाभावप्रतियोगित्वमेव भूतले नास्तित्वं, तच्च घटधर्मः। इति चेन्न;—तथापि पररूपाभावस्य घटधर्मत्वाविरोधात्, घटाभावस्य भूतलधर्मत्ववत्। तथा च घटस्य भावाभावात्मकत्वं सिद्धम्। कथंचित्तादात्म्यलक्षणसम्बन्धेन सम्बन्धिन एव स्वधर्मत्वात्।

आशङ्का—घटमें पररूपके असत्त्वका अर्थ यह है कि घटनिष्ठ जो अभाव अर्थात् घटमें रहनेवाला जो अन्य पदार्थोंका अभाव, उस अभावका प्रतियोगित्वरूप। और यह प्रतियोगिता पटधर्मरूप होगी। जैसे भूतलमें घट नहीं है, यहां पर भूतलमें रहनेवाला जो अभाव उस अभावकी प्रतियोगिता ही भूतलमें नास्तितारूप पड़ती है और प्रतियोगिता वा नास्तिता घटका धर्म है। ऐसा नहीं कह सकते। ऐसा मानने पर भी पररूपका जो अभाव उसके घट धर्म होनेमें कोई भी विरोध नहीं है, क्योंकि भूतलमें घटाभाव भूतलका धर्म है, ऐसे ही पररूपाभाव भी घटका धर्म है। इस रीतिसे घटके भाव अभाव उभयरूप

सिद्ध हो गये। क्योंकि किसी अपेक्षासे तादात्म्य अर्थात् अभेद सम्बन्धसे सम्बन्धीही को स्वधर्मरूपता हो जाती है।

नन्वेवं रीत्या घटस्य भावाभावात्मकत्वे सिद्धेपि घटोस्ति पटो नास्तीत्येव वक्तव्यम्। पटाभावप्रतिपादनपरवाक्यस्य तथा प्रवृत्तेः। यथा भूतले घटो नास्तीति घटाभावप्रतिपादनपरं वाक्यम् प्रवर्तते न तु भूतलं नास्तीति, तथा प्रकृते पटाभावस्य घटात्मकत्वेपि पटो नास्तीत्येव प्रयोगो युक्तः। अभावबोधकवाक्यस्य प्रतियोगिप्रधानत्वात्। यथा घटप्रागभावस्य कपालात्मकत्वेपि कपालदशायां घटो भविष्यतीत्येव प्रागभावप्रतिपादकः प्रयोगो दृष्टः, न तु कपालो भविष्यतीति। यथा च घटध्वंसस्योत्तरकपालात्मकत्वेपि घटो नष्ट इत्येव प्रयोगः, तथा प्रकृतेपि। इति चेदुच्यते;–घटस्य भावाभावात्मकत्वे सिद्धेस्माकं विवादो विश्रान्तः, समीहितसिद्धेः। शब्दप्रयोगस्तु पूर्वपूर्वप्रयोगानुसारेण भविष्यति। न हि पदार्थसत्ताधीनश्शब्दप्रयोगः। तथा हि–देवदत्तः पचतीति प्रयोगो वर्तते। तत्र देवदत्तपदार्थश्शरीरं वा? आत्मा वा? शरीरविशिष्टात्मा वा? आद्ये देवदत्तस्य शरीरं पचतीति प्रयोगापत्तिः। द्वितीये देवदत्तस्यात्मा पचतीति प्रयोगापत्तिः। शरीरविशिष्टात्मा पचतीती प्रयोगाभावात्तृतीयपक्षेपि नोपपत्तिः। तथा च प्रतिपादितप्रयोगाभावे पूर्वपूर्वप्रयोगाभाव एव शरणम्। तथा च पूर्वपूर्वप्रयोगानुगुण्ययेन प्रयोगप्रवृत्तेश्शब्दप्रयोगस्य पर्यनुयोगानर्हत्वात्।

शङ्का। इस पूर्वोक्त रीतिसे घटकी भाव अभाव उभयरूपता सिद्ध होने पर भी घट है पट नहीं है ऐसा ही प्रयोग करना चाहिये, क्योंकि पटके अभाव प्रतिपादनमें तत्पर वाक्यकी प्रवृत्ति इस प्रकार हो सकती है। जैसे भूतलमें घट नहीं है, ऐसा वाक्य घटका अभाव–कथन करनेमें प्रवृत्त होता है। न कि भूतल नहीं है इस रीतिसे ऐसे ही पटाभावके घटरूप होनेपर पट नहीं है ऐसा ही वाक्यप्रयोग होना चाहिये। क्योंकि अभाव–बोधक वाक्यमें अभावका प्रतियोगी ही प्रधान रहता है। और जैसे कपाल दशामें घटका प्रागभाव, यद्यपि कपालस्वरूप होनेपर भी वहाँ कपाल दशामें घटके प्राग् अभाव–प्रतिपादक वाक्यका प्रयोग घट होगा ऐसा ही होता है न कि कपाल होगा ऐसा प्रयोग। ऐसे ही घटका प्रध्वंसाभाव कपालस्वरूप होने पर भी घट नष्ट हुआ ऐसा ही प्रयोग दृष्ट है. न कि कपाल नष्ट हुआ ऐसा प्रयोग कहीं दृष्ट है। ऐसे ही प्रकृत स्थलमें भी पट आदि पटरूपाभावसे पट आदि नहीं हैं यही प्रयोग होना उचित है। यदि ऐसी आशङ्का करो तो इसका उत्तर कहते हैं। घटको भाव अभाव उभय स्वरूप सिद्ध होनेसे हमारे विवादकी समाप्ति है, क्योंकि उभयरूपता माननेहीसे हमारे अभीष्ट की सिद्धि है। और शब्दप्रयोग तो पूर्वपूर्व प्रयोगके अनुसार होगा। क्योंकि शब्द-प्रयोग पदार्थकी सत्ताके वशीभूत नहीं है। जैसे "देवदत्तः पचति" देवदत्त पाक करता है ऐसा प्रयोग है। वहां पर देवदत्त पदका अर्थ देवदत्तका शरीर है, अथवा आत्मा है, अथवा शरीरसहित आत्मा है? यदि प्रथम पक्ष है तब तो "देवदत्तस्य शरीरं पचति"

देवदत्तका शरीर पकाता है ऐसा प्रयोग होना चाहिये । यदि द्वितीय पक्ष है तो देवदत्तका आत्मा पकाता है ऐसा शब्दप्रयोग होना उचित है, और शरीरसहित देवदत्तका आत्मा पकाता है ऐसे प्रयोगके अभावसे तृतीय पक्ष भी युक्त नहीं है । इस रीतिसे पूर्वकथित तीनों प्रकारके प्रयोग न होनेमें पूर्वपूर्व प्रयोगका अभाव ही शरण है । इस प्रकार पूर्व पूर्व प्रयोगके अनुकूल ही शब्द वा वाक्य प्रयोगोंकी प्रवृत्ति लोकमें दृष्ट है । इस हेतुसे पदार्थसत्ताका आश्रय लेकर शब्दप्रयोगमें आक्षेप करना अयोग्य है ।

किञ्च–घटादौ वर्तमानः पररूपाभावो घटाद्भिन्नोऽभिन्नो वा ? यदि भिन्नस्तस्यापि परत्वात्तदभाव–स्तत्र कल्पनीयः । अन्यथा तस्य परत्वानुपपत्त्या घटादेः कथंचिदसद्रूपत्वासिद्धेः । तदभावकल्पनायां चानवस्था, तस्यापि परत्वात् । घटादिषु पररूपस्यातानवितानाकारस्याभावाभावपरिकल्पनायां तेषां घटत्वापत्तिश्च, निषेधद्वयेन प्रकृतरूपसिद्धेः । यद्यभिन्नस्तर्हि सिद्धं स्वस्मादभिन्नेन भावधर्मेण घटादौ सत्त्ववदभाव–धर्मेण तादृशेनासत्त्वमपि स्वीकरणीयमिति ।

और भी घट आदिमें पररूपका जो अभाव है वह घटसे भिन्न है; अथवा अभिन्न है ? यदि घटसे भिन्न है तब तो उसके भी पर होनेसे वहाँ उसके अभावहीकी कल्पना करनी चाहिये । और यदि ऐसा न मानो तो पररूपाभावके घटसे परत्व अयुक्त होनेसे घट आदिकी जो कथंचित् असत्‌रूपता अनेकान्त पक्षमें मानी जाती है उस असत्‌रूपताकी असिद्धि होगी । और पररूपाभाव की भी यदि अभाव कल्पना करो तो अनवस्था दोष आजायगा, क्योंकि वह अभाव भी पररूप ही है । और घट आदिमें आतानवितानाकार (पटादिकी रचना) स्वरूप पररूपके अभावाभावकी कल्पना करने पर वे सब घटरूप हो जायेंगे, क्योंकि दो निषेधसे प्रकृतरूपकी सिद्धि होती है । जैसे घटाभावाभाव घटस्वरूप होता है ऐसे ही घटमें पररूपाभावाभाव भी घटस्वरूप ही होजायगा । और यदि पररूपाभाव घटसे अभिन्न है तो हमारा अभीष्ट सिद्ध होगया, क्योंकि अपनेसे अभिन्न भाव धर्मसे घट आदिमें जैसे सत्त्वरूपता है ऐसे ही अपनेसे अभिन्न अभाव धर्मसे असत्त्वरूपता भी घट आदिमें स्वीकार करनी चाहिये ।

ननु–स्वरूपेण भाव एव पररूपेणाभावः पररूपेणाभाव एव च स्वरूपेण भाव इति भावाभावयोरेकत्र वस्तुनि भेदाभावाद्वस्तुनः कुतस्तदुभयात्मकता, इति चेत्; भावाभावापेक्षणीयस्य निमित्तस्य भेदादिति ब्रूमः । स्वद्रव्यादिकं हि निमित्तमपेक्ष्य भावप्रत्ययं जनयत्यर्थः, परद्रव्यादिकं चाभावप्रत्ययम्, इत्येकत्वद्वित्वादिसंख्या-वदेकवस्तुनि भावाभावयोर्भेदः । नह्येकत्र द्रव्ये द्रव्यान्तरमपेक्ष्य द्वित्वादिसंख्या प्रकाशमाना स्वात्ममात्रोपक्ष्यै-कत्वसंख्यातोऽन्या न प्रतीयते । नाप्येकत्वद्वित्वरूपोभयसंख्यातद्वतोभिन्नैव, [द्रव्यस्यासंख्येयत्वप्रसंगात् । संख्या-समवायाद्द्रव्यस्य संख्येयत्वमिति तु न, कथचित्तादात्म्यव्यतिरेकेण समवायासम्भवात् । तस्मात्सिद्धोऽपेक्षणीय भेदात्संख्यावत्सत्त्वासत्त्वयोर्भेदः । भिन्नयोश्चानयोरेकवस्तुनि प्रतीयमानत्वात्को विरोधः !

शङ्का-स्वरूपसे भावहीका ग्रहण होता है और पररूपसे अभावहीका, ऐसे हो पररूपसे अभाव मात्र और स्वरूपसे भाव मात्र गृहीत होता है। इस प्रकार एक वस्तुमें भाव अभावका कोई भी भेद नहीं तब वस्तु भाव अभाव उभयरूप कैसे हो सकता है ? यदि ऐसा कहो तो भाव तथा आभवकी अपेक्षाके निमित्तभूत जो पदार्थ हैं उनके भेदसे भावाभावस्वरूप वस्तु है ऐसा कहते हैं, क्योंकि स्वद्रव्य आदि निमित्तकी अपेक्षा करके वस्तु भावरूप बोधको उत्पन्न करता है और परद्रव्य आदि निमित्त मानकर अभावरूप दोधको उत्पन्न करता है। इस प्रकार एक वस्तुमें एकत्व द्वित्व संख्याके सदृश भाव अभावका भेद है। क्योंकि एक द्रव्यमें द्रव्यान्तरकी अपेक्षा करके प्रकाशमान जो द्वित्व आदि संख्या है वह स्वकीय निजस्वरूपकी अपेक्षा करनेवाली एकत्व संख्यासे भिन्न नहीं प्रतीत होती। और एकत्व द्वित्व एतत् उभय संख्या भी संख्यावान् पदार्थसे भिन्न नहीं है, क्योंकि संख्यासे संख्यावान् द्रव्य सर्वथा भिन्न होनेसे द्रव्य असंख्येय हो जायगा। और संख्याका द्रव्यमें समवाय सम्बन्ध होनेसे द्रव्य संख्येय रहेगा ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि कथंचित् तादात्म्यसे भिन्न होनेसे समवायका सिद्ध होना असंभव है। इसलिये संख्याके समान अपेक्षाके निमित्तभूत वस्तुके भेदसे सत्व और असत्वका भेद भी सिद्ध होगया। और एक पदार्थमें भिन्नरूपसे भासमान भाव अभाव अथवा सत्वका क्या विरोध है !

ननु-सत्त्वासत्त्वयोरेकवस्तुनि प्रतीतिर्मिथ्येति चेन्न, बाधकाभावात्। विरोधो बाधक इति चेन्न; परस्पराश्रयापत्तेः, सति हि विरोधे प्रतीतेस्तेन बाध्यमानत्वान्मिथ्यात्वसिद्धिः, ततश्च सत्वासत्वयोर्विरोध-सिद्धिः इति।

शङ्का--एक वस्तुमें सत्त्व तथा असत्त्वकी प्रतीति ही मिथ्या है। ऐसी शङ्का नहीं कर सकते, क्योंकि बिना किसी बाधाके सत्त्व असत्व दोनों भासते हैं। सत्व असत्वका विरोध ही बाधक है यह कथन भी युक्त नहीं है, क्योंकि इन दोनोंकी सिद्धिमें अन्यो-न्याश्रय दोष है। प्रथम प्रतीतिका विरोध हो तो उससे प्रतीति बाधित होकर उसका मिथ्यात्व सिद्ध हो। और प्रतीतिका[1] मिथ्यात्व सिद्ध होने से सत्व असत्वका विरोध सिद्ध हो। यह अन्योन्याश्रय है। इसलिये सत्व असत्वका एक वस्तुमें भान होना मिथ्या नहीं है।

किञ्च-विरोधस्तावत्त्रिधा व्यवतिष्ठते, वध्यघातकभावेन, सहानवस्थानात्मना वा, प्रतिबद्धय-प्रतिबन्धकरूपेण वा। तत्राद्ये त्वहिनकुलाग्न्युदकादि विषयः। स चैकस्मिन् काले वर्तमानयो-रसंयोगे सति भवति, संयोगस्यानेकाश्रयत्वात् द्वित्ववत्। नासंयुक्तमुदकमग्निं नाशयति, सर्व-त्राग्न्यभावप्रसंगात्। ततस्सति संयोगे बलीयसोत्तरकालमितरद्बाध्यते। न हि तथाऽस्तित्वना-

---

१ बोध.

स्तित्वयोः क्षणमात्रमप्येकस्मिन्वृत्तिरस्तीति भवताभ्युपगम्ते, यतो वध्यघातकभावरूपो विरोधस्तयोः कल्प्येत । यदि चैकस्मिंस्तयोर्वृत्तिरभ्युपगम्यते, तदा तयोस्तुल्यबलत्वान्न वध्यघातकभावः ॥ नापि सहानवस्थानलक्षणो विरोधः, स चैकत्र कालभेदेन वर्तमानयोर्भवति, यथा आम्रफले श्यामतापीततयोः । उत्पद्यमाना हि पीतता पूर्वकालभाविनीं श्यामतां नाशयति । न हि तथाऽस्तित्वनास्तित्वे पूर्वोत्तरकालभाविनी । यदि स्याताम्—अस्तित्वकाले नास्तित्वाभावाज्जीवसत्तामात्रं सर्वं प्राप्नुवीत । नास्तित्वकाले चास्तित्वाभावात्तदाश्रयो बन्धमोक्षादिव्यवहारो विरोधमुपगच्छेत । सर्वथैवासतः पुनरात्मलाभाभावात्, सर्वथा च सतः पुनरभावप्राप्त्यनुपपत्तेर्नैतयोस्सहानवस्थानं युज्जते ॥ तथास्तित्वनास्तित्वयोः प्रतिवध्यप्रतिबन्धकभावरूपविरोधोपि न सम्भवति । यथा—सति मणिरूपप्रतिबन्धके वह्निना दाहो न जायत इति मणिदाहयोः प्रतिवध्यप्रतिबन्धकभावो युक्तः, न हि तथाऽस्तित्वकाले नास्तित्वस्य प्रतिबन्धः, स्वरूपेणास्तित्वकालेपि पररूपादिना नास्तित्वस्य प्रतीतिसिद्धत्वात्, इति ॥

और विरोध तीन प्रकारसे होता है । प्रथम वध्यघातकभावसे. अर्थात् एकके वध्य और दूसरेके घातक होनेसे विरोध होता है । दूसरा एकसाथ स्थिति न होनेसे, और तृतीय प्रतिवध्य प्रतिबन्धक भावसे । उनमेंसे प्रथम पक्षका विरोध सर्प नकुल तथा अग्नि और जल आदिके विषयमें है । वह वध्य घातकका विरोध एक कालमें वर्तमान वध्य तथा घातकके संयोग होने पर होता है, क्योंकि द्वित्व आदि संख्याके तुल्य संयोग भी अनेकके आश्रयमें रहता है । और असंयुक्त नकुल सर्पका तथा असंयुक्त जल भी अग्निका नाश नहीं कर सकता । यदि संयोगके विना ही घातक अपने वध्यका नाश करे तब तो सर्वत्र सर्प तथा अग्नि आदिका अभाव ही होजायगा, इस हेतुसे संयोग होनेपर उत्तर कालमें बलवान् निर्बलको बाधा करता है और आप तो एक वस्तुमें अस्तित्वकी क्षणमात्र भी स्थिति नहीं स्वीकार करते जिससे उनका वध्यघातकरूप विरोधको कल्पना हो । और यदि एक पदार्थमें उनकी वृत्ति स्वीकार करो तो अस्तित्व नास्तित्वका समान बल होनेसे वध्यघातकभावसे विरोध भी नहीं होसकता । और एकसाथ स्थितिका अभावरूप विरोध भी नहीं है क्योंकि वह एक वस्तुमें कालभेदसे दोनों विद्यमान होनेपर होता है। जैसे आमके फलमें श्यामता और पीतताका । क्योंकि पीतता उत्पन्न होती हुई श्यामता को नष्ट करती है । और अस्तित्व तथा नास्तित्व श्यामता पीतताके तुल्य पूर्वोत्तर कालमें होनेवाले नहीं । और यदि-अस्तित्व नास्तित्व पूर्व तथा उत्तर कालभावी होते तो अस्तित्व कालमें नास्तित्वके अभावसे जीव सत्ता मात्रको सब पदार्थ प्राप्त हो जायेंगे । ऐसे ही नास्तित्व कालमें अस्तित्वके अभावसे उसके आश्रयीभूत बन्ध मोक्ष आदि सम्पूर्ण व्यवहार विरोधको प्राप्त होजायगा । और सर्वथा असत्के अभाव अर्थात् नाशके अयुक्त न होनेसे अस्तित्व और नास्तित्वके एक साथ स्थितिका अभाव होना युक्त नहीं है । इस रीतिसे अस्तित्व और नास्तित्वका प्रतिवध्यप्रतिबन्धकभावरूप विरोधका भी

सम्भव नहीं है। जैसे दाहके प्रतिबन्धक चन्द्रकान्त मणिके विद्यमान रहते अग्निसे दाहक्रिया नहीं उत्पन्न होती इसलिये मणि तथा दाहका प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभाव युक्त है, किन्तु मणि और दाहके तुल्य अस्तित्वकालमें नास्तित्वका कोई प्रतिबन्ध नहीं है, क्योंकि स्वरूपसे वस्तुके अस्तित्वकालमें भी पररूपादिसें नास्तित्वप्रतीति (अनुभव) सिद्ध है। इस रीतिसे विरोध नहीं है ॥

यत्तु शीतोष्णस्पर्शयोरिवेति दृष्टान्तकथनम्, तदसत्। एकत्रधूपघटादाववच्छेदकभेदेन शीतोष्णस्पर्शयोरुपलम्भात्तयोरपि विरोधासिद्धेः।

और जो शीत उष्ण स्पर्शके तुल्य एक वस्तुमें भाव अभाव नहीं रह सकते इस दृष्टान्तका कथन हुआ था वह भी असत् है, क्योंकि एक धूपके दाह सहित घट आदिमें अवच्छेदकके भेदसे शीत तथा उष्ण स्पर्शकी उपलब्धि होनेसे उनके विरोधकी असिद्धि है।

यथैकत्र चलाचलात्मनोर्वृक्षादौ रक्तारक्तात्मनोर्घटादावावृतानावृतात्मनोश्शरीरादौ चोपलम्भादविरोधस्तथा सत्त्वासत्त्वयोरपि।

और जैसे एक वृक्षमें अवच्छेदकभेदसे चल तथा अचलस्वरूपकी, एक घट आदिमें रक्त तथा श्याम स्वरूपकी और एक शरीरमें आच्छादित और अनाच्छादित स्वरूपकी उपलब्धिसे अविरोध है, ऐसे ही एक पदार्थमें सत्त्व असत्त्वकी स्थितिमें भी विरोध नहीं है।

एतेन वैयधिकरण्यमपास्तम्, सत्त्वासत्त्वयोरेकाधिकरणतया प्रतीतिसिद्धत्वात्।

इस पूर्वोक्त कथनसे वैयधिकरण्य दोष भी खण्डित होगया, क्योंकि एक अधिकरणकी अपेक्षा भेदसे सत्त्व तथा असत्त्वकी स्थिति अनुभवसिद्ध है।

यच्चानवस्थानदूषणमुक्तम्, तदपि नानेकान्तवादिनां दोषः। अनन्तधर्मात्मकस्य वस्तुनः स्वयं प्रमाणप्रतिपन्नत्वेनाभ्युपगमात्, अप्रामाणिकपदार्थपरम्परापरिकल्पनाविरहात्।

और जो सत्त्व असत्त्वकी एक वस्तुमें साथ स्थितिका अभावरूप दोष कहा है वह दोष भी अनेकान्तवादियोंको नहीं है, क्योंकि अनेक धर्मस्वरूप वस्तु प्रमाणसे सिद्ध होनेसे स्वयं स्वीकार कर चुके हैं, और अप्रमाणिक पदार्थोंकी परम्पराकी कल्पनाका यहाँ सर्वथा अभाव ही है।

एतेन संकरव्यतिकरावपि निरस्तौ प्रतीतिसिद्धेऽर्थे कस्यापि दोपस्याभावात्, दोषाणां प्रतीत्यसिद्धपदार्थगोचरत्वात्। संशयादयश्च पूर्वमेव निरस्तप्रायाः। इत्यन्यत्र विस्तरः।

इसी पूर्व कथनसे संकर तथा व्यतिकर ये दोनों दूषण भी परास्त हुये, क्योंकि अनुभवसिद्ध पदार्थ सिद्ध होने पर किसी भी दोषका अवकाश नहीं है। जब पदार्थकी सिद्धि अनुभवसे विरुद्ध होती है तभी वह दोषोंका विषय होता है। स्वरूपसे सत्व और पररूपादिसे असत्व अनुभवसिद्ध होनेसे संकर तथा व्यतिकर दोष नहीं है। और संशय तथा अप्रतिपत्ति आदिका निरास तो प्रथम ही करचुके हैं इसका विस्तार अन्यत्र पूर्ण रीतिसे है।

अथैवमुपपत्त्या विरोधादिदोषाभावे प्रतिपादितेऽपि मिथ्यादर्शनाभिनिवेशात्तत्त्वमप्रतिपद्यमानं पुरुषं प्रति सार्वलौकिकहेतुवादमाश्रित्योच्यते । स्वेष्टार्थसिद्धिमिच्छता प्रवादिना हेतुः प्रयोक्तव्यः, प्रतिज्ञामात्रेणार्थसिद्धेरभावात् । स च हेतुः स्वपक्षस्य साधकः परपक्षस्य दूषकश्च । येन रूपेण हेतोस्साधकत्वं येन च रूपेण दूषकत्वं न तादृशे रूपे हेतोरत्यन्तभिन्ने, तयोर्हेतुधर्मत्वेन हेत्वपेक्षया कथञ्चिदभिन्नत्वात् । न हि तयोर्हेत्वपेक्षयाऽनन्यत्वाद्येन रूपेण साधकत्वं तेन रूपेण दूषकत्वं च सम्भवतीति संकरः, येन रूपेण साधकत्वं तेन रूपेण दूषकत्वमेवेति व्यतिकरो वा, साधकत्वदूषकत्वयोर्विरोधो वा सम्भवति; [1]तथाऽनेकान्तप्रक्रियायामपि विरोधादिदोषानवतारः ।

अब यद्यपि शास्त्र तथा युक्तिपूर्वक विरोध आदि दोषोंका अभाव जैन मतसे प्रतिपादित होने पर भी मिथ्यादर्शनके आग्रहसे तत्व न ग्रहण करनेवाले पुरुषके प्रति सर्व लोकसिद्ध हेतुवादका आश्रय लेकर कहते हैं । अपने अभीष्ट साध्यकी सिद्धि चाहनेवाले प्रौढ़वादीको हेतुका प्रयोग अवश्य करना चाहिये, क्योंकि केवल प्रतिज्ञामात्रसे अभिलषित अर्थकी सिद्धि नहीं होती, और वह हेतु भी स्वपक्षका तो साधक तथा पर पक्षका बाधक होना चाहिये । जिस हेतुरूपसे स्वपक्षकी साधकता और जिस रूपसे परपक्षकी दूषणता होती है वे दोनों रूप हेतुसे अत्यन्त भिन्न नहीं होते । साधकत्व तथा दूषकत्व हेतुके धर्म होनेसे हेतुकी अपेक्षा कथंचित् अभिन्नरूप हैं । हेतुकी अपेक्षासे वे अभिन्न स्वरूप होनेसे जिस रूपसे [2]साधकत्व है उसी रूपसे दूषकत्व भी सम्भव है, इस कारण वहां पर संकर दोष नहीं माना जाता । अथवा जिस रूपसे साधकत्व है उसी रूपसे दूषकत्व भी है, इस हेतुसे व्यतिकर दोष भी स्वीकृत नहीं है । अथवा साधकत्व दूषकत्वका विरोध ही सम्भव है । जैसे हेतुके साधकत्व दूषकत्वरूपमें संकर व्यतिकर तथा विरोध नहीं है ऐसे ही अनेकान्तवाद प्रक्रियामें भी विरोध आदि दोषोंका अवकाश नहीं है ।

वस्तुतस्तु—अनेकान्तप्रक्रियायां सर्वेषां प्रवादिनामपि प्रतिपत्तिरेव । एकानेकात्मकस्य वस्तुन स्सर्वसम्मतत्वात् ।

और यथार्थमें अनेकान्त प्रक्रियामें सब वादियोंकी सम्मति है, क्योंकि एक तथा अनेकस्वरूप वस्तु सबको सम्मत है ॥

सांख्यास्तावत्—सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रधानमित्याहुः । तेषां मते प्रसादलाघवशोषतापवारणादिभिन्नस्वभावानामनेकात्मनामेकप्रधानात्मकत्वस्वीकारेणैकानेकात्मकवस्तुनः स्वीकृतत्वात् । ननु प्रधानं नामैकं वस्तु नास्ति, साम्यावस्थामापन्नास्सत्त्वरजस्तमोगुणा एव प्रधानम्, सत्त्वरजस्तमसां समूहे

---

१ यथैकस्यैव हेतोरेकरूपेण स्वपक्षसाधकत्वं तदन्यरूपेण परपक्षदूषकत्वमित्यमित्यंगीकारेऽपि तादृशहेतौ वर्तमानयोः कथंचिद्भिन्नाभिन्नयोस्तादृशरूपयोस्संकरो व्यतिकरो विरोधश्च न सम्भवति, तथैव सत्त्वासत्त्वयोरप्येकत्र वर्तमानयोस्तदनावो निर्वाह्य इति भावः । (इतिटिप्पणी)

२ जैसे निर्दोषरूप हेतुसे अर्हत्की सर्वज्ञता सिद्ध होती है और उसीसे सदोषकी असर्वज्ञता भी फलित होती है ।

प्रधानपदशक्तेस्स्वीकारादिति चेन्न; तथाप्येकानेकात्मकवस्तुस्वीकारस्याक्षतत्वात्। समुदायसमुदायिनोरभेदात्समुदायिनां गुणानामनेकेषां समुदायस्य चैकस्याभेदाभ्युपगमात्।

प्रथम सांख्यवादी सत्त्व रजस् तमो गुणकी साम्याऽवस्थाको प्रधान अथवा प्रकृति ऐसा कहते हैं उनके मतमें प्रसाद, लाघव, शोष, ताप तथा वारण आदि भिन्न भिन्न स्वभाववाले अनेक स्वरूप पदार्थोंका एक प्रधान स्वरूप स्वीकार करनेहीसे एक अनेक स्वरूप पदार्थ स्वीकृत होचुका। कदाचित् ऐसा कहो कि प्रधान कोई एक वस्तु नहीं है, किन्तु साम्यावस्थाको प्राप्त सत्त्व रजस् तथा तमो गुण ही प्रधान है, क्योंकि सत्त्व रजस् तथा तमो गुणके समूहमें ही प्रधान पदकी शक्तिका स्वीकार है। सो ऐसा नहीं कह सकते। यद्यपि तीनों गुणोंका समूह ही प्रधान है, तथापि एक वस्तु अनेकात्मक स्वीकार करना अखण्डित है, क्योंकि समुदाय तथा समुदायीका भेदभाव नहीं है। अनेक समुदायी (समुदायके अनेक अवयव) गुणोंका तथा समुदायका अभेद स्वीकृत है।

नैयायिकास्तु-द्रव्यत्वादिकं सामान्यविशेषमभ्युपगच्छन्ति। अनुवृत्तिव्यावृत्तिप्रत्ययविषयत्वाद्द्रव्यत्वादिकं सामान्यविशेषः। द्रव्यं द्रव्यमित्यनुगतबुद्धिविषयत्वात्सामान्यम्। गुणो न द्रव्यं कर्म न द्रव्यमिति व्यावृत्तिबुद्धिविषयत्वाद्विशेष इति। एवं च सामान्यविशेषात्मकत्वमेकस्याभ्युपगतम्। एवं गुणत्वं कर्मत्वं च सामान्यविशेष इति बोध्यम्।

और नैयायिक तो द्रव्य[1] आदि पदार्थोंको सामान्य विशेषरूप स्वीकार करते ही हैं। अनुवृत्त[2] तथा व्यावृत्त[3] स्वभाववाला होनेसे द्रव्यत्व आदि सामान्य तथा विशेषमय हैं। पृथिवी जल तथा वायु आदिमें "द्रव्यं द्रव्यम्" पृथिवी द्रव्य है जल द्रव्य है वायु द्रव्य है, इस प्रकार द्रव्यत्व सर्वत्र अनुगत बुद्धिका विषय होनेसे सामान्यरूप है। तथा गुण द्रव्य नहीं है कर्म द्रव्य नहीं है इस प्रकार व्यावृत्त बुद्धिका विषय होनेसे विशेषरूप भी है। इस रीतिसे एक वस्तुको सामान्य विशेषरूप नैयायिकोंने माना है। ऐसे ही गुणत्व कर्मत्व भी सामान्य विशेषरूप हैं। ऐसा समझना चाहिये।

सौगतास्तु-मेचकज्ञानमेकमनेकाकारमभ्युपगच्छन्ति। पञ्चवर्णात्मकं रत्नं मेचकम्। तज्ज्ञानं नैकप्रतिभासात्मकमेव, चित्रज्ञानत्वविरोधात्। नीलपीतादिनानाकारज्ञानं हि चित्रज्ञानं, नत्वेकाकारमेव। नापि मेचकज्ञानमनेकमेव, मेचकज्ञानमिदमित्यनुभवविरोधात्, इमानि मेचकज्ञानानीत्यनुभवप्रसंगाच्च। ततश्च तदेकानेकात्मकं चित्रज्ञानं सौगतादीनामभिमतम्।

तथा बौद्ध मतानुयायी भी मेचक मणिके ज्ञानको एक और अनेकाकार मानते हैं। पञ्चवर्णस्वरूप रत्नको मेचक कहते हैं, उस मेचक मणिका ज्ञान एक प्रतिभासरूप नहीं

---

१ द्रव्य कर्म तथा गुण इन तीन पदार्थोंको नैयायिक सामान्य विशेषात्मक मानते हैं. २ अनेकमें एक प्रकारकी बुद्धि चली जाय उसको अनुगत बुद्धि कहते हैं, जैसे पृथिवी जलादिमें द्रव्यविषक बुद्धि. ३ जो अन्य पदार्थोंसे एकको पृथक् करे उसको व्यावृत्त बुद्धि कहते हैं, जैसे गुण द्रव्य नहीं है कर्म द्रव्य नहीं है।

है। चित्र ज्ञानत्वका विरोध है क्योंकि नील पीतादि नाना प्रकारका ज्ञान ही चित्र ज्ञान है न कि एकाकार ज्ञान। और मेचकका अनेक पदार्थ विषयक भी नहीं है क्योंकि यह एक मेचकका ज्ञान इस अनुभवके विरुद्ध अनेक ज्ञान हैं और अनेक ज्ञान होनेमें मेचकके अनेक ज्ञान ऐसा अनुभव होजायगा। इस हेतुसे यह एक ही अनेकस्वरूप चित्र ज्ञान बौद्धोंको अभिमत है।

चार्वाकास्तु-"पृथिव्यापस्तेजोवायुरिति चत्वारि तत्त्वानि, तेभ्यश्चैतन्यं, किण्वादिभ्यो मदशक्तिवत्" इति बार्हस्पत्यसूत्रानुरोधात्पृथिव्यादिभूतचतुष्टयपरिणामश्चैतन्यमिति वदन्ति। तच्च न पृथिव्याद्यपेक्षयाऽतिरिक्तमेकं तैरभ्युपगम्यते, तत्त्वान्तरप्रसंगात्, भूतचतुष्टयवादव्याघातात्। नापि पृथिव्यादिकमेकैकमेव तत्, घटादेरपि चेतनत्वापत्तेः। किन्तु पृथिव्याद्यनेकात्मकमेकं चैतन्यमिति।

और चार्वाकादि तो-पृथिवी जल तेज तथा वायु ये चार तत्त्व हैं उनसे ही चैतन्य ऐसे उत्पन्न होता है जैसे कोद्रव आदिसे मादक शक्ति, इस बृहस्पतिके सूत्रके अनुसार पृथिवी आदि चारों भूतोंका परिणाम ही चैतन्य है ऐसा कहते हैं। इस कारण पृथिवी आदि भूतचतुष्टयसे भिन्न चैतन्य चार्वाकादि नहीं मानते, क्योंकि पृथक् माननेसे चेतन अन्य तत्त्व सिद्ध होगा। और चार भूतोंसे भिन्न कुछ नहीं है इस कथनका व्याघात होगा। और चार्वाकके मतमें पृथिवी आदि एक एक पदार्थ भी चेतन नहीं है, क्योंकि ऐसा माननेसे घट आदि भी चेतन होजायेंगे। किन्तु उनका सिद्धान्त यह है कि पृथिवी आदि अनेक स्वरूप एक ही चैतन्य है।

मीमांसकास्तु-प्रमातृप्रमितिप्रमेयाकारमेकं ज्ञानम्, घटमहं जानामीत्यनुभवात्; ज्ञानानां स्वतः प्रकाशत्वात्, इति वदन्ति। तत्रानेकपदार्थनिरूपितविषयताशाल्येकं ज्ञानं स्वीकृतम्। विषयतानां च ज्ञानस्वरूपत्वात्तादृशविषयतात्रयात्मकमेकं ज्ञानं स्वीकृतमिति। एवंरीत्या मतान्तरेष्वनेकान्तप्रक्रिया बुद्धिमद्भिरूह्येति सर्वमवदातम्।

ओर मीमाँसक कहते हैं कि प्रमाता प्रमिति तथा प्रमेयाकार एक ही ज्ञान होता है। इसमें घटको मैं जानता हूँ यह अनुभव तथा ज्ञानको स्वतः प्रकाशकत्व हेतु है। इसमें प्रमाता प्रमिति तथा प्रमेयरूप अनेक पदार्थ विषयता सहित एक ही ज्ञान स्वीकार किया है। प्रमाता आदि विषयनिष्ठ विषयताओंको भी ज्ञानस्वरूप माननेसे तादृशत्रितयविषयतास्वरूप एक ही ज्ञान स्वीकार किया है। इस प्रकार अन्य मतोंमें भी अनेकान्त प्रक्रिया बुद्धिमानोंको कल्पना करलेनी चाहिये, अतः अनेकान्तवाद सर्वथा दोषरहित शुद्ध है।

अनेकभंगैराक्रान्ता सिद्धान्ताम्बुधिसंगता। करोतु विद्वदानन्दं सप्तभङ्गीतरङ्गिणी ॥

स्यादस्ति आदि अनेक भङ्गोंसे समाविष्ट तथा सिद्धान्तरूपी समुद्रसे संयुक्त यह सप्तभङ्गीतरङ्गिणी सर्वदा विद्वानोंको आनन्द सम्प्रदान करे।

श्रीमत्पंचगुरुदेवेभ्यो नमः।

पञ्चपरमेष्ठी गुरुदेवोंको नमस्कार।

प्लवंगसंवत्सरे वैशाखशुद्धेऽष्टम्यां तिथौ बृहस्पतिवासरे पुण्यनक्षत्रे सुकर्मनामयोगे राजिवकरणे एवंविधशुभमुहूर्ते 'तंजा' नगरे श्रीमदादितीर्थेश्वरस्वामिसन्निधौ कटकलग्ने वीरनामग्रामवासिना श्रीमदनन्तसेन-देवस्वामिनां प्रियाग्रशिष्येण विमलदासेन सप्तभङ्गी नाम तर्कग्रन्थो लिखितः।

प्लवङ्ग नामक सम्वत्सर वैशाख शुद्ध अष्टमी तिथि बृहस्पति वार पुष्य नक्षत्र सुकर्म नाम योग राजीव नाम करण संयुक्त शुद्ध मुहूर्तमें तंजा नाम नगरमें श्रीमान् आदि तीर्थेश्वर स्वामीके समीप वीरग्रामनिवासी श्रीमान् अनन्तदेव स्वामीके प्रिय तथा श्रेष्ठ शिष्य विमलदासने इस सप्तभङ्गी तरङ्गिणी नामक तर्कग्रन्थका निर्माण किया।

समाप्तोयं सप्तभङ्गीतरङ्गिण्या अनुवादः (अर्थ–यह सप्तभङ्गी तरङ्गिणी नामक ग्रन्थका भाषानुवाद समाप्त हुवा।)

करकृतमपराधं क्षन्तुमर्हन्ति सन्तः। हस्तकृत अपराध महात्माओंको क्षन्तव्य है।

॥ जिनागमेभ्यो जिनमुनिभ्यो नमो नमः ॥

१९६०

करकृतमपराधं क्षन्तुमर्हन्ति सन्तः।
जिनागमेभ्यो जिनमुनिभ्यो नमो नमः॥

शून्यर्तुनवचन्द्रेऽब्दे स्वाषाढैकादशीतिथौ।
ठाकुरप्रसादविदुषा ग्रन्थोऽयं समनूदितः॥१॥

श्रीगुरुचरणकमलेभ्यो भूयो भूयो नमो नमः॥

चन्द्ररसग्रहैकेऽब्दे श्रावणे मास्यमातिथौ।
एष ग्रन्थो मया शोधि रामजीलालशर्म्मणा॥१॥

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास द्वारा संचालित

परमश्रुतप्रभावक-मण्डल (श्रीमद् राजचन्द्र जैन शास्त्रमाला) के

प्रकाशित ग्रन्थोंकी सूची

---

(१) गोम्मटसार—जीवकाण्ड :

श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिकृत मूल गाथायें, श्रीब्रह्मचारी पं. खूबचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री-कृत नयी हिन्दीटीका युक्त। अबकी बार पंडितजीने धवल, जयधवल, महाधवल और बड़ी संस्कृतटीकाके आधारसे विस्तृत टीका लिखी है। चतुर्थावृत्ति। मूल्य-नौ रुपये।

(२) स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा :

स्वामिकार्त्तिकेयकृत मूल गाथायें, श्रीशुभचन्द्रकृत बड़ी संस्कृतटीका, स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसीके प्रधानाध्यापक, पं. कैलासचन्द्रजी शास्त्रीकृत हिन्दीटीका। अंग्रेजी प्रस्तावनायुक्त। सम्पादक-डा. आ. ने. उपाध्ये, कोल्हापुर। मूल्य-चौदह रुपये।

(३) परमात्मप्रकाश और योगसार :

श्रीयोगीन्दुदेवकृत मूल अपभ्रंश-दोहे, श्रीब्रह्मदेवकृत संस्कृत-टीका व पं. दौलतरामजीकृत हिन्दी-टीका। विस्तृत अंग्रेजी प्रस्तावना और उसके हिन्दीसार सहित। महान अध्यात्मग्रन्थ। डा. आ. ने. उपाध्येका अमूल्य सम्पादन। नवीन संस्करण। मूल्य-बारह रुपये

(४) ज्ञानार्णव :

श्रीशुभचन्द्राचार्यकृत महान योगशास्त्र। सुजानगढ़निवासी पं. पन्नालालजी बाकलीवालकृत हिन्दी अनुवाद सहित। सुन्दर चतुर्थ आवृत्ति। मूल्य-बारह रुपये

(५) प्रवचनसार :

श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यविरचित ग्रन्थरत्नपर श्रीमदमृतचन्द्राचार्यकृत तत्त्वप्रदीपिका एवं श्रीमज्जयसेनाचार्यकृत तात्पर्यवृत्ति नामक संस्कृत टीकायें तथा पांडे हेमराजजी रचित बालावबोधिनी भाषाटीका। डा. आ. ने. उपाध्येकृत अध्ययनपूर्ण अंग्रेजी अनुवाद और विशद प्रस्तावना आदि सहित आकर्षक सम्पादन। तृतीयावृत्ति। मूल्य-पन्द्रह रुपये।

(६) बृहद्द्रव्यसंग्रह :

आचार्य नेमिचन्द्रसिद्धांतिदेवविरचित मूल गाथा, श्रीब्रह्मदेवविनिर्मित संस्कृतवृत्ति और पं. जवाहरलालशास्त्रीप्रणीत हिन्दी-भाषानुवाद सहित। षड्द्रव्यसप्ततत्त्वस्वरूपवर्णनात्मक उत्तम ग्रन्थ। तृतीयावृत्ति। मूल्य-पाँच रुपये पचास पैसे।

(७) पुरुषार्थसिद्ध्युपाय :

श्रीअमृतचन्द्रसूरिकृत मूल श्लोक। पं. टोडरमल्लजी तथा पं. दौलतरामजीकी टीकाके

आधार पर स्व. पं. नाथूरामजी प्रेमी द्वारा लिखित नवीन हिन्दी टीका सहित। श्रावक-मुनि-धर्मका चित्तस्पर्शी अद्भुत वर्णन। पंचमावृत्ति। मूल्य–तीन रुपये पच्चीस पैसे।

(८) अध्यात्म राजचन्द्र :

श्रीमद् राजचन्द्रके अद्भुत जीवन तथा साहित्यका शोध एवं अनुभवपूर्ण विवेचन डा, भगवानदास मनसुखभाई महेताने गुर्जरभाषामें किया है। मूल्य–सात रुपये।

(९) पंचास्तिकाय :

श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यविरचित अनुपम ग्रन्थराज। आ. अमृतचन्द्रसूरिकृत 'समयव्याख्या' एवं आचार्य जयसेनकृत 'तात्पर्यवृत्ति'—नामक संस्कृत टीकाओंसे अलंकृत और पांडे हेमराजजी-रचित बालावबोधिनी भाषा-टीकाके आधार पर पं. पन्नालालजी बाकलीवालकृत प्रचलित हिन्दी अनुवाद सहित। तृतीयावृत्ति। मूल्य–सात रुपये।

(१०) अष्टप्राभृत :

श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्य विरचित मूल गाथाओं पर श्रीरावजीभाई देसाई द्वारा गुजराती गद्य-पद्यात्मक भाषांतर। मोक्षमार्गकी अनुपम भेंट। मूल्य–दो रुपये मात्र।

(११) भावनाबोध—मोक्षमाला :

श्रीमद् राजचन्द्रकृत। वैराग्यभावना सहित जैनधर्मका यथार्थ स्वरूप दिखाने वाले १०८ सुन्दर पाठ हैं। मूल्य–दो रुपये पचास पैसे।

(१२) स्याद्वाद मंजरी :

श्रीमल्लिषेणसूरिकृत मूल और श्रीजगदीशचन्द्रजी शास्त्री एम. ए., पी.एच. डी. कृत हिन्दी-अनुवाद सहित। न्यायका अपूर्व ग्रन्थ है। बड़ी खोजसे लिखे गये १६ परिशिष्ट हैं। मूल्य–दस रुपये।

(१३) गोम्मटसार—कर्मकाण्ड :

श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिकृत मूल गाथाएँ, स्व. पं. मनोहरलालजी शास्त्रीकृत संस्कृतछाया और हिन्दीटीका। जैनसिद्धान्त-ग्रन्थ है। तृतीयावृत्ति। मूल्य–सात रुपये।

(१४) इष्टोपदेश :

श्रीपूज्यपाद देवनन्दिआचार्यकृत मूल श्लोक, पंडितप्रवर आशाधरकृत संस्कृतटीका, पं. धन्यकुमारजी जैनदर्शनाचार्य एम. ए. कृत हिन्दीटीका, स्व. बैरिस्टर चम्पतरायजीकृत अंग्रेजीटीका तथा विभिन्न विद्वानों द्वारा रचित हिन्दी, मराठी, गुजराती एवं अंग्रेजी पद्यानुवादों सहित भाववाही आध्यात्मिक रचना। द्वितीय नयी आवृत्ति। मूल्य–दो रुपये पचास पैसे।

(१५) समयसार :

आचार्य श्रीकुन्दकुन्दस्वामी-विरचित महान अध्यात्मग्रन्थ, तीन टीकाओं सहित नयी आवृत्ति। मूल्य–सोलह रुपये।

(१६) लब्धिसार (क्षपणासारगर्भित) :

श्रीमन्नेमिचन्द्रसिद्धांतचक्रवर्ती-रचित करणानुयोग ग्रन्थ। पं. प्रवर टोडरमल्लजी कृत बड़ी टीका सहित पुनः छप रहा है।

(१७) द्रव्यानुयोगतर्कणा :

श्रीभोजसागरकृत, अप्राप्य है। पुनः सुन्दर सम्पादन सहित छपेगा।

(१८) न्यायावतार :

महान् तार्किक श्री सिद्धसेनदिवाकरकृत मूल श्लोक, व श्रीसिद्धर्षिगणिकी संस्कृत टीकाका हिन्दी-भाषानुवाद जैनदर्शनाचार्य पं. विजयमूर्ति एम. ए. ने किया है : न्यायका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। मूल्य—पांच रुपये।

(१९) प्रशमरतिप्रकरण :

आचार्य श्रीमदुमास्वातिविरचित मूल श्लोक, श्रीहरिभद्रसूरिकृत संस्कृत टीका और पं. राजकुमारजी साहित्याचार्य द्वारा सम्पादित सरल अर्थ सहित। वैराग्यका बहुत सुन्दर ग्रन्थ है। मूल्य—छः रुपये।

(२०) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र (मोक्षशास्त्र) :

श्रीमत् उमास्वातिकृत मूल सूत्र और स्वोपज्ञभाष्य तथा पं. खूबचन्दजी सिद्धांतशास्त्रीकृत विस्तृत भाषाटीका। तत्त्वोंका हृदयग्राह्य गम्भीर विश्लेषण। मूल्य छः रुपये।

(२१) सप्तभंगीतरंगिणी :

श्रीविमलदासकृत मूल और स्व. पंडित ठाकुरप्रसादजी शर्मा व्याकरणाचार्यकृत भाषाटीका। न्यायका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ। पुनः छप रहा है।

(२२) इष्टोपदेश :

मात्र अंग्रेजी टीका व पद्यानुवाद। मूल्य—पचहत्तर पैसे

(२३) परमात्मप्रकाश :

मात्र अंग्रेजी प्रस्तावना व मूल गाथायें। मूल्य—दो रुपये।

(२४) योगसार :

मूल गाथायें और हिन्दीसार। मूल्य—पचहत्तर पैसे।

(२५) कार्तिकेयानुप्रेक्षा :

मात्र मूल, पाठान्तर और अंग्रेजी प्रस्तावना। मूल्य—दो रुपये पचास पैसे।

(२६) प्रवचनसार :

अंग्रेजी प्रस्तावना, प्राकृत मूल, अंग्रेजी अनुवाद तथा पाठान्तर सहित। मूल्य—पांच रुपये।

(२७) उपदेशछाया आत्मसिद्धिः

श्रीमद् राजचंद्रप्रणीत । अप्राप्य ।

(२८) श्रीमद् राजचन्द्र :

श्रीमद्‌के पत्रों व रचनाओंका अपूर्व संग्रह । तत्त्वज्ञानपूर्ण महान् ग्रन्थ है । म० गांधीजी की महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना ।

अधिक मूल्यके ग्रन्थ मंगानेवालोंको कमिशन दिया जायेगा । इसके लिए वे हमसे पत्रव्यवहार करें ।

मूल्य–बाईस रुपये ।

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रमकी ओरसे

प्रकाशित गुजराती ग्रंथ

१. श्रीमद् राजचन्द्र २. अध्यात्म राजचन्द्र ३. श्रीसमयसार (संक्षिप्त) ४. समाधि सोपान (रत्नकरण्ड श्रावकाचारके विशिष्ट स्थलोंका अनुवाद) ५. भावनाबोध–मोक्षमाला ६. परमात्मप्रकाश ७. तत्त्वज्ञान तरंगिणी ८. धर्मामृत ९. स्वाध्याय सुधा १०. सहजसुखसाधन ११. तत्त्वज्ञान १२. श्रीसद्‌गुरुप्रसाद १३. श्रीमद् राजचन्द्र जीवनकला १४. सुबोध संग्रह १५. नित्यनियमादि पाठ १६. पूजा संचय १७. आठ दृष्टिनी सज्झाय १८. आलोचनादि पद–संग्रह १९. पत्रशतक २०. चैत्यवंदन चोवीसी २१. नित्यक्रम २२. श्रीमद् राजचन्द्र जन्मशताब्दी महोत्सव–स्मरणांजलि २३. श्रीमद् लघुराज स्वामि (प्रभुश्री) उपदेशामृत २४. आत्मसिद्धि शास्त्र २५. नित्यनियमादि पाठ (हिन्दी) २६. Shrimad Rajchandra, A Great Seer २७. Mokshamala २८. सुवर्ण-महोत्सव–आश्रम परिचय २९. ज्ञानमंजरी ३०. अनित्यपंचाशत् तथा हृदय प्रदीप ३१. अध्यात्म-रसतरंग ३२ आत्मानुशासन ।

आश्रमके गुजराती प्रकाशनोंका पृथक् सूचीपत्र मंगाइये । सभी ग्रन्थों पर डाकखर्च अलग रहेगा ।

प्राप्तिस्थान :

१. श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, स्टेशन–अगास
पो. बोरीया, वाया–आणंद [गुजरात]

२. परमश्रुतप्रभावक–मंडल
[श्रीमद् राजचन्द्र जैन शास्त्रमाला]
चौकसी चेम्बर, खाराकुंवा, जौहरी बाजार, बम्बई–२

पल्लिका प्रिन्टरी, वलासण, आणंद होकर, जिल्ला खेड़ा [गुजरात राज्य]